सामवेद

सामवेद

[सायण-भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित]

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन,
२० स्मृतियाँ, योग वासिष्ठ तथा
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार
और लगभग १५० हिन्दी-
ग्रन्थों के रचयिता।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, (वेद नगर), बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान,

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली, २४३००३ (उ० प्र०)

फोन नं० ४२४२.

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

संशोधित संस्करण

१९८२

मुद्रक :

शैलेन्द्र बी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा।

मूल्य :

दस रुपये मात्र।

भूमिका

वेद विश्व का सर्वोच्च और अनादि ज्ञान है। जिस शब्दात्मक वेद को सुनते और पढ़ते हैं वह यद्यपि भौतिक और देश-काल की सीमा में आबद्ध है, पर उसका सूक्ष्म या अभौतिक रूप, जिसको परावाक् कहा जाता है, अनादि और अनन्त है। वह उसी अव्यक्त परब्रह्म का गुण है जिससे इस पञ्चभौतिक विश्व का अविर्भाव होता है। जिस प्रकार विश्व का प्रत्येक स्थूल पदार्थ ब्रह्म की तन्मात्राओं से प्रकट होता है, उसी प्रकार वहाँ का ज्ञान-भण्डार भी उसी अनन्त ज्ञान-स्रोत से आता है। इसी कारण वेदों को ईश्वरीय ज्ञान कहा गया है जिसकी वास्तविकता तत्वज्ञों की दृष्टि से असंदिग्ध है।

धार्मिक श्रद्धा रखने वाले भारतवासी ही नहीं वरन् अन्य देशों के बुद्धिवादी विद्वान भी यह स्वीकार कर चुके हैं कि वेद सागर के सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ हैं और उनमें सृष्टि-विद्या के जिन मूल तत्वों का वर्णन किया गया है वे पूर्णतः विज्ञान और तर्क सम्मत हैं। यह सत्य है कि उनका बहुत बड़ा भाग उपासना और कर्मकाण्ड से सम्बन्ध रखता है, तो भी स्थान-स्थान पर उनमें विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और अन्त होने, आत्मा और जीव, समाज-सङ्गठन आदि के मूल सिद्धान्त स्पष्ट रूप में बड़ी धार्मिकता के साथ प्रतिपादित किये गये हैं और उनको लक्ष्य में रखते हुए मानव जीवन के उन कर्त्तव्यों का निरूपण किया गया है जिनके बिना उसकी सफलता असम्भव है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी जाति, सम्प्रदाय या देश के विचार से नहीं किये गये हैं, वरन् मानव प्रकृति को ध्यान में रखकर मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ उनकी योजना निर्मित हुई है। इसी से 'वेदोऽखिलो धर्म मूलम्' की सार्थकता सिद्ध होती है और इसी से कहा गया है कि वैदिक धर्म किसी एक जाति या देश के लिए नहीं है वरन् सार्वभौम है, मनुष्य मात्र अपनी परिस्थितियों के अनुसार उस पर चल सकते हैं और जीवन को सुखपूर्वक अतिवाहित करके अन्तिम लक्ष्य (बन्धन से मुक्ति) को प्राप्त कर सकते हैं। इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर एक विद्वान् ने कहा है कि 'वेद

विद्या का लक्ष्य मानव जीवन और विश्व-जीवन की व्याख्या करना है। सृष्टि-विद्या ही वेद-विद्या है। जिस प्रकार सृष्टि विद्या अनन्त है, उसी प्रकार वेद विद्या भी अन्तहीन है। जिस भूत के कार्य को देखें उसी में पूरा एक विश्व समाया हुआ है। अणुवीक्षण यन्त्र (खुर्दवीन) की शैली से प्रत्येक भूत का परिचय प्राप्त करना आधुनिक विज्ञान की पद्धति है, किन्तु प्रत्येक भूत के भीतर जो अक्षर-तत्व (प्राण-तत्व) है उसका दर्शन करना ऋषियों की शैली थी।

इसी आधार पर अनेक विद्वान यह कहा करते हैं कि प्राचीन युग में भारत ही जगद्गुरु था और संसार के समस्त मतमतान्तरों का उद्भव वैदिक धर्म से ही हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिक खोज करने वालों ने भी सिद्ध किया है कि मिश्र, बेबीलोनिया, असीरिया आदि की सभ्यतायें ही नहीं सुदूरवर्ती मैक्सिको और दक्षिण अमरीका की 'माया' आदि प्राचीन सभ्यताओं के मूल में भी भारतीय धर्म की प्रेरणा और सिद्धान्त दृष्टि-गोचर होते हैं। वेदों से मनुष्य के कल्याणार्थ किस सरल जीवन, सदाचार, सात्विक आहार ब्रह्मचर्य, शान्तिमय व्यवहार और उदारतापूर्ण भावनाओं का उपदेश दिया गया है, वे ही चीन, मिश्र यूनान आदि के विद्वानों के लेखों में दिखाई देती है। वैदिक ऋषियों ने तो इन सिद्धान्तों को अपने जीवन में ओत-प्रोत कर लिया था और अपने अनुयाइयों को भी तदनुकूल आचरण का उपदेश दिया था। इसके फलस्वरूप भारतीय समाज में चार आश्रमों—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास की स्थापना करके मानव-जीवन को चार भागों में बाँट दिया गया था। इसके द्वारा मनुष्य को संयम और त्याग की पूर्ण शिक्षा मिल जाती थी और वह आजीवन तदनुसार आचरण भी करता था। इस कारण उन लोगों का समस्त जीवन धर्ममय था और धर्म की रक्षा करते हुए वे सच्चे सुख और शान्ति का उपभोग करते थे। इस विषय का विस्तार पूर्वक विवेचन करते हुए एक अर्वाचीन विद्वान का निम्न कथन विचारणीय है—

'वैदिक साहित्य के अवलोकन से, वेदानुकूल अन्य समस्त लौकिक वाङ्मय के अनुशीलन से और आर्यों के रहन-सहन, रीति रिवाज तिथि-त्यौहार, संस्कार और समस्त व्यवहारों पर एक गम्भीर दृष्टि डालने से यही तात्पर्य निष्पन्न होता है कि मनुष्य अपना प्रधान लक्ष्य मोक्ष को बनाकर ऐसा व्यवहार करे जिससे स्वयं दीर्घ जीवन प्राप्त कर सके और उसके कारण किसी भी प्राणी की आयु और भोगों में किसी प्रकार विघ्न उपस्थित न हो। प्रत्युत वर्णाश्रम द्वारा समाज में ऐसा सङ्गठन हो कि सरलता से सबकी रक्षा होती रहे और शिक्षा तथा दीक्षा से समस्त प्राणी समुदाय मोक्षाभिमुखी बने रहें। आर्यों की शिक्षा और संस्कृति के किसी अङ्ग की आलोचना की जाय तो उसकी अन्तर्भावना से इसी उद्देश्य की पूर्ति की आवाज सुनाई पड़ेगी। आर्यों के किसी प्राचीन राजा, रानी, ऋषि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि के जीवन चरित्र को बारीकी से पढ़ा जाय तो उससे यही ध्वनि निकलेगी। आशय यही है कि आर्यों की शिक्षा तथा सभ्यता उपर्युक्त उद्देश्य से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि आर्यों की शिक्षा और सभ्यता अत्यन्त प्राचीन होने पर भी, और अनेक प्रकार के संकटों और विपत्तियों का सामना करने पर भी आज जीवित है। संसार में और भी अनेक सभ्यताओं का जन्म हुआ और विस्तार हुआ पर आज कहीं उनका नामोनिशान भी बाकी नहीं है। किन्तु आर्यों के आहार-विहार, वेशभूषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, यज्ञ-याग, दान-पुण्य, व्रत उपवास, धर्म-कर्म दया-प्रेम, दर्शन-विज्ञान, योग-समाधि, कर्म-फल, बन्धमोक्ष, ब्रह्मचर्य, पातिव्रत, गोभक्ति आदि कृमिकीट पर्यन्त समस्त प्राणियों के साथ सहानुभूति आदि जितने आदिमकालीन मंतव्य और कर्त्तव्य हैं आज भी ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। इससे यह सहज ही अनुमान हो सकता है कि आर्यों की सभ्यता में अपनी रक्षा कर लेने की पूर्ण योग्यता है और उसको चिरंजीवी रखने की पूर्ण शक्ति है।

वैदिक धर्म की शिक्षाओं में सीधे सादे जीवन, जङ्गलों में आश्रम बनाकर रहने, कम से कम और यथा संभव बिना पिले वस्त्र पहिनने, फल, दूध या मोटा अन्न खाने, पर्णकुटीर या घास फूस और मिट्टी के साधारण घरों में रहने का जो वर्णन पाया जाता है, उससे कितने ही व्यक्ति उसे जङ्गली या अर्ध सभ्य समाज का उदाहरण समझते हैं। ऐसी बातों के आधार पर आरम्भ में कितने योरोपियन लेखकों ने वेदों को 'गड़रियों के गीत' बतलाकर उनकी हंसी उडाने की चेष्टा की थी। पर जब यहाँ के उच्चकोटि के विद्वानों ने वेदों के ज्ञान-सरोवर में अवगाहन किया और उनमें सृष्टि-रचना, मानव मन के कार्य तथा आचार व्यवहार के ऊँचे से ऊँचे नियमों का समावेश देखा तो उनकी आँखें खुल गयीं। उन्होंने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया कि वेदों की सभ्यता संसार की अन्य समस्त सभ्यताओं की जननी है और तुलनात्मक दृष्टि से सर्वोच्च तथा सर्वश्रेष्ठ है। जिन मैक्समूलर साहब ने अपनी आयु के ४५ वर्ष लगाकर वेदों का अँग्रेजी भाषान्तर किया था, उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा था कि "विद्यमान ग्रन्थों में वेद सबसे अधिक प्राचीन है। यह यूनान की होमर की कविताओं से भी अधिक प्राचीन हैं क्योंकि इनमें मानव मस्तिष्क की प्रथम उपज मिलती है।" योरोप के सुप्रसिद्ध दार्शनिक मेटरलिक ने कहा—"वेद ही एक मात्र ज्ञान के भण्डार हैं जिनकी तुलना हो ही नहीं सकती। वेदों में गूढ़ रूप से अर्थात् बीज रूप में संसार की समस्त विद्याओं का आदेश सन्निहित है। केवल सूक्ष्मदर्शी की अन्तर्दृष्टि ही वेदों में भरे सूक्ष्म ज्ञान को प्रकट कर सकती है। यह तथ्य निस्सन्देह आश्चर्योत्पादक है कि हमारे आद्य ऐतिहासिक काल के पूर्वजों ने, जिनके विषय में यह कल्पना की जाती है कि वे अज्ञान की भयंकर अवस्था में थे, कहाँ से और कैसे असाधारण और अन्तर्ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जो आज भी हमारे लिए असम्भव सिद्ध हो रहा है।

भारत के श्रेष्ठ विद्वान तथा पूर्वी और पश्चिमी दर्शनशास्त्र के प्रकांड पण्डित श्री राधाकृष्णन वहाँ के समस्त विदेशी आलोचकों के मतों का संग्रह और समन्वय करके इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि हम हिन्दू धर्म के सबसे बड़े विरोधियों की आलोचनाओं का ही अध्ययन करें

तो उनसे भी यही ध्वनि निकलती है कि वेदों का ज्ञान सत्य के ऊपर आधारित है जो मानव-जीवन को बहुत उच्च बनाने की सामर्थ्य रखता है। वे लिखते हैं कि ऋग्वेद के आचार सम्बन्धी ज्ञान के ऊपर विचार करते समय हमको 'ऋत' शब्द का बड़ा महत्व जान पड़ता है। भारतीय विचारधारा में कर्म सिद्धान्त की जो विशेषता दीख पड़ती है, उसका आधार यही 'ऋतु' है। कर्म के सिद्धान्त की व्यापकता समस्त ससार में पाई जाती है। मनुष्य तथा देवता सभी इसके बन्धन में देखे जाते हैं। यदि संसार में कोई नियम है तो वह अवश्य ही अपना कार्य करेगा। यदि कर्म का फल किसी कारण इस जगत् में नहीं मिला तो वह अन्यत्र अपना फल लाये बिना नहीं रह सकता। जहाँ नियम 'ऋतु' है वहाँ अन्याय तथा उच्छृंखलता केवल सामयिक बात ही मानी जा सकती है। दुष्टों के व्यवहार की सफलता ऐकान्तिक (निश्चिन्त) नहीं हो सकती। भले आदमी का जलपोत यदि टूट जाय तो उसमें घबराने या निराशा की कोई बात नहीं है……इस प्रकार 'ऋतु' हमें सदाचार का एक मापदण्ड प्रदान करता है, यही प्रत्येक वस्तु का सामान्य सार है। यह सत्य है—सब वस्तुओं की एक मात्र सच्चाई है। अव्यवस्था एवं उच्छृं-खलता असत्य हैं, अमृत हैं अथवा 'ऋत' के प्रतिद्वन्दी है। ऋत पर चलने वाले सदाचारी लोगों के आचरण को 'व्रतानि' कहते हैं। वेदों में वरुण को 'ऋत-व्रत' कहा गया है। वह अपने सदाचार रूप दिनचर्या में अटल और अचल है।"

इस प्रकार वेदों में ऋत अथवा सत्य को ही मनुष्य के सदाचार अथवा धर्म की एक मात्र कसौटी माना गया है। उनमें कहा गया है कि "मनुष्यों को अपना जीवन देवताओं की आँखों के नीचे होकर गुजारना चाहिये।" उनमें देवताओं के प्रति ही नहीं अन्य मनुष्यों के प्रति भी हमारे कर्तव्यों का विवेचन किया गया है और कहा गया है कि जो मित्र और देवता को न देता हुआ स्वयं ही खाता है, वह मूर्ख पुरुष साक्षात् पाप का भक्षण करता है। "जो दान देता है, उसका मान घटता नहीं।

जो दु:खी और याचक को न देकर अपने आप ही उसका उपयोग करता है, उसे शान्ति देने वाला कोई नहीं होता। 'हे ईश्वर ! हम अपने पडोसी के प्रति अन्याय न करें, न अपने मित्र को हानि पहुंचावें। अपने प्रति प्रेम करने वालों के प्रति हमसे कोई दुर्व्यवहार न हो।" इस प्रकार वेदों में हर जगह ऐसे मूलभूत सिद्धान्तों की शिक्षा दी गई है जो देश और काल से अतीत होकर मनुष्य मात्र पर लागू होते हैं और जिनको त्याग कर मनुष्य कदापि सुखी जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। यही कारण है कि वेदों के उपदेशों को सत्य पर स्थित ईश्वरीय आदेश माना जाता है।

भारत के दूसरे महाविद्वान् श्री अरविन्द घोष ने, जो भारतीय धर्म और दर्शन के अतिरिक्त विदेशों के ज्ञान और विज्ञान के भी बहुत बड़े ज्ञाता थे, वेदों को आध्यात्मिक ज्ञान का सबसे बड़ा स्रोत बतलाया था। उन्होंने लिखा है—वेद संसार के सर्वोत्तम और गम्भीरतम धर्मों के आदि स्रोत हैं, साथ ही वे कुछ सूक्ष्म पराभौतिक दर्शनों के भी मूल आधार हैं।" वास्तव में 'वेद' इस सबसे ऊँचे आध्यात्मिक सत्य का नाम है। जहाँ तक मनुष्य का मन गति कर सकता है—पूर्णता प्राप्त करने के इच्छुक आर्य-पुरुष के हाथ में वेद-मन्त्र एक शस्त्र का काम देता है। वेद असभ्य जंगली और आदि कर्त्ताओं की बनाई वस्तु नहीं है, वरन् एक उत्कृष्ट कला के सजीव नि:श्वास हैं। वेद का प्रतीकवाद इस तथ्य पर आधारित है कि मनुष्य का जीवन यज्ञ रूप है—एक यात्रा है—एक युद्ध क्षेत्र है। इस तरह समझा हुआ वह वेद 'जंगली लोगों' के गीतों का संग्रह नहीं रह जाता, वरन् वह मानव जाति की उच्च अभीप्सा से सम्पन्न गीतों का पाठ बन जाता है। वेद में और जो कुछ प्राचीन विज्ञान, लुप्त विद्या, पुरानी मनोवैज्ञानिक परम्परा आदि हो, उसको खोजना अभी शेष ही है ....।....महात्मा गौतमबुद्ध के सम्बन्ध में एक बड़ी गलत धारणा यह की हुई है कि वे यज्ञ, वेद और वेदज्ञों के विरोधी थे। बौद्धों के प्रमुख

धर्मग्रन्थ में महात्मा बुद्ध ने स्वयं कहा है कि 'वेदों के द्वारा धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वानों की डांवाडोल स्थिति कभी नहीं रहती।.......
यज्ञ के पुण्य की कामना करने वाला व्यक्ति उसी ब्राह्मण को भोजन कराये जो वेदज्ञ, ध्यान-परायण, उत्तम सम्पत्ति वाला और दूसरों को शरण देने वाला हो। वेदज्ञ विद्वान् इस संसार में जन्म या मृत्यु में अनासक्त रहकर तृष्णा का त्याग करके, पाप रहित रहकर जन्म और वृद्धावस्था से छूट जाता है, ऐसा मेरा विचार है।"

पं० सत्यव्रत सामश्रमी बंगाल के प्रसिद्ध वेदज्ञ विद्वान् हुए हैं। उनका कथन है कि—ये चारों वेद आर्यों के ईश्वर और धर्म विषयक, व्यावहारिक वैज्ञानिक, कर्तव्य शास्त्र तथा समाज शास्त्र सम्बन्ध ज्ञान हैं। उन दिनों भूगर्भ विद्या, गणित और ज्योतिष शास्त्र, रसायन शास्त्र आदि को आधिदैविक विद्या कहा जाता था और शरीर-विज्ञान, मनो-विज्ञान तथा ईश्वर और धर्मविज्ञान को अध्यात्म विद्या कहते थे। यद्यपि इन वैज्ञानिक विषयों के ग्रन्थ अब लुप्त हो चुके हैं किन्तु फिर भी वैदिक ग्रन्थों में विज्ञान सम्बन्धी काफी संकेत उपलब्ध होते हैं। वेदों के कुछ भागों से ऐसा लगता है कि उस समय कुछ वैज्ञानिक अनुसंधान इतनी पूर्णता तक पहुंच चुके थे जहाँ तक अमेरिका और योरोप के वैज्ञानिक अभी तक नहीं पहुँच सके हैं।

इस प्रकार देशी-विदेशी सभी उच्च कोटि के विद्वानों ने वेदों की महानता एक स्वर से स्वीकार की है और उनको संसार के समस्त ग्रन्थों में सबसे प्राचीन और प्रमुख बतलाया है। हम भारतीय धर्मानुयायी तो उनको साक्षात् ईश्वरीय वाणी मानते हैं, जो मनुष्य के लिये प्रत्येक अवस्था और प्रत्येक समय में कल्याणकारी है। जब तक हमारे देशवासी इस ईश्वरीय विधान के अनुसार आचरण करते रहे, अपने कर्त्तव्य पालन पर दृढ़ बने रहे, तब तक यहाँ ऐसे जगद्वन्द्य चक्रवर्ती सम्राटों तथा आचार्यों का आविर्भाव होता रहा, जिनकी सत्ता को सबने स्वीकार किया और जिनकी अवज्ञा करने का किसी ने साहस नहीं किया। पर

उस युग के साम्राज्यों की नींव धर्म पर ही स्थापित होती थी और चक्र-वर्ती की विजययात्रा का मूल उद्देश्य भी धर्म स्थापना होता था। 'शतपथ' चक्रवर्ती में लिखा है 'राष्ट्र ही अश्वमेध है। इसलिये राष्ट्र की कामना करने वालों को अश्वमेध अवश्य करना चाहिये क्योंकि अश्वमेध करने वाला समस्त पृथ्वी को जीत लेता है।" उस युग में चक्रवती नरेश के लिये इस अश्वमेध का करना अनिवार्य था। पर इसका उद्देश्य मध्यकाल के सम्राटों के समान अन्य देशों में लूटमार करना, वहाँ के निवासियों का मारना या वहाँ पर अपना व्यापार फैलाना आदि न होकर समस्त मानव जाति को एक सभ्यता, एक संस्कृति, एक धर्म, एक भाषा के सूत्र में आबद्ध करना होता था जिससे वह सहयोग पूर्वक प्रगति के मार्ग पर अग्रसर हो सके। इस सम्बन्ध में एक लेखक ने कहा है कि "अश्वमेध करने का उद्देश्य सब मनुष्यों का एक समान सुख-दुःख में सम्मिलित करना, दुष्ट राजाओं और यज्ञ विरोधी म्लेच्छों से प्रजा और याज्ञिकों के दुःख दूर करना, पृथ्वी को उर्वरा बनाना और सब प्राणियों को सुख पहुँचाना ही था। यज्ञ का अभिप्राय सार्वजनिक सुखी की वृद्धि से है। सार्वजनिक सुख तब तक नहीं हो सकता जब तक समस्त मानव समुदाय समान सुख-दुख का भागी न हो जाय, अनेक प्रकार की जातीयताओं की भावना नष्ट न हो जाय और साम्यभाव न आ जाय। हम देखते हैं कि वेदों में सैकड़ों मन्त्र साम्यभाव के उपस्थित हैं। वेद संसार मे साम्यभाव फैलाते हैं इसलिए पृथ्वी में बसे हुए समस्त मनुष्यों को समान लाभ पहुँचते की स्वाभाविक प्रेरणा से ही अश्वमेध किया जाता था।"

इस प्रकार के सर्वहितकारी और मनुष्य मात्र के लिये कल्याणकारी विधान मानव निर्मित नहीं हो सकते। इस उन्नतिशील कहे जाने वाले जमाने में भी हम देखते हैं कि जितने विधान, नियम कानून बनाये जाते हैं, उसमें किसी विशेष वर्ग या समुदाय के स्वार्थों की रक्षा का ध्यान रहता है, उनका उद्देश्य अपने से भिन्न समुदाय वालों का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रीति से शोषण ही होता है। पर वेदों में कहीं पर किसी विशेष

वर्ग, जाति या समुदाय के हित को दृष्टि में रख कर नियम नहीं बनाये हैं, वरन् उनमें जगह-जगह मानव मात्र के कल्याण की भावना ही प्रदर्शित को गई है। इस विषय का विशेष रूप से विवेचन करते हुए और वेदों के ईश्वर कृत होने की पुष्टि करते हुए एक विद्वान लेखक ने कहा है—

"वेद मनुष्य कृत नहीं, ईश्वर प्रेरित है। वेदों का ज्ञान मनुष्य की रचना शक्ति मे बाहर है। उसके धारण करने को ईश्वर समर्थ है। वेद सब विद्याओं के बीज की पुस्तक है। जैसे भौतिक जगत् के सब पदार्थों का बीज प्रकृति की कुक्षि में निहित है, कोई भी मनुष्य उस मौलिक प्रकृति की रचना नहीं कर सकता, उस प्रकार प्रचलित ज्ञान की पुस्तकों का इतना बड़ा भण्डार जिस मौलिक वेद संहिता के मन्त्रों के बीज से उदय हुआ है, उन बीजों की रचना मानव-लेखकों को पण्डितों की शक्ति मे बाहर की बात । उगे हुए वृक्षों की लकड़ी से काष्ट की भाँति-भाँति की उपयोगी सामग्री मनुष्य बना सकता है। बढ़ई की कुशलता तथा उसकी कारीगरी इसी में चरितार्थ होती है, यह सत्य है, किन्तु कोष्ठ वस्तुओं की मौलिक सामग्री और प्रारम्भिक उपादान की रचना वह नहीं कर सकता। यह तो उदारतमा माता प्रकृति की ही देन है। इसी प्रकार मनुष्य पत्थर और विशेष प्रकार की मिट्टी से चूना, सीमेंन्ट आदि बना लेता है पर उस पत्थर और मृत्किका की रचना उसकी शक्ति से बाहर है, जो चूने और सीमेंट का उपादक या मौलिक सामग्री है। भौतिक जगत् के कारणात्मक भाग का निर्माण मनुष्य नहीं करता, उसके कार्यात्मक भाग की रचना ही वह कर सकता है। प्राप्त मौलिक सामग्री को अपने उपयोग के लिये वह आवश्यकीय रूप देने की क्षमता रखता है किन्तु उसके भौतिक रूप के उपादान की शक्ति उसमें नहीं है। यही बात चित् जगत् के सम्बन्ध में भी है। ज्ञान का विश्व भी इस जड़ विश्व के समानान्तर शाश्वत रूप में पाया जाता है। अचित् की चादर में लिपटा हुआ चित् शाश्वत है। इन दोनों में परस्पर अटूट सम्बन्ध है।..............

....विधाता ने जिस प्रकार पृथक्-पृथक् देहधारियों के लिये खान-पान की सामग्री का मौलिक आधार प्रदान किया है, वन, पर्वत,

भर, उपवन, आग, पानी, मिट्टी, हवा, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, ग्रह, नक्षत्र, फल, फूल, औषधि, वनस्पति आदि की रचना की है, उसी प्रकार उसने अविभक्त चित् के पथ प्रदर्शन के लिये विविध वस्तुओं का स्वरूप भी बता दिया है। जन्म लेते ही बालक सब कुछ नहीं जानता, वह माता पिता, गुरुजन तथा बाह्य परिस्थितियों से सीख कर अपने ज्ञान का भंडार भरता है। इसी प्रकार नूतन ऋषियों ने पुरातन ऋषियों से ज्ञान प्राप्त किया, जैसे शिष्य गुरु से सीखता है। उन पूर्व ऋषियों ने आदि ज्योति, परम पुरुष, परब्रह्मदेव से ज्ञान की पहली झाँकी पाई थी। इसीलिए महर्षि पतञ्जलि ने कहा है "पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानच्छेदात्"—परमात्मा पूर्व ऋषियों का भी गुरु है। जीवन निर्वाह की भौतिक सामग्री देने वाला परमात्मा ज्ञान का भी मौलिक बीज मानव कल्याणार्थ देता है। वही जड़ और चेतन मौलिक जगत् की सामग्री के आदि बीज का जनक है।

जब हम वेद-ज्ञान को ईश्वर प्रेरित स्वीकार करते हैं तो फिर इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता कि उनमें जो सिद्धान्त बतलाये गये हैं, मनुष्यों को जिन कर्तव्यों-कर्मों के पालन करने का उपदेश दिया गया है, वे किसी एक समाज या जाति के लिये नहीं हो सकते, वरन् उनमें जो तत्त्व पाया जाता , वह सार्वभौम है। यद्यपि वेदों के जो प्राचीन भाष्य इस समय सम्पूर्ण या खण्डित अवस्था में प्राप्त होते हैं, वे मुख्यतः कर्मकाण्डपरक ही हैं। उनमें जिन यज्ञ, अग्निहोत्र आदि का विधान बताया गया है, उनका प्रचलन हिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म या मजहब में नहीं है, पर इस आधार पर वेदों के मूल स्वरूप का निर्माण नहीं किया जा सकता। यज्ञ, हवन के साथ-साथ वेदों ने मनुष्यों के मूलभूत कर्तव्यों, दान, दया, परोपकार क्षमा, उदारता, कृतज्ञता, न्याय-परायणता पवित्रता, शम, दम आदि पर जोर दिया है। वास्तव में परमात्मा मनुष्य के हृदय को देखता है और जिसकी जैसी हार्दिक भावना होती हैं, उसे वैसा ही फल प्रदान करता है। जो बड़े से बड़े और बहुधन संख्यक यज्ञ आदि अपने वैभव और प्रतिष्ठा को दिखलाने अथवा दूसरों को नीचा

िखाने की भावना से करते हैं, उनके यज्ञ एक गरीब आदमी के उस थोड़े से अन्नदान से भी हीन हैं जो किसी भूखे पर तरस खाकर भगवान् के नाम पर अपनी रोटी में से एक भाग दे देता है। इसलिये वेदों मे धार्मिक कर्मकांडों का वर्णन होने पर भी उनको सर्वोपरि नहीं माना गया है। इसमें सबसे प्रथम गुण मनुष्यता का होना और अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों के साथ तदनुकल व्यवहार करना ही माना गया है। जो व्यक्ति इस संसार को भगवान की अभिव्यक्ति—कृति समझकर सब प्राणियों को आत्मवत् मानता है और उनके सुख-दु:ख में समान रूप से भाग लेता है, वही वेद की दृष्टि में सच्चा मनुष्य है और वही शुभ गति का अधिकारी होता है, फिर वह चाहे जिस देश का, चाहे जिस समाज का और चाहे जिस समुदाय का क्यों न हो।

हम जानते हैं कि वेदमन्त्र के इन मूलभूत सिद्धान्तों वेद मन्त्रों के आधिदैविक और आध्यात्मिक अर्थों का स्पष्ट ज्ञान पाठकों को प्रस्तुत भावानुवाद से नहीं प्राप्त हो सकता। जैसा ऊपर लिख चुके हैं, इस समय जो प्राचीन वेदभाषा उपलब्ध है और विशेषत: सायणाचार्य का भाष्य, जो एक मात्र, अखण्डित अवस्था में प्राप्त हो सकता है, कर्मकांड-परक ही है। हमें भी उन्हीं के आधार पर वेद-मन्त्रों का आशय लिखना पड़ा है और वह भी अत्यन्त संक्षिप्त रूप में। अधिक विस्तार करने का साधन हमारे पास न था। यदि हम वेद मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या करते और कर्मकांड परक अर्थों के साथ उनके आध्यात्मिक आशय का भी विवेचन करते तो ग्रन्थ का आकार इससे चौगुना या पाँच गुना हो जाता जिसका प्रकाशन वर्तमान परिस्थितियों में सम्भव नहीं था। पर वेद में मन्त्रों का आशय क्या है और ईश्वरीय शक्ति के अंशस्वरूप विविध देवताओं की स्तुतियों में धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों का किस प्रकार समावेश किया है, इस के उदाहरण स्वरूप थोड़े से मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या हम आगे दे रहे हैं जिससे उनका महत्व पाठकों की समझ में आ जायेगा। भविष्य मे यदि उपयुक्त साधन प्राप्त हो सकेंगे तो इसी शैली पर प्रस्तुत वेद-भाष्य धार्मिक जनता के सम्मुख उपस्थित किया जायेगा।

वैदिक स्वर प्रक्रिया

वेदों में वर्णित विविध प्रकार के ज्ञान और उनकी विशेषताओं पर विचार करने से पूर्व हम वैदिक स्वर-प्रक्रिया के सम्बन्ध में कुछ शब्द कह देना आवश्यक समझते हैं क्योंकि अनेक सज्जन वेदों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी न रखने के कारण वैदिक स्वर चिह्नों को एक अद्भुत चीज समझते हैं और ऐसी कल्पना करते हैं कि इन स्वर-चिह्नों के बिना वेद लिखे या पढ़े हां नहीं जा सकते हैं। वेद की संहिताओं में मंत्राक्षरों में खड़ी तथा आड़ी रेखायें लगाकर उनके उच्च, मध्यम या मन्द स्वर उच्चारण करने के संकेत किये गये हैं। इनको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के नाम से अभिहित किया गया है। ये स्वर बहुत प्राचीन समय से प्रचलित हैं और महामुनि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में इनके मुख्य-मुख्य नियमों का समावेश किया है। उनके वक्तव्य तथा स्वर सम्बन्धी अन्य ज्ञातव्य बातों का परिचय हम ऋग्वेद की भूमिका में विस्तृत रूप से दे चुके हैं, जिससे पाठक वैदिक स्वरों के सम्बन्ध में आवश्यकीय जानकारी प्राप्त कर सकते है।

इस सम्बन्ध में अनेक विद्वानों द्वारा प्रकट किये गये विभिन्न विचारों पर मनन करने पर हमको दो मुख्य बातें प्रतीत होती हैं। एक तो यह कि प्राचीन काल में जब बड़े यज्ञ किये जाते थे तो वहाँ के वातावरण संगीतमय बनाने के निमित्त वेद मन्त्रों का मधुर-ध्वनि से गायन किया जाता था। 'सामवेद' के ही अनेक सूक्तों में इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये वृहत् साम के गायन का उल्लेख है। इस संगीत में अनेक गायन (स्तोता) सम्मिलित रूप से भाग ले सकें और उनके उच्चारण में एकलयता और एकतानता बनी रहे, इसके लिये स्वर के उतार चढ़ाव सम्बन्धी नियमों का निश्चित होना आवश्यक था। दूसरी बात यह भी कही जाती है कि वैदिक शब्द अनेकार्थवाची हैं। कितने ही शब्दों के तो दस बीस अर्थ मिलते हैं। स्वर चिह्नों से यह विदित हो सकता है कि अमुक स्थान पर

अमुक शब्द का कौन सा अर्थ ग्रहण किया जाय। इस दृष्टि से भी अधिक विद्वान स्वर-चिह्नों का ज्ञान होना अनिवार्य मानते हैं।

जिस प्रकार संस्कृत के व्याकरण को विभिन्न कालों के वैयाकरण के विद्वानों ने अपनी-अपनी शैली पर विकसित करके इनता अधिक विस्तृत, जटिल और कठिनता से बोधगम्य बना दिया है कि उसके विषय में छोटे बड़े विद्वानों में प्राय: मतभेद और विवाद हुआ करता है और घोर परिश्रम करने पर भी अन्तिम निर्णय अधिकांश में विवादस्पद ही बना रहता है, उसी प्रकार वैदिक स्वरों के सम्बन्ध में भी प्राचीन और नवीन सभी तरह के विद्वानों में इतनी अधिक मत भिन्नता और शैली-भेद पाया जाता है कि इस सम्बन्ध में एकवाक्यता होना लगभग असम्भव जान पड़ता है। अभी इस सम्बन्ध में एक पुस्तक "वैदिक-स्वर मीमांसा" जिसके लेखक गुरुकुल की शिक्षा प्राप्त संस्कृत के एक बड़े विद्वान हैं, उन्होंने पुराने और नये सभी स्वर शास्त्र के ज्ञाताओं के मतों की जो आलोचना की है, उसे पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन काल में भी इस विषय के जो विद्वान हुये हैं, उन्होंने भी स्वर के निर्णय में अनेक स्थानों पर बड़ी-बड़ी भूलें की हैं। सायणाचार्य के सम्बन्ध में तो लेखक ने जो मत व्यक्त किया है, उसे यदि यथार्थ माना जाय तो सायण का स्वर-सम्बन्धी ज्ञान बहुत ही न्यून और त्रुटिपूर्ण मानना पड़ेगा। पाठकों की जानकारी के लिये हम उनकी सायण सम्बन्धी सम्मति को यहाँ ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं—

"सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद-भाष्य के आरम्भ में यथासंभव प्रति-मन्त्र स्वर-प्रक्रिया का निर्देश किया है। यद्यपि उसे ऊपर से देखने पर सायण का स्वर-शास्त्रज्ञ होना प्रतीत होता है, पर उसके वेद-भाषा के गहरे अनुशीलन और उसके पूर्ववर्ती भट्ट-भास्कर द्वारा निर्दिष्ट स्वर-प्रक्रिया के साथ तुलना करने पर प्रतीत होता है कि सायण का स्वर-शास्त्र विषयक ज्ञान अति स्वल्प है। वह प्राय: भट्ट-भास्कर की स्वर

प्रक्रिया की प्रतिलिपि करता है और वह भी आँखें मूँद कर। ... .
इतना ही नहीं सायण जहाँ-जहाँ स्वतन्त्र रूप से स्वर प्रक्रिया लिखता है, वहाँ वह प्राय: ५० प्रतिशत भूल करता है। उसकी प्रति सूक्त व्याख्या में ५-५ भूलों का उपलब्ध होना साधारण सी बात है।"

आगे चलकर लेखक ने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में आये 'दोषा वस्त:' शब्द का उदाहरण देकर बतलाया है कि स्वर—सम्बन्धी भूल के कारण उस शब्द का अर्थ (अग्नि के स्थान पर सायं प्रात:) सायण ने भी नहीं वरन् वैंकटमाधव तथा भट्टभास्कर जैसे प्रमुख स्वर शास्त्रज्ञों ने भी गलत लिख दिया। उनका कथन है कि—

"सायण नि:सन्देह अच्छा विद्वान था, पर वैदिक-स्वर प्रक्रिया में वह निरा बालक है। ऋग्वेद भाष्य में उसने जो स्वर-प्रक्रिया दर्शाई है, उसमें पदे-पदे भूलें हैं। स्वर-प्रक्रिया में वह प्राय: तैत्तिरीय संहिता के भाष्यकार भट्टभास्कर का अनुकरण करता है। 'दोषावस्त:' का जो अर्थ और स्वर सायण ने लिखा है, वह उसने भट्ट भास्कर के 'तैत्तिरीय संहिता भाषा' से लिखा है।

"भट्ट-भास्कर का अर्थ 'तैत्तिरीय संहिता' १।५।६।२ में उपलब्ध होता है। वहाँ भट्ट-भास्कर लिखता है कि "दोषावस्त:—रात्रि और दिन में, सायं प्रात:।" श्री निवास झा ने भी 'स्वर सिद्धान्त चन्द्रिका' में ६।२।२७ की व्याख्या में भट्ट-भास्कर की ही अनुकरण किया है। डा० लक्ष्मण स्वरूप द्वारा संपादित वैंकट के 'लघु भाष्य' में भी इस पद का अर्थ 'सायं प्रातश्च' ही किया गया है।"

"सायण से भी अधिक आश्चर्य हमें वैंकट-माधव पर है। वैंकटमाधव ऋग्वेदज्ञों में मूर्धाज्ञभिषिक्त है। वैंकट स्वर-शास्त्र का असाधारण ज्ञाता है। यह उसकी स्वरानुक्रमणी और ऋग्वेद के वृहद् भाष्य से स्पष्ट है। वैंकट स्वर निपात आदि विषयक अनुक्रमणियाँ उसके लघु भाष्य के ही अंश हैं। इसमें हमें सन्देह होता है कि कहीं उसके 'लघु भाष्य' का पाठ भ्रष्ट न हो गया हो।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन से प्राचीन और प्रसिद्ध विद्वानों ने स्वर-शास्त्र में इतनी भिन्नता उत्पन्न कर दी है कि साधारण पाठक तो क्या अधिकांश विद्वान् भी सहज में यह निर्णय नहीं कर सकते कि इसमें कौनसा अर्थ शुद्ध और निर्भ्रान्त है। 'वैदिक-स्वर-मीमांसा' के लेखक ने अपनी पुस्तक में प्राचीन स्वर-विद्वानों की भूलें ही नहीं बतलाई हैं वरन् वर्तमान समय में भी जिन दो-चार विद्वानों ने स्वर प्रक्रिया में सम्बन्ध में कलम उठाई है, उनके मतों का खण्डन करके उनकी भूलें प्रकट की हैं। वे लिखते हैं कि—

"वैदिक स्वरांकन का परिचय देने का प्रयत्न अनेक विद्वानों ने किया है। उनमे श्री पद्मनारायण आचार्य, श्री पं० धारेश्वर शास्त्री, श्री पं० सातवलेकर जी और श्री पं० विश्वबन्धु जी शास्त्री प्रमुख हैं। इन महानुभावों ने स्वरांकन, परिचय की जो पद्धति अपनाई है, वह भारतीय शास्त्रानुकूल नहीं है। कतिपय अंशों में शास्त्र विरुद्ध है। श्री पं० पद्मनारायण आचार्य और श्री पं विश्वबन्धु शास्त्री का परिचय प्रकार योरोपीय पद्धति पर आश्रित है। शास्त्रीय पद्धति के परित्याग से अथवा योरोपीय पद्धति पर आश्रय ग्रहण करने से साधारण से साधारण विषय न केवल क्लिष्ट और सन्देह-युक्त हो जाता है अपितु उसके आधार पर वेद का सूक्ष्मार्थ भी नष्ट हो जाता है।"

इस परिस्थिति में स्वभावतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वर सम्बन्धी निर्णय में किस आधार को ग्रहण किया जाय? अभी तक जो वेद संहितायें प्रकाशित हुई हैं, उनका आधार अधिकांश में सायण-भाष्य है। आधुनिक युग में वेदों का सर्वप्रथम अन्वेषण करने वाले मैक्स-मूलर साहब को बीस वर्ष तक अथक परिश्रम तथा अपार धनराशि व्यय करने पर भी केवल सायणाचार्य का भाष्य ही सर्वाङ्गपूर्ण स्थिति में प्राप्त हो सका था। उसी के आधार पर उन्होंने सैकड़ों भारतीय पण्डितों की सहायता से लुप्त-प्रायः वेदों को संसार के सम्मुख मुद्रित ग्रन्थ के रूप में प्रकट किया था। इसके पश्चात् अधिकांश वेद-प्रकाशकों

ने मैक्समूलर साहब के संस्करण से ही सहायता लेकर अपना काम चलाया है। इधर जो सूचनायें प्राप्त हुई हैं, उनसे विदित हुआ है कि आधुनिक खोज करने वालों ने वेदों का एकाध और भाष्य उपलब्ध किया है और उसे प्रकाशित करने की व्यवस्था की गई है पर जिस सायण भाष्य का अधार लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओं में अब तक वेदों का प्रकाशन किया गया है, उसे "वैदिक-स्वर-मीमांसा" के लेखक ने 'स्वरशास्त्र' की दृष्टि से 'निरा बालक' बतलाया है और उनके कथनानुसार जहाँ सायण ने स्वतन्त्र रूप से स्वर-निर्णय किया है, उसमें लगभग आधी अशुद्धियाँ हैं। लेखक महोदय के कथन से प्रतीत होता है कि ये स्वर-सम्बन्धी अशुद्धियाँ और भिन्नतायें आर्य समाज द्वारा अजमेर से प्रकाशित वेदों में भीं पाई जाती हैं जिनमें से अथर्ववेद का संशोधन उन्होंने स्वयम् छठे संस्करण में किया है। इन सब बातों पर विचार करके यदि हम यह कहें कि इस समय स्वर-चिह्नों की दृष्टि से वेदों का पूर्णतः शुद्ध संस्करण मिल सकना असम्भव है तो इसे अत्युक्ति नहीं समझनी चाहिए।

वैदिक स्वरों के उच्चारण में कठिनाई

जैसा हमने ऊपर बतलाया है वैदिक मन्त्रों का सस्वर-उच्चारण यज्ञों में अति प्राचीन काल में प्रचलित था। अनेक विद्वानों का मत है कि उस समय स्वरों की संख्या आजकल की भाँति तीन ही न थी वरन् १८ थी। उस समय के कुशल स्तोतागण (मन्त्रों का पाठ करने वाले) उन सबका उच्चारण कर लेते थे। पर समय बीतने पर जैसे-जैसे मनुष्यों के आहार-विहार में अन्तर पड़ता गया और वे फल, दूध आदि प्राकृतिक भोजन के स्थान पर अग्नि द्वारा पकाई गई भाँति-भाँति की स्वादिष्ट और कृत्रिम भोज्य-सामग्रियों-व्यंजनों का उपयोग करने लगे वैसे-वैसे ही उनके कण्ठ स्वर में भी अन्तर पड़ने लगा और वैदिक स्वरों की समस्त सूक्ष्म ध्वनिवों को शुद्ध रूप में प्रकट कर सकना उनके लिये कठिन हो गया। तब स्वरों की संख्या घटाकर सात कर दी गई अर्थात् (१) उदात्त (२) उदात्ततर (३) अनुदात्त (४) अनुदात्ततर

(५) स्वरित (६) स्वरितोदात्त (७) श्रुति। कुछ समय पश्चात् जब इनमें भी अशुद्धि होने लगी तब स्वरों की संख्या तीन रह गई। फिर भी यज्ञ-सचालकों ने तब यह अनुभव किया कि स्वर-प्रक्रिया के अनुसार शुद्ध रूप से वेद-मन्त्रों का पाठ कर सकने वाले बहुत कम मिलते हैं तो उन्होंने 'एक-श्रुति' में ही पाठ करने का विधान कर दिया है। शांखायन, आश्वलायन और कात्यायन आदि श्रोत सूत्रों में यज्ञ-कर्म में मन्त्रों का एक श्रुति में उच्चारण निहित माना है। इन शाखाओं के ग्रन्थ का रचनाकाल अब से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व समझा जाता है। इससे प्रकट होता है कि महाभारत समय से पूर्व ही वैदिक-स्वरों का यथार्थ रूप में उच्चारण करने वाले ऋत्विज दुर्लभ होने लगे थे।

अन्य लोगों ने इस कठिनाई को दूर करने के लिये एक दूसरी विधि यह निकाली कि कण्ठ स्वर ऊँचा-नीचा करने के बजाय हाथ को ऊँचा-नीचा करके, उदात्त, अनुदात्त, स्वहित आदि स्वरों का संकेत किया जाय। वर्तमान समय में इस सम्बन्ध में जिन विद्वानों ने खोज की है, उनका कहना है कि इस समय, भारतवर्ष में शायद ही दस-पाँच महाराष्ट्रीय ऋग्वेदी पण्डित वेद मन्त्रों के तीन स्वरों का कण्ठ से उच्चारण करने में समर्थ हों, अन्यथा सब लोग हाथ द्वारा संकेत करके ही काम चलाते हैं।

स्वर-चिह्नों में पाया जाने वाला अन्तर

स्वरों को प्रकट करने के लिये अक्षरों के ऊपर नीचे जो खड़ी और आड़ी रेखायें लगाई जाती हैं, उनके स्वरूप के विषय में भी कम मतभेद नहीं है। प्राचीन काल के भी जो ग्रन्थ अब तक मिले हैं, उनमें विभिन्न शाखाओं के ग्रन्थों में प्रयुक्त चिन्हों में बहुत अन्तर है। ऋग्वेद आदि में स्वरित के लिये अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा लगाई जाती है, पर मैत्रायणी सहिता में उसे उदात्त का चिह्न मानकर लगाया गया है। इसी प्रकार अधिकांश संहिताओं में अनुदात्त के लिये अक्षर के नीचे जो आड़ी रेखा लगाई जाती है, शतपथ ब्राह्मण में उसे उदात्त के चिह्न के रूप में प्रयुक्त

किया गया है। इन्हीं सब भिन्नताओं को अनुभव करके 'वैदिक स्वर 'मीमांसा' के लेखक ने यह स्वीकार किया है कि—

"वैदिक वाङ्मय के जितने ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें उदात्त अनुदात्त और स्वरित स्वरों का अङ्कन (सकेत चिह्न) एक प्रकार का नहीं है। उनमें परस्पर अत्यन्त वैलक्षण्य है। एक ग्रन्थ में स्वरित का चिह्न है, वही दूसरे ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न माना जाता है। इसी प्रकार किसी ग्रन्थ में जो अनुदात्त का चिह्न है, वह अन्य ग्रन्थ में उदात्त का चिह्न होता है। साम-संहिता का स्वरांकन प्रकार सबसे विलक्षण है। उसके पद पाठ का स्वरांअन संहिता के स्वरांकन से भी पूर्णतया मेल नहीं रखता। इसलिये वेद के विद्यार्थी को पदे-पदे सन्देह और कठिनाई उपस्थित होती है।"

हमारे इस सायणभाष्यानुयायी सरल हिन्दी भावार्थ सहित वेद-संस्करण का मुख्य उद्देश्य यही है कि जो वेद अभी तक जन साधारण के लिये एक अलभ्य और गूढ़ वस्तु बने हुए हैं और जिनके विषय में वे प्रायः तरह-तरह की सम्भव असम्भव कल्पनायें करते रहते हैं, उनको एक साधारण पाठक भी जान और समझ सके। हिन्दू धर्म का मूल वेद को ही माना जाता है और हिन्दू संस्कृति तथा सभ्यता की जड़ें वैदिक साहित्य में ही फैली हुई हैं। ऐसी अवस्था में उससे सर्वथा अपरिचित रहना और उसके सम्बन्ध में दूसरों के मुख से ही उनकी व्यक्तिगत सम्मति सुनते रहना वांछनीय नहीं हो सकता। इसीलिए इस संस्करण में हमने यथा सम्भव यही चेष्टा की है कि पाठक सहज में ही वेद के सामान्य अर्थ को हृदयङ्गम करके उनके वास्तविक आशय पर विचार कर सकें। जैसा हम ऊपर दिखला चुके हैं, स्वरों के प्रयोग में अनेक कठिनाइयों और हर तरह से भूल चूक की सम्भावना है ही, साथ ही वेद को स्वाध्याय की दृष्टि से पढ़ने वाले पाठक के लिए उनका कोई उपयोग नही है उलटा समझ में न आ सकने वाले चिह्नों के कारण वे एक उलझन-सी में पड़ जाते हैं। इससे पहले भागलपुर से पं० राम-

गोविन्द वेदान्त शास्त्री द्वारा प्रकाशित 'ऋग्वेद में तथा अहमदाबाद से परमहंस परिव्राजक श्री भगवदाचार्य द्वारा प्रकाशित 'सामवेद' में इन्हीं कारणों से स्वर-चिन्हों को छोड़ दिया है। श्री भगवदाचार्य ने तो अपने ग्रन्थ में स्पष्ट कह दिया है कि "मैं वेदों के अक्षरों को अनियन्त्रित मानता हूँ।" तभी "अनन्ता वै वेदा" की उक्ति सार्थक हो सकती है। मैं स्वरों के साथ नहीं चल सकता।" अन्य कितने विद्वानों को भी हमने ऐसी सम्मति प्रकट करते देखा है। फिर भी हमारा तात्पर्य वैदिक स्वर चिह्नों के महत्त्व को किसी प्रकार घटाना नहीं है। जो सज्जन किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये यज्ञादिकों में सस्वर पाठ की व्यवस्था करना चाहें वे मूल-संहिता की पुस्तकों का उपयोग कर सकते हैं और करते भी हैं। उस कार्य के लिए टीका या भाष्य सहित भारी ग्रन्थ असुविधाजनक होते हैं। इसलिए हमारा यह संस्करण मुख्यत: उस वेदानुयायी धार्मिक जनता के लिये ही समझाना चाहिए जो इसके द्वारा वेदार्थ का यत्किंचिन ज्ञान-प्राप्त करके हिन्दू धर्म के मूल सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा रखती है।

—:o:—

सामवेद के उपदेश और शिक्षायें

सामवेद यद्यपि चारों वेदों में आकार की दृष्टि से सबसे छोटा है और इसके १८७५ मन्त्रों में से ६९ को छोड़कर शेष सभी लगभग ऋग्वेद के हैं। केवल १७ मन्त्र अथर्ववेद तथा यजुर्वेद के पाये जाते हैं। फिर भी इसकी प्रतिष्ठा सर्वाधिक है। विशेषत: जब हम गीता में भगवान कृष्ण को यह कहते हुए पाते हैं कि 'वेदानां सामवेदोऽस्मि" तब तो अवश्य ही मन में भाव उदित होता है कि सामवेद में ऐसी कौन-सी श्रेष्ठता और विशेषता है जिसके कारण भगवान ने इसको अपनी प्रमुख विभूति बतलाया। विचार करने से यही प्रतीत होता है कि यद्यपि ऋग्वेद सबसे बृहद कलेवर का हैं और अथर्ववेद तथा यजुर्वेद भी काफी बड़े हैं, पर सामवेद छोटा होने पर भी सबका भार रूप है। जैसे चतुर माली उत्तमोत्तम पुष्पों को लेकर एक सुरम्य गुलदस्ता बना देता है, इसी प्रकार समस्त वेदों के चुने हुए अंश सामवेद में एकत्रित किये गये हैं। आदिमकालीन यज्ञों में भगवान की जो सर्वश्रेष्ठ भावपूर्ण मधुर और संगीतमय स्तुतियाँ की गई थीं, उन्हीं को चुनकर सामवेद के रूप में उपस्थित किया गया है। इसके अध्ययन से वैदिक ऋषियों की अत्युच्च आध्यात्मिक भावनाओं का दिग्दर्शन होता है और उन्होंने मानव मात्र के लिये जो उपदेश और शिक्षायें दी हैं, उनका भी लाभ मिलता है। यों तो वेद का प्रत्येक मंत्र ही ईश्वरीय ज्ञान का भण्डार है और मनुष्य को मोक्ष मार्ग दिखलाने वाला है, पर सामवेद की भक्तिरसपूर्ण काव्यधारा में अवगाहन करने से तुरन्त ही मनुष्य का अन्तरतम निर्मल, विशुद्ध, पवित्र और रससिक्त हो जाता है। जो पाठक इसके मंत्रों और उनके गूढ़ आशय का ध्यानपूर्वक अध्ययन तथा मनन करेंगे, वे स्वयं, इस परमानन्द का अनुभव कर लेंगे। आगे चलकर हम उदाहरण स्वरूप थोड़े से मन्त्रों का आशय और व्याख्या दे रहे हैं जिससे पाठकों को वेद मन्त्रों की प्रतीक युक्त शैली और उसके वास्तविक भाव को प्रकट करने की प्रणाली का कुछ अनुमान हो सकेगा। सामवेद के मंत्र अमूल्य रत्नों

की खान हैं, उनमें जो जितना ही गहरा उतरेगा, जितना ही परिश्रम करेगा, उतने ही ज्ञान रूपी अमूल्य मणि-मणिक वह प्राप्त कर सकेगा।

उदार बनो

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराणः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे॥
(उ० १५-१-४)

"हे अग्ने! अदानशीलों से हमको बचा और संघर्षों से हमारी रक्षा कर। हम यज्ञसिद्धि के लिये तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं। अर्थात् जो परस्वत्वापहारी दुष्ट समस्त सामग्रियों को अपने लिये ही हड़पना चाहते हैं उनसे हमारी रक्षा करो और उनके प्रति संघर्ष में हमारे सहायक बनो।"

इस मन्त्र में ऋषि अदानशीलता, अनुदारता, संकीर्णता, स्वार्थपरता आदि की निन्दा करते हुए तेज—स्वरूप परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि ऐसे व्यक्तियों तथा ऐसी भावनाओं से हमारी रक्षा करो क्योंकि इस प्रकार केवल अपना ही स्वार्थ देखने वाला और दूसरों के स्वप्नों को दबाने की इच्छा वाला व्यक्ति ही संसार की दुर्दशा और अधः पतन का मुख्य कारण होता है। ऐसे ही लोगों के कारण समाज में अनुचित संग्रह की प्रवृत्ति की वृद्धि होती है जिसका परिणाम छीना-झपटी और घोर अशान्ति होता है। शीलता की प्रवृत्ति को अपनाना चाहिए। जब हम सबके प्रति इस प्रकार के सहानुभूतिपूर्ण और न्याययुक्त व्यवहार की भावना रखेंगे और तदनुसार आचरण करेंगे तो परमात्मा भी सब प्रकार संघर्षों में हमारी रक्षा करेगा। तभी जीवन की सच्ची प्रगति, उन्नति समृद्धि से हम उसका आश्रय पाने के अधिकारी हो सकेंगे।

यही उपदेश अन्यत्र 'सोम' के उद्देश्य से कहे गये अन्य दो मन्त्रों में दिया गया है।

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः।
योनावृतस्य सीदत (उ० ६-२-३)

"हे सोम, अदानशील, (लोभी लालची व्यक्तियों) को दूर करो। मन के देखने (जानने) वाले तुम इस यज्ञ स्थान में स्थित होओ अर्थात् संकीर्ण और स्वार्थी मनोवृत्ति के व्यक्ति कदापि परमात्मा की भक्ति रूपी यज्ञ में स्थान नहीं पा सकते। वे परमात्मा से सदैव दूर ही बने रहेंगे।"

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् (उ० ९-५-१-७)

'हिंसकों और अदानशीलों का नाशक सोम इन्द्र के स्थान की ओर जाकर धार रूप से गिरता है। अर्थात् इन्द्र रूपी परमात्मा का अध्ययन प्राप्त करने से पूर्व हिंसा (निर्दयता, कठोरता) तथा अदानशीलता (कृपणता, स्वार्थपरता) के भावों को त्याग देना अनिवार्य है। बिना ऐसा किये आत्मा का परमात्मा की तरफ प्रवाहित (अग्रसर) हो सकना सम्भव नहीं। ऐसा व्यक्ति यदि किसी कामना की पूर्ति के उद्देश्य से परमात्मा की—देवताओं की उपासना करता भी है, तो भी उसकी दृष्टि मुख्यतः सांसारिक सम्पत्तियों पर ही लगी रहती है। इस सम्पत्ति का बन्धन उसे इस प्रकार जकड़े रहता है कि बाहर से ईश्वर की उपासना-भक्ति करते हुए भी वह अन्तर से कभी उनके निकट नहीं पहुंच पाता और संसार चक्र में फँसा हुआ कष्ट ही सहन करता रहता है।

इसी तथ्य को दृष्टिगोचर रखकर वेद न बार-बार मनुष्य को दानशीलता, उदारता, परोपकार, दया आदि का उपदेश दिया है। ये गुण मनुष्य की आत्मा का विकास और उत्थान होने के लिये तो आवश्यक माने ही गये हैं, पर इनके बिना समाज की प्रगति भी नहीं हो सकती। जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपने स्वामी पर दृष्टि रखेगा और दूसरे लोग चाहें मरें और चाहें जीवें, उनके सुख दुःख की तरफ से आँखें बन्द करके रहेगा, वहाँ कल्याण की आशा दुराशा मात्र है, क्योंकि समाज की उन्नति का मुख्य आधार सहयोग और एकता की भावना होती है। पारस्परिक सहयोग तथा सङ्गठन के द्वारा शक्तिशाली बनकर ही कोई मानव-समुदाय सांसारिक विषयों में सफलता प्राप्त कर सकता है।

अन्यथा जहाँ स्वार्थ की प्रधानता होगी वहाँ फूट और वैमनस्य का साम्राज्य ही दृष्टिगोचर होगा और वह समाज निर्बल और निस्तेज हो कर सब प्रकार की आपत्तियों से ही ग्रस्त बना रहेगा। इसलिए अपने कल्याण की रक्षा रखने वाला बुद्धिमान पुरुष को इन वेद मन्त्रों के आदेशानुसार अदानशीलता (अनुदारता, कृपणता) के दोषों से बचकर अपने पड़ौसियों, देशवासियों के प्रति सदैव उदारता की भावना रखनी चाहिये और अपनी शक्ति और साधनों के अनुसार सदैव दूसरों की सहायता के लिए तत्पर रहना चाहिये।

कर्मण्यता की प्रशंसा

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम्।
तूणी रथः सदा नवः (उ० १५—३—१)

"जो मनुष्यों का मार्गदर्शक होने से अग्रणी हैं, निरालस्य कर्मानुष्ठान में लगे मनुष्यों के हविवाहक होने के मन्थन द्वारा तत्काल ही प्रकट होते हैं, ऐसे अग्नि को तिरस्कृत नहीं करना चाहिये।"

इसी मन्त्र का आध्यात्मिक दृष्टि से प्रकट होने वाला आशय एक विद्वान् ने इस प्रकार लिखा है—"मननशील प्रजाओं का अति शीघ्रगामी रथ के समान कर्मवासनाओं को साथ ही लेकर चलने वाला आत्मा रूप अग्नि सदैव स्थिर रहता है। यह वेदान्त होने पर भी नष्ट नहीं होता। इसकी कर्ममय उपासना हमारे लिये कल्याणकारी हो।"

मानव-जीवन में कर्मण्यता का स्थान बहुत उच्च है। अनेक मनुष्य ऐसे भी देखने में आते हैं जो ज्ञान की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, आध्यात्मिकता का दावा करते हैं, लोक-परलोक के रहस्य के ज्ञाता बनते हैं, पर उनमें कर्तव्य कुछ भी देखने में नहीं आता। वे आलस्यवश या अव्यवहारिकता के कारण अपनी कही हुई बातों को कार्य रूप में कर दिखाने की शक्ति नहीं रखते। ऐसे लोगों पर से शीघ्र ही मनुष्यों की श्रद्धा हट जाती है और उनको बातूनी या 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, को

उपाधि दे दी जाती है। इसलिए मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने जीवन में कर्मण्यता का पूरा ध्यान रखें।

कर्मण्यता के सम्बन्ध एक अन्य सूक्त में इससे भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कहा गया है—

उत नो गोयषणिं धियमश्वसां वाजसामुत।

नृवत्कृणु ह्यूतये ।। (उ०१६—३—१)

"हे पूषा (सूर्य रूपी भगवान्) पशु, अन्न, बल आदि देने वाली बुद्धि (ज्ञान-शक्ति) और कर्मों (क्रिया-शक्ति) को हमारे रक्षणार्थ प्रेरित करो।"

मानव जीवन की सफलता का मुख्य आधार ज्ञान और क्रिया रूपी दो शक्तियाँ ही मानी गई हैं। अगर इन दोनों में से एक भी त्रुटिपूर्ण है तो मनुष्य कभी अपने उद्देश्य और आदर्श में कृतकार्य नहीं हो सकता। बिना क्रियाशीलता का ज्ञान अथवा ज्ञानशून्य क्रियाशीलता अधिकांश में निरर्थक ही रहते हैं। इसलिए उपासक को परमात्मा से सदैव यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वह उसे ऐसा ज्ञान प्रदान करे जो उसकी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को उचित रूप से प्रेरणा देता रहे, उनको सन्मार्ग पर चलने का मार्ग दर्शन करता रहे। साथ ही वह हमें ऐसी कर्मशीलता भी प्रदान करे जिससे धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुए गौ, अश्व, अन्न आदि सब प्रकार की सांसारिक भोग-सामग्री को भी प्राप्त कर सके। मनुष्य का जीवन सच्चे कल्याण का मार्ग है। यदि मनुष्य उस उद्देश्य के प्रतिकूल, बिना धर्म और आत्म-कल्याण का ध्यान रखे, आँखें बन्द करके स्वार्थ साधना पें प्रवृत्त हो जायगा, न्याय अन्याय, उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ का विवेक न रखकर किसी प्रकार अधिकाधिक धन-सम्पत्ति का संग्रह करना ही जीवन का लक्ष्य बना लेगा तो उसे अन्त में पतन के गर्त में गिरना ही होगा। जैसा इस मन्त्र में बतलाया गया है, स्थायी और सच्चे सुख सम्यक् ज्ञान और श्रेष्ठ बुद्धि

द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं और इन्हीं के लिए परमात्मा की सेवा में हृदय से प्रार्थना करते रहना चाहिए।

आत्म कल्याण की अभिलाषा

अग्न आ याहि वीतये गुणानो हव्य दातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ (उ० १—१—१)

"हे अग्ने ! (प्रकाश रूप परमात्मा) तुम अज्ञान (दुर्गुण) आदि का भक्षण करने और ज्ञान का प्रकाश करने के लिए हमारे यज्ञ को प्राप्त हो। दिव्य गुणों प्रदाता बनकर तुम मेरे हृदयासन पर विराजो।"

मनुष्य की सर्वाङ्गीण उन्नति और कल्याण के लिए उसके शारीरिक मानसिक, आध्यात्मिक तीनों प्रकार के विकास की आवश्यकता है। सब प्रकार के सांसारिक कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के लिए शरीर का स्वस्थ और आसक्त होना आवश्यक है। निर्बल शरीर वाला इस संघर्षपूर्ण संसार में कभी टिक नहीं सकता। इसके साथ ही मन और बुद्धि की उचित शिक्षा द्वारा विकास करना परमाश्यक है क्योंकि जब तक यह सच्चे रूप में मार्ग दर्शन न करे तब तक शारीरिक शक्ति प्रायः गलत रास्ते पर चली जाती है और लाभ के स्थान पर हानि उठानी पड़ती है। अन्त में शरीर और मन दोनों को आत्मा के आदेशों का ध्यान रखना भी अनिवार्य है क्योंकि हमारा अन्तिम लक्ष्य आत्म-कल्याण ही है। यदि केवल भौतिक उन्नति पर ही दृष्टि रखी गई और छल, बल और कौशल से किसी भी प्रकार स्वार्थ की पूर्ति की गई तो उससे आत्मिक शान्ति नहीं मिलेगी और इसके बिना सब मिट्टी ही है। इसलिए वेद के आरम्भ में सर्व प्रथम प्रकाश रूप परमात्मा से यही प्रार्थना की गई है कि वह हमारे अज्ञान और उससे उत्पन्न होने वाले दुर्गुणों का नाश करके सच्चा व कल्याणकारी ज्ञान-मार्ग दिखलावें। इसके लिए उपासक को अपना हृदय पवित्र करके उसे सदैव परमात्मा के सम्मुख आसन के रूप में रखना चाहिये, जिस पर विराजमान होकर वह उसे असत्य मार्ग पर जाने से रोके और सत्कर्मों की प्रेरणा करे।

हम सुमार्गगामी बनें

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ।

मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥ (उ० १—२५ (१)]

"हे मित्र ! हे वरुण ! हमारी इन्द्रियों के घर रूप देह (और मन) को प्रकाश युक्त ज्ञान रस से सींचो और उत्तम रस से हमारे पारलौकिक स्थानों (जीवन) को भी सिंचित करो ।"

मनुष्य संसार में जितने भी प्रकार से काम करता है, उसका मुख्य साधन उसका शरीर और इन्द्रियाँ ही होती हैं । इन्हीं के द्वारा वह भले या बुरे शुभ या अशुभ कर्म करने में समर्थ होता है । इसीलिए दशों इन्द्रियों को दस घोड़ों की उपमा दीं गई है और कहा गया है कि इनको मन रूपी लगाम और संयम रूपी चाबुक से वश में रखना चाहिये, अन्यथा इनका कुमार्गगामी होकर मनुष्य को विपत्ति-ग्रस्त कर देना बहुत सम्भव है । अनियन्त्रित इन्द्रियाँ प्राय: दुःख का ही कारण सिद्ध होती हैं और उनके कारण अनगिनत व्यक्तियों का जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, इसीलिए वेद-मन्त्र में परमात्मा से यही प्रार्थना की गई है कि वह हमारी इन्द्रियों को ज्ञान रस से सींचें, अर्थात् उनको ऐसा प्रेरणात्मक ज्ञान प्रदान करें कि वे कभी कुपथगामिनी न हों, सत्य और ज्ञानयुक्त व्यवहार को त्याग कर कभी असत् व्यवहार में संलग्न न हो जावें क्योंकि संसार में मनुष्य के सामने हर तरह के ऐसे प्रलोभन आते ही रहते हैं जिनसे उसकी न्याय बुद्धि दब जाती है और वह उचित—अनुचित का ख्याल छोड़कर केवल अपने लाभ की ही बात सोचने लगता है । पर ऐसा करने से उसे न तो इस लोक में सच्चा सुख मिलता है और न उसका परलोक ही बन सकता है । इसलिए लोक और परलोक के सुधारने के लिए मनुष्य को सदैव परमात्मा से यही प्रार्थना करते रहना चाहिये कि वह हमारी ज्ञान शक्ति को ऐसी श्रेष्ठ प्रेरणा देता रहे कि उसके द्वारा हम सदैव मंगलजनक कार्य ही करते रहें और विपथगामी होने से बचें ।

ज्ञान-दान का पवित्र कर्त्तव्य

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां गुह्यं नाम गोनाम् ॥
(उ० १—३—१०३)

"बुद्धिमान अनुष्ठानकर्ता, परमज्ञानी साधक, ऋषि इन्द्रियों (अथवा वेद वाणी) में स्थित जो परमानन्द रूपी दुग्ध है, इसे यत्न पूर्वक प्राप्त करता है। अर्थात् सत्य ज्ञान का द्रष्टा, मनुष्यों में अग्रणी सबको प्रभावित करने वाला विद्वान् वही हो सकता है जो इस अध्यात्म तत्व को स्वयं जानता है और दूसरों को भी बतलाया है।

वेद अमूल्य शिक्षाओं और उपदेशों का भण्डार है। उसमे परमात्मा ने संसार के शाश्वत और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों का ज्ञान मनुष्यों के कल्याणार्थ प्रकट किया है। जो उनको हृदयङ्गम करके तदनुकूल आचरण करेगा, उनका लोक और परलोक में कल्याण होना सुनिश्चित है। यद्यपि संसार में भी सच्चा सुख, शान्ति, सन्तोष उसी को मिल सकता है जो धर्माचरण करता है और सत्य तथा न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होता पर, फिर भी यह सांसारिक जीवन बहुत समय का है। इसके पश्चात मनुष्यों को परलोक यात्रा करनी ही पड़ती है और वहाँ इस दुनियाँ की चालबाजियों तथा कपट से जरा भी काम नहीं चल सकता। वहाँ वही सुखी रह सकता है जिसने अपना जीवन परमात्मा और आत्मा के आदेशानुसार व्यतीत किया है। इसीलिए इस मन्त्र में यह उपदेश दिया गया है कि ज्ञानी पुरुष को सदैव देशानुकूल सत्य सिद्धान्तों का अनुशीलन और मनन करके उसके रहस्य को स्वयं समझना चाहिए और अन्य कम बुद्धि वाले लोगों को भी समझाना चाहिए। इसी से जीवन की सफलता तथा कृतकृत्यता है। संसार में धर्म का मार्ग अति सरल तथा सुगम होते हुए भी माया—जाल में फँसे लोगों के लिए महा कठिन है। सच्चा ज्ञानी और धर्मात्मा वही है जो ऐसे लोगों को प्रेरणा देकर सुमार्ग पर लावे और उनको पतन के गर्त

में गिरने से बचावे। इसलिए वेद ने इस मन्त्र में यज्ञ दान की महत्ता को स्पष्ट रूप से प्रकट किया है और प्रत्येक सच्चे विद्वान् ऋषि के लिए उसे आवश्यकीय कर्त्तव्य बतलाया है।

परोपकार सर्वोपरि कर्त्तव्य है

वषट्ते विष्णवास आकृणोमि
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं
पात स्वस्तिभिः सदा नः। (उ० १०-११-४१३)

'हे विष्णो (यज्ञ-रूप सर्व-व्यापी भगवान्) मैं तुम्हारे निमित्त हव्य देता हूं (तुम्हारी भक्तिपूर्ण हृवय से स्तुति करता हूँ) तुम उसे ग्रहण करके वृद्धि को प्राप्त होओ (यज्ञ कर्म को वढ़ाओ) और सब देवताओं सहित हमारे रक्षक रहो।''

परमात्मा की शक्ति इस प्रत्यक्ष विश्व में व्याप्त होकर इसकी निरन्तर वृद्धि और पालन कर रही है, इसको वेद में विष्णु नाम से सम्बोधित किया गया है। वह सदैव समस्त प्राणियों का कल्याण करती रहती है और उन्हें हानिकारक मार्ग से बचने की प्रेरणा देती रहती है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह इस ईश्वरीय आदेश का ध्यान रखे और उसका पालन करता हुआ विष्णु के यज्ञ-कर्म में यथा शक्ति सहयोग करता रहे। इस मंत्र में जो वषट्कारयुक्त हव्य देने का उल्लेख है, उसका आश्रय केवल अग्नि में आहुति देन का नहीं वरन् हृदय से ईश्वरीय आदेश के पालन करने का भी है। ईश्वर वास्तव में उसी की स्तुति, विनय को ग्रहण कर सकता है और उसी को अपना कृपा-दान दे सकता है जो उसकी आज्ञा को ठीक प्रकार से समझ कर सृष्टि-कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए परोपकार का कार्य करता रहता है। समस्त सृष्टि के संचालन और पालन का भार भगवान पर ही हैं और वह प्रत्यक्ष रूप में इसे मनुष्यों द्वारा ही सम्पन्न करता है। इसलिए भगवान का सच्चा भक्त वही है जो इस कार्य में सहायक सिद्ध हो। अन्यथा अपने

स्वार्थ साधन के निमित्त सृष्टि में अव्यवस्था उत्पन्न करना (जैसा आज-कल अधिकांश व्यक्ति कर रहे हैं। और भगवान से अपने कल्याण और उन्नति की प्रार्थना करना कोरा ढोंग है। इसलिए इस मंत्र में हृदय से हव्य देने पर बल दिया गया है। जो उपासक लौकिक यज्ञ करते हुए उसके मूल उद्देश्य का भी ध्यान रखते हैं, वे ही परमात्मा के कृपा-पात्र होते हैं।

ज्ञान-विज्ञान का स्त्रोत

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः।
अनिताग्नेर्जनितासूर्य्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितो विष्णोः॥
(उ० ५-६-१६) (१)

"बुद्धि का जनक, आकाश नियन्ता, पृथ्वी को विस्तार देने वाला, अग्नि और सूर्य का प्रकाशक, इन्द्र और विष्णु को भी प्रकट करने वाला सोम पात्रों में जाता है। अर्थात् जो सोम रूप परमात्मा समस्त ज्ञान का आधार, आकाश तथा पृथ्वी के समान विस्तृत, अग्नि और सूर्य के समान अज्ञानान्धकार का नाशक, इन्द्र तथा विष्णु के समान सबका पोषण करने वाला है, वह हमारी आत्मा को प्रकाशित करे।"

यह सोम रूप परमात्मा ही मति (ज्ञान) का मुख्य स्रोत है। जब तक उसकी कृपा न हो तब तक मनुष्य के ज्ञान चक्षु नहीं खुलते और जब तक मनुष्य अज्ञान में पड़ा है, तब तक उसका कोई महत्त्व नहीं। अज्ञानी तो लकड़ी, पत्थर, मिट्टी आदि जड़ पदार्थों के समान है जिसका कोई भी चालाक आदमी अपने लाभ के लिए इच्छानुसार प्रयोग कर सकता है। पर जब मनुष्य के भीतर ज्ञान का उन्मेष होता है और वह लौकिक तथा पारलौकिक विषयों के रहस्य को जानने लगता है, तो वह जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक सांसारिक विषयों में ही सफल-काम नहीं होता, वरन् आकाश और पृथ्वी की महान शक्तियों का ज्ञाता और उपयोग करने वाला भी बन जाता है। वह अग्नि, सूर्य, जल आदि की शक्तियों को वशीभूत करके मानव जीवन को सब प्रकार से समृद्ध और

सुखी बना सकता है, इसलिए वेदों ने जगह-जगह ज्ञान की महत्ता और प्रधानता को दर्शाया है और उसकी प्राप्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना की है। इसी भाव को इससे अगले मन्त्र में भी प्रकट किया गया है—

ब्रह्मा देवानां पदवी: कवीनामृषिर्विप्राणां
महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोम:
पवित्रमत्येति रेभन्॥

"ऋत्विज-श्रेष्ठ ब्रह्म परम मति से पद-योजना करने वाले सोम को शब्द (ज्ञान-प्रदायक भावना) के साथ छानते हैं।"

आध्यात्मिक दृष्टि से अन्यत्र इसका यह अर्थ किया है "वह सोम जो दिव्यता की इच्छुक इन्द्रियों का ज्ञानोपदेष्टा, क्रान्त-दर्शन की इच्छुक इन्द्रियों का लक्ष्य, कर्मशील इन्द्रियों का ज्ञान-प्रेरक, अन्वेषक इन्द्रियों को बल देने वाला, आकाश-पूर्ति के लिये उन्हें वेग देने वाला है, वह सोम अन्तर्नाद करता हुआ अन्त:करण में प्रविष्ट होता है।

सब मनुष्य परमात्मा की कृपा से ज्ञान की प्राप्ति में सफल हो जाता है तो उसके प्रभाव से उसकी कायापलट हो जाती है। उसकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ शक्तिशाली, सतेज और वेगवती होकर जीवन-क्षेत्र में एक नई क्रान्ति उपस्थित करने लगती हैं उसकी सूझ-बूझ, खोज करने की बुद्धि, विघ्न बाधाओं का सामना करने का साहस, कठिन परिस्थितियों में निश्चल होकर डटे रहने की वीरता आदि अनेक महत्त्व पूर्ण गुणों का उसमें विकास होने लगता है। अज्ञानावस्था में तो वह प्रत्येक नई बात से डरता रहता था और चाहता था कि किसी प्रकार लकीर पर चलता हुआ अपनी प्राण रक्षा कर सकूँ। किसी प्रकार मेरा जीवन कठिनाईयों से बचकर कट जाय। पर ज्ञान की शक्ति अन्त:करण में प्रविष्ट हो जाती है तब वह गीदड़ की तरह डरपोक को दुस्साहसी सिंह तुल्य बना देती है। तब वह निर्भय होकर ससार में सर्वत्र विचरण करने लगता है और अपनी उन्नति, लाभ, सुख के साधनों का भली

प्रकार उपयोग करने लगता है। ऐसा मानव-जीवन ही सफल और सार्थक माना जाता है और वह ज्ञान की प्राप्ति से ही सम्भव होता है।

इसी प्रकार का तीसरा मन्त्र इस प्रकार है—

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिर स्तोमान् पवमानो मनीषाः।
अन्तः पश्यन् वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन्॥
(उ० ५—६—१९ (१३)

"प्रवाहित नदी जैसे शब्द समूह को प्रेरित करती है, उसके समान ही सोम मन के प्रिय, हितकारी शब्दों को प्रेरणा देता है। वह विजय के ज्ञान वाला पराक्रम को प्राप्त करता है।"

आध्यात्मिक दृष्टि से इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—"वह सोम मनोवृत्तियों में पहुँच कर नदी में उठती लहरों के समान वाणी से प्रवृत्त स्तुतियों के समूह को प्रेरित करता है, इन्द्रिय रूप गौओं में बल वीर्य का सिंचन करने वाला वह अन्तर्द्रष्टा एवं ज्ञानवान क्षुद्र ज्ञानवृत्तियों को अपने वश में रखता है उन पर नियन्त्रण रखता है।"

ज्ञान का लक्षण और प्रभाव केवल यह नहीं है कि वह भौतिक सम्पत्तियों की प्राप्ति है सफल बना दे, वरन् इससे भी बढ़कर उसकी प्रशंसा इस बात में है कि वह मानसिक दृष्टि से भी मनुष्य का नवीनीकरण करदे। सच पूछा जाय तो मनुष्य की बाह्य सफलताएं उनके मनोराज्य विकास और आन्तरिक शक्तियों पर ही आधारित होती हैं। जो मनुष्य सांसरिक सफलताओं का उद्देश्य सामान्य भोग विलास की पूर्ति ही समझ लेता है और अनियन्त्रित इन्द्रियों के वशीभूत होकर उन्हीं की विषय पूर्ति में निमग्न हो जाता है, उसका जीवन नष्ट और निरर्थक समझना चाहिए। धन, वैभव प्राप्त करके श्रेष्ठ रीति से जीवन व्यतीत करना और बात है तथा धनके मद से मत्त होकर भोगों को ही सब कुछ समझ लेना तथा मानव-जीवन के परम लक्ष्य से विमुख रहना दूसरी बात है। इसलिए मन्त्र में परत्मा से ज्ञान की प्राप्ति और उनके द्वारा जीवन को सशक्त, सबल बनाने की प्रार्थना के साथ

साथ यह भी विनय की गई है कि शक्ति वैभव और सम्पत्ति को पाकर हम अपने वास्तविक स्वरूप को न भूल जायें। मनुष्य की प्रशंसा इसी में है कि वह क्षुद्र मनोवृत्तियों को वश में रखकर उत्कृष्ट वृत्तियों को विकसित करे और अपने जीवनको लौकिक तथा पारलौकिक दोनों दृष्टियों से ग्रहणीय बनावे।

सच्चा भक्तिभाव

अग्ने मृड महां अस्यय आ देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम् (पू० १-३-३)

"हे अग्नि स्वरूप परमात्मा! तुम महान् और गमनशील सर्वत्र (व्यापक) हो, हमें सुख प्रदान करो। तुम देवदर्शन की कामना वाले (ईश्वर की पूजा करने के अभीलाषी) यजमान के निकट कुशारूप आसन पर बैठने के लिए आगमन करते हो अर्थात् अपने उपासकों के हृदयासन पर विराजमान होते है।

इस विश्व ब्रह्माण्डमें जो सर्वोपरि सत्ता और महान् शक्ति सर्वत्र व्याप्त है वह भगवान् ही की हैं। वही इस समस्त सृष्टि का संचालन करती है, प्राणी मात्र को उत्पन्न करती और पालती है और वही अन्त में उसे स्वकर्मानुसार भली या बुरी गति देती है। इसलिए संसार में जन्म लेकर मनुष्य का सर्व प्रथम कर्त्तव्य यही है कि वह भगवान की पूजा-उपासना करे और हृदय में सदा उनका ध्यान बनाये रहे। बिना भगवान् की भक्ति के मनुष्य का जीवन सर्वथा नीरस और निस्सार है। जिसने केवल खाने-कमाने को ही जीवन का सार समझ लिया और कभी भगवान् के लोकहितकारी रूप का ध्यान नहीं किया, उसमें और पशु—पेड़-पत्थर में कुछ भी अन्तर नहीं है। इसलिए इस मन्त्र द्वारा वेद भगवान् ने मनुष्य-मात्र को उपदेश दिया है कि यदि वे अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं तो प्रकाशस्वरूप भगवान् को अपने हृदयदेश में स्थापित करें जिससे वहाँ फैला हुआ अन्धकार दूर होकर कल्याण मार्ग की ओर कदम उठा सके। साथ ही यह भी बतलाया गया है कि भगवान्

की प्राप्ति मनुष्य को केवल बहारी भजन-पूजन या हवन आदि से नहीं हो सकती वरन् इन कार्यों के साथ उसके भीतर भगवान् के प्रति सच्चा भक्तिभाव भी होना चाहिए। बिना आन्तरिक उत्कृष्ट अभिलाषा के केवल दिखावे के लिए अथवा दूसरों की नकल करते हुए भगवान की स्तुति के गीत गा लेने से काम नहीं चल सकता। भगवान् परम दयालु है और वे प्राप्त भी हो सकते है, पर उसके लिये भक्ति होने की शर्त अवश्य है। वे अभक्त मनुष्य को अर्थात् ऐसे लोगों को जिनकी दृष्टि केवल सांसारिक स्वार्थ-साधन पर ही रहती है, प्राप्त नहीं हो सकते।

सद्गति का मार्ग

आ वो राजनमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पूरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणध्वम्॥
(पू० १-७-७)

'हे ऋत्विजो ! (उपासको) यज्ञ के स्वामी, होता (कर्म-फल-दाता), रुद्र रूप पापियों को दण्ड देने वाले, हिरण्यवर्ण वाले (ज्योति-स्वरूप), अग्नि रूप तेजस्वी ईश्वर की मरने से पहले ही हवि द्वारा (भक्ति युक्त) उपासना करो।"

ससार में मृत्यु से बढ़कर सुनिश्चित चीज और कोई नहीं है। मनुष्य कैसा भी बलवान्, बुद्धिमान, शक्तिशाली, ज्ञानी-ध्यानी क्यों न हो, एक दिन उसे इस भौतिक जगत को त्याग कर जाना ही पड़ता है। इसलिए प्रत्येक सज्ञान मनुष्य का परमावश्यक कर्त्तव्य यह है कि वह इस लोक के कर्त्तव्यों को करते हुए परलोक का ध्यान भी सदैव रखे। उसे भली प्रकार समझ रखना चाहिये कि परमात्मा जहाँ पर दतालु, कल्याणकारी हितैषी, भक्तों पर कृपा रखने वाले हैं, वहाँ दुष्कर्म, पाप, निर्दयता और अत्याचरण के लिए उतने ही कठोर दण्ड देने वाले भी हैं। वे समस्त संसार के स्वामी हैं और उनका कर्त्तव्य एक शासक की तरह भले और कर्मों का न्यायानुसार फल प्रदान करना भी है। इस कार्य में वे किसी के साथ रियायत नहीं कर सकते। इसलिये इस

मन्त्र में कहा गया है कि मनुष्य का हित इसी में है कि मृत्यु के पूर्व ही हवि द्वारा उनकी पूजा करता रहे, अर्थात् उनके आदेशानुसार संसार की भलाई के कामों में सहयोग करता रहे। जो व्यक्ति दूसरों का अहित करने वाले पाप-कर्मों से बच कर रहता है और अपनी शक्ति के अनुसार सबके साथ भलाई का व्यवहार करता है, वह भगवान् के दरबार में अवश्य सद्‌गति का अधिकारी माना जायेगा।

सत्य व्यवहार की महत्ता

अर्लषिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
यो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन्॥

(उ० १८-१०-१४-...)

"हे स्तोताओ! (उपासको) सत्यानुयाइयों को दान देने वाले इन्द्र (परमात्मा) का स्तवन करो। यह कल्याण रूप दान देने की प्रेरणा वाला उपासक (भक्त) की कामना को व्यर्थ नहीं जाने देता।"

धर्म के ज्ञाता ऋषि-मुनियों ने मनुष्य को सदाचार के निमित्त जिन बातों का उपदेश दिया है, उनमें सत्य की बड़ी महिमा है। आजकल हम बहुत से लोगों को यह कहते सुनते हैं कि सच्चाई का जमना तो गया, अब तो वही आदमी लाभ में रहता है जो हर तरह की चालबाजी झूठ आदि से काम लेना जानता है' वास्तव में देखा जाय तो ऐसे लोग दया के पात्र हैं। वे बेचारे कुछ चाँदी के टुकड़ों केलिए अपनी अमूल्य आत्मा का हनक करते हैं और अन्त में सांसारिक लाभ की दृष्टि से घाटे में ही रहते हैं। हमारे शास्त्रकारों ने तो हजारों वर्ष पहले उच्च स्वर से यह घोषणा कर दी थी—सत्यमेव जयते नानृतम्। विजय सत्य की होती है, झूंठ कभी नही जीत सकता। क्या यह शास्त्र वाक्य आज गलत सिद्ध हो सकता है? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। जो लोग झूंठ को लाभदायक बतलाते हैं वे संकीर्ण बुद्धि वाले और अदूरदर्शी हैं। उनकी निगाह जमीन पर पड़े दानों में लगी रहती है। किन्तु उस पर लगे हुए जाल को वे लोग नहीं देखते। असत्य व्यव-

हार के द्वारा मनुष्य दो चार दिन के लिए दूसरों को धोखे में डाल सकता है, थोड़ा सा लाभ उठा सकता है, पर शीघ्र ही उसका भेद खुल जाता है और वह दीन-दुनिया, कहीं का नहीं रहता। इसी तथ्य को प्रकट करने के लिए इस वेद-मन्त्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ईश्वर सत्यानुयाइयों को ही अपना कृपा-पूर्ण दान देता है। जो लाभ उसके आदेशानुसार सत्य के अनुगामी बने रहते हैं, वह उनकी समस्त उचित कामनाओं को पूर्ण करता हैं। वह परमात्मा न्यायकारी और सत्यप्रिय है। वह कभी असत्य व्यवहार को आश्रय नहीं दे सकता और न ऐसा व्यवहार करने वाला कभी उसका कृपापात्र हो सकता है। जो मनुष्य सत्य की महिमा को भूल कर असत्य का मार्ग ग्रहण करते हैं, अपने कार्यों और वचन में यास्तविकता का भाव नहीं रखते, वे शीघ्र ही अन्य लोगों की निगाहों में गिर जाते हैं, चाहे वे कुछ समय के लिये सम्पत्तिशाली दिखाई दें, पर न तो कोई उनको सम्मान की दृष्टि से देखता है और न उनका वैभव स्थायी होता हैं। इसलिये परमात्मा के आदेशानुसार सदैव सत्य पर ही स्थिर रहना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

आत्मसुधार को आवश्यकता

कद चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसिदाशुषे ।
उपोपेन्नु मधवन् भूय इन्नु ते दीन देवस्य पृच्यते ॥
(पू० ३-७.८)

'हे इन्द्र ! (परमात्मन्) आप हिंसक कदापि नहीं हो (अर्थात् किसी का अकारण दण्डित नहीं करते) । आप हविदाता के पास ऋत्विज को प्रेरणा करते हो अर्था दानशील परोपकारी को उसके सत्कर्मों का सुफल देते हो । हे मधवन् (भगवान्) आपका बहुत सा दान हमें प्राप्त होता है।"

आजकल अनेक लोगों की यह प्रवृत्ति देखने में आती है कि वे सकारण व अकारण, समय अथवा जमाने को दोष देते रहते हैं। वे कहते हैं—"क्या करें जमाना ही ऐसा बुरा आ गया है कि भले आदमियों की मिट्टी खराब है।" पर वास्तविकता यह होती है कि वे स्वयं दूषित विचार रखते हैं, वैसे ही कार्य भी करते हैं और फिर अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए जमाने को दोषी बनाते हैं। उपर्युक्त वेद-मन्त्रों में स्पष्ट कहा गया है कि परमात्मा कभी किसी को अकारण दण्ड नहीं देता, अर्थात् जो लोग कष्ट पाते हैं अथवा जिनको किसी प्रकार का दण्ड मिलता है, वह उनके दुष्कर्मों के फलस्वरूप ही होता है। अन्यथा जो व्यक्ति हृदय से भगवद् भक्त होगा और अन्य प्राणियों को भी भगवान का बनाया समझ कर उनके साथ सद्व्यवहार करेगा, वह न कभी दुःखी हो सकता है, न उसका कभी बुरे रूप में नाश हो सकता है। उसे भगवान् अपने कृपा रूपी दान से सदैव सन्तुष्ट ही रखते हैं। इसलिए वेद के उपदेशानुसार मनुष्य को सदा परमात्मा के आदेशों को ध्यान में रखकर श्रेष्ठ रीति से कर्त्तव्य पालन में आत्मोत्कर्ष का प्रयत्न करते रहना चाहिये। इसमें यह भी संकेत किया गया है कि कर्मों का प्रतिफल इस जन्म में नहीं तो अन्य जन्मों में भी मनुष्य को प्राप्त होता रहता है। जो पुण्य कार्य हम करते हैं, वे कभी नष्ट नहीं होते वरन् उनका लाभ हमको वृद्धिमत् (बढ़े हुए) रूप में किसी न किसी प्रकार मिल कर रहता है।

भगवान की न्यायशीलता

मनोमि त्वस्मदा अदेवं कं विदत्रिणम्।
साह्वां इन्दो परि बाधो अप द्वयुम्॥

[उ० १६-४.२०-३]

"हे सोम रूपी परमात्मन् ! हमारे सम्बन्ध में पुरानी (सनातन) मित्रता का ध्यान रखो। हमारी वृद्धि रोकने वालों (दुष्टतापूर्ण तत्वों) को हमारे मार्ग से हटाओ। तुम शत्रुओं को सन्ताप करने वाले हो। इससे समस्त बाधकों को मिटा डालो (अर्थात् जो दुष्ट झूँठे, कपटी व्यक्ति अथवा शक्तियाँ कल्याणकारी कार्यों में बाधक हों, उन्हें नष्ट कर दो।)"

जैसा भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है "परित्राणाय साधूनाम विनाशायाच दुष्कृताम्" के सिद्धान्तानुसार परमेश्वर जहाँ एक ओर सज्जन और साधु प्रकृति के लोगो का पालन और संरक्षण करता है, वहाँ दूसरी ओर दुष्ट और कुकर्मियों पर अपना दण्ड प्रहार भी करता रहता है, यदि वह ऐसा न करता और दुष्ट तथा जघन्य वृत्ति के लोगों को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उनके दुष्कर्मों को कठोर दण्ड न देता रहता तो अब तक यह सृष्टि कभी की समाप्त हो गई होती। अन्यायी, अत्याचारी, निर्दयी, स्वार्थी व्यक्ति परमात्मा के अस्तित्व को भूल कर, अपनी क्षणिक शक्ति के मद से उन्मत्त होकर दूसरों के साथ दुर्व्यवहार करता है कि इस संसार में पाशविक बल के सिवा और कुछ नहीं है। इसलिए सबको मारना, पीटना, लूटना, खसोटना सबसे अच्छा और लाभदायक कार्य है। पर देर, सवेर एक दिन ऐसा आता है कि उसे अपने कुकृत्यों का परिणाम भोगना ही पड़ता है और पाश्चात्ताप की अग्नि में जलना पड़ता है। पाठक इतिहास को उठाकर उसके पन्नों पर दृष्टि डालें तो उनसे स्पष्टतः विदित होगा कि संसार में जितने भी बड़े-छोटे अन्यायी, अत्याचारी हुए हैं, उन सबका अन्तिम परिणाम कठिन और शोकपूर्ण ही हुआ है। इसके विपरीत साधु और सज्जन व्यक्ति कष्ट सह कर भी कल्याणकारी स्थिति को प्राप्त हुए हैं। यदि उनको परमात्मा के मार्ग में दुष्टों से संघर्ष करते हुए भी प्राणोत्सर्ग करना पड़ा है तो भी वे अन्तिम समय तक पूर्ण शान्ति और भगवान्

की कृपा का अनुभव करते रहे हैं और बाद में संसार में उनकी प्रशंसा भी की जाती है। इसी आधार पर इस मन्त्र से ऋषि ने भगवान् और भक्त के सनातन सम्बन्ध का उलेख करते हुये यही प्रार्थना की है कि उपासकों और साधकों के मार्ग में जो बाधायें आती है, और दुष्ट प्रकृति के लोग उनके सत्कर्मों में जो विघ्न उपस्थित करते हैं, उनको परमेश्वर अपनी शक्ति से हटावें और यथोचित दण्ड दें। भगवान सदा सज्जनों की रक्षा करते हैं, यह ध्रुव सत्य है।

पूर्वार्चिका

प्रथमः प्रपाठकः

[प्रथमोऽर्धः]

प्रथम दशति

(ऋषि—भरद्वाजः, मेधातिथि, उशनाः सुदीतिपुरुमीढौ, अंगिरसों वामदेवः। देवता—अग्निः।छन्द—गायत्री, ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ॥२

अग्नि दूतं वृणीमहे होतार विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३

अग्निर्वृत्राणि जंघनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ॥४

प्रेष्ठं वो अतिथिं स्तुषे मित्रमिव प्रियम् ।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥५

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः ।
उत द्विषो मर्त्यस्य ॥६

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥७

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वां कामये गिरा ॥८

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥९

अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यमूतये महे ।
देवो ह्यसि नो दृशे ।१०। (१-१)

हे अग्ने ! हमारी स्तुति से हवि ग्रहण करने के निमित्त आकर देवगण को हवि पहुँचाने के लिए, उनके आह्वान के निमित्त विराजिये । १ । हे अग्ने तुम सर्व यज्ञों के सम्पन्नकर्त्ता हो । तुम देवगण का आह्वान करने वाले ऋत्वजों द्वारा स्तुति पूर्वक गार्हपत्य यज्ञ के निमित्त प्रतिष्ठित किये जाते हो । २ । हम देवों के आह्वाहानकर्त्ता, सर्वज्ञाता, धनपति वर्तमान यज्ञ को सम्पन्न करने वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं । ३ । उपासकों को धन-दान का इच्छुक, प्रदीप्त अग्नि हमारी' स्तुतियों से प्रसन्न हुआ दुष्टों और अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करें ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! साधकों को धनदाता होने के कारण मित्र तुल्य प्रसन्नता प्रदान करने वाले पूज्य ! मेरी स्तुति से प्रसन्न होओ । ५ । हे अग्ने ! तुम हमें धनैश्वर्यवान् करते हुये शत्रुओं से हमारी रक्षा करो । ६ । अग्ने ! मेरे द्वारा उत्तम प्रकार से उच्चारित स्तुतियों को आकर सुनो और सोम-रस द्वारा बढ़ो । ७ । हे अग्ने तुम्हें अपने कल्याणार्थ आकाश से आकर्षित करना चाहता हूँ । ८ । हे अग्ने ! । अथर्वा ने मूर्धा के समान अखिल विश्व के धारणकर्ता, तुमको अरणियों से मन्थन कर प्रकट किया । ९ । हे अग्ने तुम हमारी महान् रक्षा के लिए सूर्यादि लोकों को सम्पन्न करो, क्योंकि तुम अत्यन्त प्रकाशित दिखाई देते हो ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—आयुङ् क्ष्वाहिः, वामदेवाः, प्रयोगः, मधुच्छन्दा, शुनःशेपः, मेधातिथिः, वत्सः, । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री)

नमस्ते अग्ने ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।

अमैरमित्रमर्दय ॥१

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् ।

यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥२

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।

वायोरनीके अस्थिरन् ॥३

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ॥४

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ।।५

प्रति त्यं चरुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि । ६

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्नि नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ।।७

और्वभृगुवच्छुचिमप्नवानवदा हुवे ।
अग्नि समुद्रवाससम् ।।८

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमिन्धे विवस्वभिः ।।६

आदित् प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवि ।१०। (१-२)

हे अग्ने ! बल की कामना वाले पुरुष तुम्हारे लिए नमस्कार करते हैं, अतः मैं भी तुम्हें नमस्कार करता हूँ। अपने पराक्रम के द्वारा शत्रु का संहार करो। १। हे अग्ने ! तुम यज्ञ के साधन रूप हविवाहक और देवताओं के दूत रूप हो। मैं तुम्हे वाणी रूप स्तुति के द्वारा प्रसन्न और प्रवृद्ध करता हूँ। २। हे अग्ने ! भगिनियों के समान यजमान की स्तुतियाँ यशगान करती हुई तुम्हारी सेवा में जाती हैं और तुम्हें वायु के योग से प्रदीप्त करती हैं।३। हे अग्ने ! हम तुम्हारे उपासक दिन और रात्रि में नित्य प्रति ही अपनी श्रेष्ठ बुद्धिपूर्वक तुम्हारी सेवा में

उपस्थित होते हैं। ४। हे अग्ने! तुम स्तुति द्वारा प्रवृद्ध होने वाले हो। सब यजमानों पर अनुग्रह करने के लिए और इस यज्ञ को सम्पन्न करने के लिए इस यज्ञ मण्डप में प्रविष्ट होओ। यह यजमान रुद्रात्मक अग्नि के निमित्त दर्शनीय स्तुति कर रहा है। ५। हे अग्ने उस श्रेष्ठ यज्ञ की ओर देखकर सोम पीने के निमित्त तुम बारम्बार बुलाये जाते हो। अतः देवताओं के इस यज्ञ में आगमन करो। ६। हे अग्ने! तुम यज्ञों के अधिपति रूप से प्रसिद्धि-प्राप्त एवं पूँछ वाले अश्व के समान हो। हम स्तुतियों द्वारा तुम्हें नमस्कार करने को उद्यत हैं। ७। भृगु के समान ज्ञानी, कर्म करने वाले एवं बड़वानल रूप से समुद्र में वर्तमान श्रेष्ठ अग्नि को मैं आहूत करता हूँ। ८। अग्नि को प्रदीप्त करने वाले पुरुष अपनी हार्दिक भावना और बुद्धि पूवक, ऋत्विजों के सहयोग से अग्नि को चैतन्य करें। ९। यह अग्नि जब स्वर्ग के ऊपर सूर्य रूपसे प्रकाशित होते हैं, तब सभी प्राणी उन निरन्तर गमनशील और आश्रयरूप सूर्य के तेज का दर्शन करते हैं ॥१०॥

तृतीय दशति

ऋषि—प्रयोग., भरद्वाजः, वामदेवः, वसिष्ठः, विरूपः पुनःशेपः, गोपवनः, प्रस्कण्वः, मेधातिथिः, सिन्धुद्वीप, आम्बरीषः, त्रित आत्यो वा, उशना। देवता—अग्नि। छन्द—गायत्री।)

अग्नि वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम्।
अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यंसद् विश्वं न्यत्रिणम्।

अग्निर्नो वंसते रयिम् ॥२

अग्ने मृड महां अस्यय आ देवयुं जनम् ।

इयेथ बर्हिरासदम् ॥३

अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति स्म देव रीषतः ।

तपिष्ठैरजरो दह ॥४

अग्न युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।

अरं वहन्त्याशवः ॥५

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं धीमहे वयम् ।

सुवीरमग्न आहुत ॥६

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।

अपां रेतांसि जिन्वति ॥७

इमम् षु त्वमस्माकं सनि गायत्रं नव्यांसम् ।

अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥८

तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अंगिरः ।

स पावक श्रुधी हवम् ॥९

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।

दधद्रत्नानि दाशुषे ॥१०

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥११

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।
देवममीवचातनम् ॥१२

शंनो देवीरभिष्टये शं नो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥१३

कस्य नूनं परीणसि धियो जिन्वसि सत्पते ।
गोषाता यस्य ते गिरः ॥१४ (१-३)

हे ऋत्विजों ! तुम अहिंसनीय यज्ञिकों के बन्धु, बलशील और ज्वालाओं से प्रवृद्ध अग्निदेव की सेवा में जाओ । १ । यह अग्नि अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से सब राक्षसों और विघ्नों को दूर करें । यह अग्नि हम उपासकों को सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ।२। हे अग्ने ! तुम महान् एवं गमनशील हो । हमें सुख प्रदान करो । तुम देवदर्शन की कामना वाले यजमान के निकट कुशा रूप आसन पर बैठने के लिये आगमन करते हो । ३ । हे अग्ने ! पाप से हमारी रक्षा करो हे दिव्य तेज वाले अग्ने ! तुम अजर हो । हमारी हिंसा करने की इच्छा करने वाले शत्रुओं को अपने संतापक तेज ने भस्म कर दो । ४ । हे अग्ने ! तुम्हारे द्रुतगामी कुशल अश्व तुम्हारे रथ को भली प्रकार वहन करते हैं। उन अश्वों को यहाँ आगमन के निमित्त रथ में योजित करो । ५ । हे अग्ने तुम धन के स्वामी, अनेक यजमानों द्वारा आहूत हुए एवं उपासना के पात्र हो । तुम तेजस्वी की स्तुति करने पर सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं । हमने तुम्हें यहाँ प्रतिष्ठित किया है । ६ । स्वर्ग के महान् देवताओ में श्रेष्ठ और

पृथ्वी के अधीश्वर यह अग्नि जलों के साररूप जंगम जीवों को जीवन देते हैं। ७। हे अग्ने ! हमारे इस हविरन्न और नवीन स्तुतियों को देवताओं के समक्ष निवेदित करो। ८। हे अग्ने ! तुम्हें स्तुति रूप वाणी से प्रवृद्ध करते हैं। तुम शोधक और सर्वत्र गमनशील हो। हमारे इस आह्वान को श्रवण करो।९। क्रान्त-दर्शी, अन्नों के स्वामी एवं हविदाता यजमान को रत्नादि धन देने वाले अग्निदेव हवियों को व्याप्त करते हैं।१०। अब प्राणियों के दर्शनार्थ सूर्य की रश्मियाँ उन प्रसिद्ध एवं जातवेद स्वीजते सूर्यात्मक अग्नि को उन्नत करती हैं । ११। हे स्तोताओं ! इस यज्ञ में क्रान्तदर्शी, सत्यधर्म वाले, तेजस्वी और शत्रुओं का नाश करने वाले अग्नि की सेवा में स्तुति करें। १२। हमारा कल्याण हो, दिव्य जल हमारे अभीष्ट पूरक यज्ञ के अंग रूप हो और हमारे पीने के योग्य हो। जल हमारे रोगों का शमन करने वाले हों, हमारे जो रोग उत्पन्न न हुये हों। उन्हें उत्पन्न होने से रोकें। यह जल हमारे ऊपर अमृत गुण वाले होकर स्रवित हों। १३। हे सत्य रक्षक अग्ने ! तुम इस समय किसके कर्म को वहन कर रहे हो ? किस कर्म से तुम्हारी स्तुतियाँ गौओं को प्राप्त कर रही होंगी ? ॥१४॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि— शंयु, भर्गः, वसिष्ठः, प्रस्कण्डवः, काण्वः ।

देवता—अग्निः। छन्द—वृहती।)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।

प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं न शंसिषम् ॥१

पाहि नो अग्न एकया पाह्यू द्वितीयया ।

पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥२
बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवत्पावक दीदिहि ॥३
त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वं दयन्त गोनाम् ॥४
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान् गृहपते महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥५
अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥६
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥७
त्वमित् सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतः कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥८
आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती सुयशस्तरम् ॥९
यो विश्वा दधते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ।

॥१०॥ (९१५)

हे श्रोताओ ! सब यज्ञों में बढ़ने वाले अग्नि के निमित्त तुम भी स्तुति उच्चारण करो। उन अविनाशी, मित्र, सब प्राणियों के जानने वाले और प्रिय अग्नि की हम भी भली प्रकार स्तुति करते हैं ॥१॥ हे अग्ने ! तुम अपनी एक स्तुति और दूसरी स्तुति से हमें रक्षित करो। हे अन्न के स्वामी अग्ने ! तुम हमारी तीसरी और चौथी स्तुति सुनकर भले प्रकार रक्षा करो ॥ ॥ हे तरुणतम अग्ने ! तुम श्रेष्ठ गुण सम्पन्न और शुद्ध करने वाले हो अपने उज्वल तेज से भरद्वाज के लिये प्रज्वलित होने वाले अत्यन्त तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् होकर हमारेलिए भी प्रज्वलित होओं ॥३॥ हे अग्ने ! यजमानों द्वारा आहूत हुए तुम धन-सम्पन्न और दानशील होकर हमारे मनुष्यों को गौएं प्रदान करते हो। तुम अपने स्तोताओं से प्रीति करने वाले होओ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम सब प्राणियों के स्वामी, स्तुत्य और राक्षसों को सन्तप्त करने वाले हो। हे गृहस्वामी अग्निदेव ! तुम पूजनीय, यजमान के घर को न छोड़ने वाले स्वर्ग के रक्षक हो। इस यजमान के यहाँ सदा स्थिर रहो ॥५॥ हे अग्ने ! तुम सब उत्पन्न जीवों के जानने वाले और अमरणशील हो। इस हविदाता यजमान के लिये उषा देवता द्वारा प्रचीन आश्रमयुक्त अद्भुत धनों को लेकर आओं और उषाकाल में जागृत हुए देवताओं को भी यहाँ बुलओं ॥६॥ हे अग्ने ! तुम दर्शनीय एव व्यापक हो। हमारे लिए अपने रक्षा-साधनों को धनों के सहित प्रेरित करो, क्योंकि तुम इस लोक के धन की प्रेरणा करते हो। हमारे पुत्र के लिये भी शीघ्र ही सुसम्मानित बनाओ ॥७॥ हे अग्ने ! तुम दुःखों के दूर करने वाले क्रान्तदर्शी, सत्य स्वरूप एवं महान् हो तुम समिधाओं द्वारा प्रदीप्त होने वाले और मेधावी अग्नि की स्तोतागण उपासना करते हैं ॥८॥ हे पावक ! अन्न की वृद्धि

करने वाले प्रशंसित धन को हमारे लिये लाओ। हे घृत के समीप रहने वाले अग्ने! अपनी श्रेष्ठ नीति के द्वारा हमारे लिए भी अनेक उपासकों द्वारा काम्य सुयश रूप धन को प्रदान करो ॥६॥ जो अग्नि आनन्ददायक और होता रूप से यजमानों को समस्त धनों के देने वाले हैं उन अग्नि के लिये हर्ष प्रदायक सोम के प्रमुख पात्र के समान स्तोम हमें प्राप्त हो ॥१०॥

पंचम दशति

(ऋषिः—वसिष्ठः, भर्गः, मनुः, सुदीतिपुरुमीढौ, प्रस्कण्वः, मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च, विश्वामित्रः, कण्वः। देवता—अग्निः, इन्द्रः। छन्द—बृहती)

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतमृतम् ॥१

शेषे वनेषु मातृषु सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्यं वहसि हविष्कृत आदिद् देवेषु राजसि ॥२

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्तु नो गिरः ॥३

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे।
ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पते देवा अवो वरेण्यम् ॥४

अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम्।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरोऽग्निः सुदीतये छर्दिः ॥५

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदतु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावभिरध्वरे ॥६

प्र दैवोदासो अग्निर्देव इन्द्रो न मज्मना ।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य शर्मणि ॥७

अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥८

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनं यद् दूरे सन्निहाभुवः ॥९

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ।
॥१०॥ (१।५)

उस बल के पुत्र, हमारे प्रिय ज्ञानी, श्रेष्ठ यज्ञ वाले, स्वामी सब देवताओं के दूत रूप से प्रतिष्ठित एवं अविनाशी अग्नि को मैं नमस्कार पूर्वक आहुत करता हूँ ॥११॥ हे अग्ने ! तुम वनों में और मातृभूता, अरणियों में स्थित रहते हो। याज्ञिक मनुष्य तुम्हें समिधाओं से प्रज्वलित करते हैं, तब तुम निरालस्य और और प्रबुद्ध होकर यजमान की हवि को देवताओं के पास वहन करते हो। फिर तुम देवताओं के मध्य विराजमान होकर सुशोभित होते हो ॥२॥ जिस अग्नि के द्वारा यजमानों ने कर्मों को किया, वह मार्गों के जानने वाले अग्नि दर्शनीय रूप से प्रकट हुए। उन श्रेष्ठ वर्ण वाले अग्नि के लिए हमारी स्तुति रूप वाणियाँ प्रस्तुत हों। ॥३॥ उक्थ युक्त अहिंसित यज्ञ में यह अग्नि

ऋत्विजों द्वारा वेदी में स्थापित हुए जैसे सोमाभिषण फलक कुशा पर आगे रक्खे जाते हैं। हे मरुद्गण ! हे ब्रह्मणस्पते ! ऋचा रूप स्तुतियों के द्वारा तुम्हारी सेवा में उपस्थित हुआ मैं तुम्हारी वरणीय रक्षा को माँगता हूँ ।।४।। हे स्तोता ! इन विस्तृत ज्वालाओं वाले अग्नि को रक्षा और धन की कामना से स्तुतियों के द्वारा प्रसन्न करो। इनके यश को जानकर अन्य मनुष्य भी इनकी स्तुति करते हैं। वे अग्नि मुझ यजमान को गृह प्रदान करें ।।५।। हे समर्थ कानों वाले अग्ने ! हमारी स्तुति को सुनो। मित्र और अर्यमा देवता प्रातःकाल यज्ञ में जाने वाले देवताओं के सहित तथा अग्नि के समान गति वाले वह्नि देवता के सहित इस यज्ञ में कुशाओं पर बैठें ।।६।। देवोपासकों द्वारा आहूत इन्द्रात्मक अग्नि सब लोकों की आश्रयरूपा पृथिवी को देवताओं के लिये हवि वहिन करने में प्रवृत करते हैं। यजमान इन्हें बलपूर्वक पुकारते हैं। इसलिए यह अपने स्थान स्वर्ग रहते नक्षत्रों से जगमगाते हुए महान् स्वर्गलोक से यहाँ आकर मेरे शरीर और वाणी के द्वारा प्रबुद्ध हो। हे श्रेष्ठ कर्म वाले इन्द्र ! तुम हमारे मनुष्यों को फलों से सम्पन्न करो ।।७-८।। हे अग्ने ! वनों की इच्छा करके भी उन्हें छोड़कर तुम मातृरूप जलों को प्राप्त हुई हो। इस कारण तुम्हारा निवर्तन भी असह्य हो जाता हैं। तुम अप्रकट होने पर इन अरणियों के द्वारा सब ओर से प्रकट होते हो ।।९।। हे अग्ने ! तुम ज्योतिस्वरूप हो। यजमानों के निमित्त तुम्हें प्रजापति देवयाग स्थान में स्थापित किया था। यज्ञ के लिये प्रकट हुए और हवियों से तृप्त हुए तुम कण्व ऋषि के निमित्त प्रदीप्त हुए थे। ऐसे तुम्हें सब प्राणी नमस्कार करते हैं ।।१०।।

। द्वितीयोऽर्धः ।

प्रथम दशति

(ऋषिः—वसिष्ठः, कण्वः, सौभरिः, उत्कीलः, विश्वामित्रः ।
देवता—अग्निः, ब्रह्मणस्पतिः, यूपः । छन्द–बृहती ।)

देवोवो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिचध्वमुप वा पृणध्वमादिद् वो देव ओहते ॥१

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥२

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्यसनितायदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ।३

प्र यो राये निनीषति मर्तो यस्ते वसो दाशत् ।
स वीरं धत्त अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् । ४

प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम् ।
अग्नि सूक्तेभिर्वचोभिर्वृणीमहे यं समिदन्य इन्धते ॥५

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे हि सौभगस्य । ।

राय ईशे स्वापत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥६
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्व पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि यासि च वार्यम् ॥७

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदंससं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥८॥१६

धनों को देने वाले अग्निदेव हवि से सम्पन्न और सब ओर से सिंचित तुम्हारे स्रुक् की भी कामना करें और होता के चमस को सोम से सम्पन्न कर। फिर वे अग्नि तुम्हारी हवि का हवन करें ।।१।। हमें ब्रह्मणस्पति देव प्राप्त हों। सत्य और प्रिय वाणी प्राप्त हो। सभी देवता हमारे शत्रुओं को नष्ट करें। मनुष्यों का हित करने वाले पंक्ति का (यज्ञ का) सामीप्य हमें प्राप्त हो ।।२।। हे अग्ने उन्नत होकर हमारी रक्षा के लिये सुप्रतिष्ठत होओ सविता के समान उन्नत होकर हमारे लिये अन्नदाता बनो। हम ऋत्विजों के साथ तुम्हें आहूत करते हैं ।।३।। हे श्रेष्ठ वास रूप अग्ने ! धन को कामना वाला जो उपासक तुम्हें प्रसन्न करता है, जो मनुष्य तुम्हारे लिए हवि देने की इच्छा करता है, वह उक्थ उच्चारण करने वाला सहस्रों के पोषक पुत्र को धारण करता है ।४। देवाश्रय प्राप्त अनेक प्राणियों पर अनुग्रह के निमित्त सूक्त रूप स्तुतियों से महान् अग्नि की उपासना करते हैं। उन अग्नि को अन्य ऋषियों ने भी भले प्रकार दीप्त किया ।।५।। यह यजनीय अग्नि सुन्दर सामर्थ्ययुक्त सौभाग्य के स्वामी हैं। गो आदि पशु, सन्तान तथा धनादि के अधिपति हैं। यह वृत्र रूप शत्रु नाशकों के भी स्वामी हैं ।।६।। हे अग्ने ! हमारे इस यज्ञ में तुम गृहपति और होता रूप हो। तु ही होता संज्ञक ऋत्विज हो

अतः श्रेष्ठ हवि का यजन करो और हमारी याचना पूर्ण कराओ ।।७।। अग्ने ! तुम हमारे सखा हो। श्रेष्ठकर्म करने वाले हम मनुष्यों को सरलता से प्राप्त होने वाले हो। हम अपनी रक्षा के निमित्त तुम अहिंसनशील को वरण करते हैं ।।८।।

द्वितीय दशति

(ऋषिः श्यावाश्ववामदेवौ, उपस्तुतो वार्हिष्टव्यः, वृहदुक्थः, कुत्सः भरद्वाजः, वामदेवः, वहिष्टः, त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः, । देवता—अग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, गायत्री ।)

आ जुहोता हविषा मर्जयध्वं नि होतारं गृहपतिं दधिध्वम् ।
इडस्पदे नमसा रातहव्यं सपर्यता यजतं पस्त्यानाम् ।।१
चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावन्वेति धातवे ।
अनूधा यदजीजनदधा चिदा ववक्षत् सद्यो महि दूत्यां चरन् ।।२
इदं त एकं पर उत एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
सवेशनस्तन्वे चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे । ३
इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।४

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ
जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्नः पात्रं जनयन्त
देवाः ॥५

वि त्वद् पो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरग्ने जनयन्त देवाः ।
तं त्वा गिरः सुष्टुतयो वाजयन्त्याजिं न गिर्वबाहो
जिग्युरश्वाः ॥ ६

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥७

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि ॥८

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्तादुपमामुदान डपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥९

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथव्युम् ॥१०॥ (·७)

हे ऋत्विजो ! अग्नि देवता को आहूत करो। इन्हें हवि से प्रसन्न करो। पृथुवी की उत्तरवेदी में गृह स्वामों और होता रूप इन अग्नि की स्थापना करो। जिन अग्नि को हमने नमस्कार किया है, उन्हें यज्ञ मण्डप में प्रतितिष्ठ करो ॥१॥ शिशुरूप एवं तरुण अग्नि का हवि-वहन कार्य अद्भुत है। जो अग्नि मातृभूता

द्यावा पृथ्वी को स्तरपान को प्राप्त नहीं होता, उस अग्नि को यह लोक प्रकट करे। उत्पन्न होने पर यह महान् दौत्य-कर्म वाले अग्नि वहन करते हैं ॥२॥ हे मृत पुरुष ! यह अग्नि तेरा एक अंश है तू उस अंश के सहित बाह्य अग्नि में सम्मिलित हो और वायु तेरा अंश है, उसके सहित बाह्य वायु में मिल, आदित्य रूप तेज से अपने आत्मा को मिला। देह प्राप्ति के लिए मङ्गलरूप होकर देवताओं के जनक सूर्य में प्रविष्ट हो ॥ ३ ॥ उत्पन्न जीवों के ज्ञाता और पूजनीय अग्नि के निमित्त इस स्त्रोत को संस्कृत करते हैं। हमारी श्रेष्ठ मति इन,अग्नि की सेवा करने वाली हो। हे अग्ने ! हम तुम्हारे मित्र होकर किसी के द्वारा सतप्त न हों ॥४॥ स्वर्ग के मूर्द्धारूप, पृथ्वी के अधिपति, क्रान्त-दर्शी, कर्म के साधन रूप, सृष्टि के आरम्भ काल में उत्पन्न, निरन्तर गमनशील देवताओं के मुख-रूप वैश्वानर अग्नि को ऋत्विजों ने हमारे यज्ञ में अरणियो द्वारा प्रकट किया ॥५॥ हे अग्ने ! स्तोतागण उक्थों के द्वारा अपनी कामनाओं को तुम्हारे सामने प्रकट करते हैं। तुम स्तुतियो के साथ वर्तमान रहने वाले का जैसे अश्व युद्ध को अपने आधीन कर लेते हैं वैसे ही स्तुतियाँ अपने अधीन कर लेती हैं ॥६॥ हे ऋत्विजो ! यज्ञ के स्वामी, होता रुद्ररूप पार्थिव अन्नों के देने वाले, हिरण्य वर्ण वाले इन अग्नि की, मरने से पहले ही हवि द्वारा उपासना करो ॥७॥ तेजस्वी अग्नि नमस्कार के सहित प्रदीप्त होता है। जिन अग्नि का रूप धृतहुतियुक्त होता है और मनुष्य जिनकी स्तुति विघ्नों के उहस्थित होने पर करते हैं, वह अग्नि उषा काल में सर्व प्रथम प्रज्वलित होते हैं ॥८॥ अत्यन्त ज्ञानी अग्नि द्यावा पृथ्वी को प्राप्त होकर देवाह्वान के समय वृषभ के समान शब्द करते हैं। अन्तरिक्ष के निकट प्रकाशवान सूर्य रूप होकर फैलते

और जलों के मध्य विद्युत् रूप से प्रवृद्ध होते हैं। ९॥ अत्यन्त यशस्वी, दूर से ही दर्शनीय, गृहरक्षक एव हाथों से उत्पन्न किये अग्नि को ऋत्विग्गण उँगलियों से प्रकट करते हैं ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषि—बुधगविष्ठिरौ, वत्सप्रि भरद्वाजः, विश्वामित्रः, वसिष्ठः, पायुः। देवता-अग्निः, पूषा। छन्द—त्रिष्टुप

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम्।
ह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाक-
मच्छ ॥१

प्रभूर्जयन्तं महां विपोधां मूरैरमूरं पुरां दर्माणम्।
नयन्तं गीर्भिर्वना धियं धा हरिश्मश्रुं न वर्मणा धन-
र्चिम् ॥२

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावन् भद्रा ते पूषन्निह
रातिरस्तु ॥३

इडामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने स ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥४
प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपां विवर्ते।
दधद्यो धायी सुते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥५

प्र सम्राजमसुरस्य प्रशस्तं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दद्वारा वन्दमाना विवष्टु ॥ ६

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इवेत् सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ७

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान् कयादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥८॥ (१।८)

यह अग्नि समिधाओं से प्रज्वलित होकर जैसे गौ के लिये प्रातःकाल जागते हैं, वैसे ही उषाकाल में सावधानी से आते हैं और उनकी ज्वालायें, शाखाओं वाले वृक्ष के समान अपने स्थान को छोड़ते हुए अन्तरिक्ष तक भले प्रकार फैल जाती हैं ॥१॥ हे स्तोता ! यह महान अग्नि राक्षसों के जीतने वाले मेधावियों को धारण करने वाले पुरों के रक्षक हैं। इन अग्नि की स्तुति करने की सामर्थ्य प्राप्त करो। वे अग्नि स्तुतियों से उपासना योग्य, कवच के समान लपटों वाले, हरी मूँछ वाले और प्रसन्न स्तोत्र वाले हैं उनका पूजन करो ॥२॥ हे पूषन् ! एक तुम्हारा शुक्ल वर्ण दिन रूप में और दूसरा कृष्ण वर्ण रात्रि रूप में हैं, इस प्रकार तुम विषम रूप वाले हो और सूर्य के समान प्रकाश वाले हो। तुम अन्नवान होकर सब प्राणियो का पालन करते हो तुम्हारा दान हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥३॥ हे अग्ने ! अनेक कामधेनु को देने वाली इडा देवता का निरन्तर

यजन करने वाले मुझ यजमान का कार्य सिद्ध करो। तुम्हारी श्रेष्ठ मति हमारी ओर हो और हम पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न हों ॥४॥ विद्युत रूप से अन्तरिक्ष में वतमान अग्नि ही इस यज्ञ में हैं। वे महान अन्तरिक्ष के ज्ञाता, हवि धारक अग्नि तुम उपासक के लिये अन्न-धन प्रेरित करो और देह के रक्षक होओं ।५। मनुष्य के पूज्य ओर इन्द्रात्मक बलबान अग्नि के श्रेष्ठ सुशोभित रूप की स्तुति करो और उनके उत्कृष्ट कर्मो का वर्णन करो ।६। सब प्राणियों के ज्ञाता अग्नि गर्भ के समान अरणियों द्वारा धारण किये गये हैं। वे वियुक्त अग्नि अनुष्ठान आदि में जागरित होकर नित्य स्तुत होते हैं ॥७॥ अग्ने ! तुम सदा से राक्षसों के बाधक रहो हो ओर राक्षस तुम्हें युद्धों में पराभूत नहीं कर सके। तुम ऐसे मायावी राक्षसों को अपने तेज से भस्म करो। यह तुम्हारी ज्वालाओं से न बच सकें ॥८॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि:—गय आत्रेय:, वामदेव:, भरद्वाज: सृक्तवा द्वित वसूयव:, गोपवन: पूरुरात्रेय:, वामदेव:, कश्यपो वा मारीच:, मनुर्वा वैवस्वत- उभौवा। देवता—अग्नि:। छन्द—अनुष्टुप्)

अग्न ओजिष्ठमा भर द्युम्नमस्मभ्यमध्रिगो।
प्र नो राये पनीयसे रत्सि वाजाय पन्थाम् ॥१

यदि वीरो अनु ष्यादग्निमिन्धीत मर्त्यः।
आजुह्वद्धव्यमानुषक् शर्म भक्षीत दैव्यम् ॥२

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि सञ्छुक्र आततः।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥३

त्वं हि क्षैतवद् यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥४
प्रातरग्निः पुरुप्रियो विश स्तवेतातिथिः ।
विश्वे यस्मिन्नमर्त्ये हव्यं मर्तास इन्धते ॥५
यद् वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद् रयिस्त्वद् वाजा उदीरते ॥६
विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वच स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥७
बृहद् वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तये मर्तासो दधिरे पुरः ॥८
अगस्मवृत्रहन्तमं ज्येष्टमग्निमानवम् ।
जातः रर्रे धर्मणा यत् सवृद्धिः सहाभुवः ।
यः स्म श्रुतवंन्नार्क्ष्ये बृहदनीक इध्यते ॥९
पिता यत्कश्यपस्याग्निः श्रद्धा माता मनुः कवि ॥१०

(१।९)

हे अग्ने ! तुम हमें ओजस्वी धन लाकर दो। तुम्हारी गति कभी नहीं रुकती। तुम हमें स्तुत्य धन से सम्पन्न करो और अन्न के मार्ग को प्रशस्त करो ॥१॥ पुत्रोत्पत्ति के समय मनुष्य अग्नि को प्रज्वलित करें और हवियों से यजन करें। तब वह दिव्य कल्यान को भोगने में समर्थ होगा ॥२॥ हे अग्ने ! तुम्हारा उज्ज्वल धूम अन्तरिक्ष में फैलता है और तेज रूप हो जाता हैं। हे पावक ! सूर्य के समान वाली स्तुति से प्रशंसित हुये

तुम अपनी दीप्ति में सुशोभित होते हो ।।३।। हे अग्ने ! तुम मित्र देवता के समान शुष्क काठ के सहित अन्न को प्राप्त करते हो और सबके द्रष्टा होते हुये यजमान के गृह में अन्न की वृद्धि करते हो ।।४।। धन-धारक, अनेकों के प्रिय, अतिथि के समान पूज्य अग्नि की प्रातःकाल स्तुति की जाती है। उन अमरणशील अग्नि में ही सब मनुष्य हव्य डालते हैं ।।५।। हे ज्योतिस्वरूप अग्ने ! तुम्हारे निमित्त महान स्तोत्र उच्चारित किया जाता है। तुम ही अपरमित अन्न प्रदान करो। अनेक उपासक तुमसे महान् धनों को प्राप्त करते हैं ।।६।। हे यजमानो ! अन्न-कामना करते हुए तुम सबके प्रिय अग्नि की सेवा करो। मैं भी तुम्हारे लिए हितकारी अग्नि की सुख प्राप्ति के लिए मन्त्र रूप वाणी से स्तुति करता हूँ ।७।। यज्ञ में दीप्त हुए अग्नि के लिए हविरत्न दिया जाता है। इसलिए हे यजमानों ! मनुष्यगण जिस अग्निकी मित्र के समान स्तुति करते हैं, उन अग्नि के लिए तुम भी हवि रत्न प्रदान करो ।।८।। वृत्रनाशक, बड़े मनुष्य-हितैषी अग्नि को हम प्राप्त हुए। वे अग्नि ऋक्ष के पुत्र श्रुतर्वन के लिए ज्वालाओं के रूप में प्रकट हुए ।।९।। हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ कर्मों द्वारा उत्पन्न हुए हो। तुम ऋत्विजों के साथ पृथ्वी में बास करते हो तुम्हारे पिता कश्यप, माता श्रद्धा और स्तोता मनु हुए ।।१०।।

पंचम दशति

(ऋषि—अग्निस्तापसः वामदेवः, काश्यपोऽसितो देवलोवा; सोमाहूतिर्भार्गवः, पायः, प्रस्कण्वः । देवता—विश्वेदेवाः, अङ्गिराः, अग्निः, । छन्द—अनुष्टुप्)

सोमं राजानं वरुणमग्निमन्वारभामहे ।
आदित्यं विष्णुं ब्राह्मणं च बृहस्पतिम् ।।१

इत एत उदारुहन् दिवः पृष्ठान्या रुहन् ।
प्र भूर्जयो यथा पथो द्यामङ्गिरसो ययुः ।।२
राये अग्ने महे त्वा दानाय समिधीमहि ।
ईडिष्वा हि महे वृष द्यावा होत्राय पृथिवी ।।३
दधन्वे या यदीमनु वोचद् ब्रह्मेति वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभुवत् ।।४
प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणाहि विश्वतस्परि ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं न्युब्जवीर्यम ।।५
त्वमग्ने वसूँरिहा रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं मनुजातं घृतद्रुयम् ।६।। (१११०)

हम राजा सोम को वरुण, अग्नि, विष्णु, सूर्य, व्रह्मा और बृहस्पति को रक्षा के निमित्त आहूत करते हैं ।।१।। जिस मार्ग से यह हवि सम्पन्न आंगरिस स्वर्ग लोक को गये तथा जिस प्रकार मनुष्य गण मार्गो पर चलते हैं, वैसे ही यह अग्नि ऊपर जाते हुए स्वर्ग की पीठ पर चढ़ गये ।।२।। हे अग्ने तुम्हें महान् धनों के निमित्त प्रदीप्त करते हैं। तुम सैचन असर्थ हो। अतः होम के निमित्त द्यावापृथ्वी की स्तुति करो ।।३।। इस यज्ञ में स्तोतागण स्त्रोत का उच्चारण करते हैं और यह अग्नि उन ऋत्विजों के सब कर्मों को जानते हुए पहिये के समान सब को अपने वश में रखते हैं ।।४।। हे अग्ने ! अपने तेज से राक्षसों के सब ओर फैले हुये बल को नष्ट करो और उनके पराक्रम को सब ओर से तोड़ डालो ।।५।। हे अग्ने ! इस क्रम में तुम वसुओ रुदों, आदित्यों और श्रेष्ठ यज्ञ वाले प्रजापति द्वारा उत्पन्न हुए जल सेचन समर्थ देवता की उपासना करो ।।६।।

।। प्रथमः प्रपाठकः समाप्तः ।।

द्वितीयः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि:—दीर्घतमा: विश्वामित्र:, गोतम:, त्रित:, इरिम्बिठि:, विश्वमना:, वैयश्वद: ।, ऋजिष्वा, भारद्वाज: देवता—अग्नि:, पवमान:, आदिति: विश्वेदेवा। छन्द:—उष्णिक् ।)

पुरु त्वा दाशिवां वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।
तोदस्येव शरण आ महस्य ॥१
प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृह ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥२
अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।
अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः ॥३
अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवां देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥४
जज्ञानः सप्त मातृभिर्मेधामाशात श्रिये ।
अयं ध्रुवो रयीणां चिकेतदा ॥
उत स्यानो दिवा मतिरदितिरूत्यागमत् ।
सां शान्ताता मयस्करदय स्रिधः ॥६
ईडिष्वा हि प्रतीव्यां यजस्व जातवेदसम्
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् । ७

न तस्य मायया च न रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातते ॥८

अप त्यं वृजिनं रिपु स्तेमग्ने दुराध्यम् ।
दविष्ठमस्य सत्पते कृधी सुगम् ॥९

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपसा रक्षसो दह ॥१०॥ (११-१)

अग्ने ! मैं, तुम्हारी शरण को प्राप्त हुआ सेवक तुम से अपरमित धन पुत्र आदि की याचना करता हूँ ।१। हे याज्ञिको ! श्रेष्ठ अनुष्ठानों से प्राप्त तेज को संसार के कारणरूप एवं देवावाहक अग्नि के लिए प्राचीन वृहत् स्तोत्र द्वारा यज्ञ सम्पादन करो ।२। हे अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न होने वाले, गौओं से सम्पन्न अन्न के स्वामी हो, अतः हे जातवेदा अग्ने ! हमें अपरमित श्रेष्ठ अन्न प्रदान करो ॥३॥ हे अग्ने तुम इस देवताओं के पूजन वाले यज्ञ में देवोपासक यजमान के लिए यज्ञ कर्म सम्पादन करो । तुम होता रूप से यजमान को सुखी करने वाले और शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाले होकर सुशोभित होते हो ॥४॥ यह अग्नि स्थिर धनों के धारण करने वाले है । यह लपट रूप सात जिह्वाओं सहित प्रकट होकर कर्म का विधन करने वाले सोम को सेवा-कार्य में प्रेरित करते हैं ॥५॥ स्तुति योग्य अदिति देवी अपने रक्षा साधनों सहित हमारे पास आवें और सुख शांति प्रदान करती हुई हमारे शत्रुओं को दूर करें ॥६॥ शत्रुओं के प्रतिकूल रहने वाली अग्नि की स्तुति करो । उन अग्नि का धूम सर्वत्र विचरणशील है तथा उनकी दीप्ति को राक्षस तिरस्कृत नहीं कर सकते । उन सर्व उत्पन्न जीवों के ज्ञाता अग्नि का यजन करो ॥७॥ हविदाता यजमान अग्नि को हवि प्रदान करता

है, उसका शत्रु माया करके भी उस पर प्रभुत्व प्राप्त नहीं कर सकता ॥८॥ हे अग्ने ! तुम उस कुटिल, हिंसक और दुराचारी शत्रु को बहुत दूर फेंक दो। हे सत्य के पालक ! हमारे लिए सुख की प्राप्ति को सुगम करो ॥९॥ हे शत्रु-नाशक और उपासकों के रक्षक अग्ने ! मेरे इस अभिनव स्तोत्र को सुनकर मायाकारी राक्षसों को अपने महान् तेज से भस्म करो ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषिः—प्रयोगो भार्गवः, सौभरिः, कण्वः, विश्मना
देवता—अग्निः, छन्दः—उष्णिक् ।)

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे ।
उपस्तुतासो अग्नये ॥१

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तरति वाजकर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ॥२

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ॥३

मा नो हृणीथा अतिथिं वसुरग्निः पुरुप्रशस्त एषः ।
यः सुहोता स्वध्वरः ॥४

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥५

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥६
तदग्ने द्युम्नमा भर यत् सासाहा सदने कं चिदत्रिणम् ॥
मन्यु जनस्य दूढ्यम् ॥७
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशे ।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥८॥ (११२)

हे स्तोताओं ! तुम सत्य यज्ञ वाले महान् तेजस्वी अग्नि के लिये स्तोत्र-पाठ करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम जिस यजमान से मित्रता करते हो, वह तुम्हारी श्रेष्ठसन्तान तथा अन्नबल आदि से सम्पन्न रक्षाओं के द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है ।२ हे स्तोता उन हव्यवाहक अग्नि की स्तुति करो, जिन दानादि गुण वाले देवता को मेधावीजन स्तुति करते हैं और जो देवताओं को हवि पहुँचाते हैं ॥३॥ हे ऋत्विजो ! हमारे यज्ञ से अतिथि रूप अग्नि को मत ले जाओ क्योंकि वे अग्नि ही देवताओं का आह्वान करने वाले,श्रेष्ठ याज्ञिक, स्तुत्य और निवासप्रद हैं ॥४॥ हवियो से तृप्ति को प्राप्त हुये अग्नि हमारे लिये मङ्गलमय हों । हे धनेश! हमे कल्याणकारी धन मिले, श्रेष्ठ यज्ञ और मङ्गलमयी स्तुतियाँ प्राप्त हों ॥५॥ हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ याज्ञिक, देववाहक, दान-सील, अविनाशी और इस यज्ञ के सम्पन्न करने वाले हो। हम तुम्हारी उपासना करते हैं ॥३॥ हे अग्ने हमें यश प्रदान करो। यज्ञ स्थान में आने वाले भक्षक राक्षस आदि को तथा दुष्ट मति वाले शत्रु को और उनके क्रोध का भी तिरस्कार करो ॥७॥ सब प्राणियों के रक्षक और हवियों द्वारा प्रदीप्त अग्नि जब मनुष्यों के घर में रहकर प्रसन्न होते हैं तब वे सब पीड़क राक्षस आदि को नष्ट कर डालते है ॥८॥

। इति प्रथमोऽध्यायः ।

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीय दशति

(ऋषि—शंयुर्वार्हस्पत्यः श्रुतकक्षः, हर्यतः प्रागाथः इन्द्रमातरो देवजामयः, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ, मेधातिथिराङ्गिरसः, प्रियमेधः काण्वश्च । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री ।)

तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद्गवे न शाकिने ॥१

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः ।
तेन नूनं मदे मदेः ॥२

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥३

अरमश्वाय गायत श्रुतकक्षारं गवे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥४

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।
स वृषा वृषभो भुवत ॥५

तमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं सन् वृषन् वृषेदसि ॥६

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत् ।
चक्राण ओपशं दिवि ॥७

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥८

पन्यंपन्यमित् सोतार आ धावत मद्याय ।

सोमं विराय शूराय ॥९

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन् ररिमा ते ॥१०॥ (२-१)

हे स्तोताओं ! सोम भिषव होने पर अनेक यजमानों द्वारा आहूत हुये धनदाता इन्द्र के निमित्त उस स्तोत्र का गान करो, जो इन्द्र के लिये गव्य के समान सुख देने वाला है ॥१॥ हे शत-कर्मा इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त यह अत्यन्त तेजस्वी सोम हमने अभिषुत किया है, इसका पानकर तृप्त होओ और फिर हमें धनादि से संतुष्ट करो ॥२॥ हे गौओ ! तुम महावीर के प्रति जाओ। यज्ञ के साधन रूप मन्त्र से दोहन योग्य गवादि के दुग्ध महान हैं। इस महावीर के कानों में सुवर्ण और चांदी के दो आभूषण हैं ॥३॥ अध्ययनशील स्तोता ! इन्द्र के दानरूप अश्व, गौ और गृह आदि की प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ स्तोत्र का गान करो ॥४॥ वे इन्द्र वृत्रहन्ता और महान है। वे हमें धन देने वाले हों हम उन्हें प्रसन्न करते हैं ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम अपने साहस, बल और ओज के द्वारा प्रसिद्धि को प्राप्त हुये हो । तुम ही श्रेष्ठ फलों की वर्षा करने वाले महान् हो ॥६॥ यज्ञ ने ही इन्द्र की वृद्धि की है। फिर उन इन्द्र ने मेघ को अन्तरिक्ष में प्रशस्त किया और पृथ्वी को जल वृष्टि द्वारा पूर्ण किया ॥७॥ हे इन्द्र ! जैसे एक मात्र तुम ही सब धनों के स्वामी हो, वैसे ही मैं और मेरा स्तोता गौओं से सम्पन्न हो ॥८॥ हे सोमाभिषव कर्त्ताओ! परा-क्रमी इन्द्र के निमित्त इस प्रशंसनीय सोम को अर्पित करो ॥९॥ हे इन्द्र ! इस अभिषुत सोम का पान करो, जिससे तुम्हारे उदर की पूर्ति हो। हे निर्भय इन्द्र हम तुम्हारे लिये यह श्रेष्ठ सोम रस अर्पित करते हैं ॥१०॥

चतुर्थ दशति

(ऋषि;—सुकक्षश्रु तकक्षौं, भारद्वाज:, मधुछन्दा:,
त्रिशोक:, वसिष्ठ:, देवता:—इन्द्र । छन्द:—गायत्री ।)

उद्धर्घेदभि श्रुतामघं वृशभं नर्यापसम् ।
अस्तारमेषि सूर्यं ।।1

यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्यं ।
सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।।२

य आनयत् परावतः सुनोती तुर्वशं यदुम् ।
इन्द्रः स नो युवा सखा ।।३

मा न इन्द्राभ्यादिशः सूरो अक्तुष्वा यमत् ।
त्वा युजा बनेम तत् ।।४

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ।।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे ।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ।६

अपिबत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे ।
तत्राददिष्ट पौंस्यम् ।।

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र नोनुमो वृषन् ।
विद्धी त्वा स्य नो वसो ।।८

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ।।६

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

वसु स्पार्हं तदा भर ॥१०॥ (२१२)

हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम्हारा धन देने योग्य और प्रसिद्ध है, इसलिये धनवर्षक और मनुष्यों का हित करने वाले तुम उदार स्वभाव के होते हुये सब दिशाओं को प्रकाशित करते हो ॥१॥ हे वृत्रहन्ता सूर्यात्मक इन्द्र ! आज तुमने जिन पदार्थों को उन्नत दशा में प्रकाशित किया है, वे सब पदार्थ तुम्हारे अधीन हैं ॥2॥ तुर्वश और यदु को जब शत्रुओं ने दूर कर दिया था, तब उन्हें वहाँ से यह इन्द्र ही लौटाकर लाये थे। ऐसे युवावस्था वाले इन्द्र हमारे सखा हों ॥३॥ हे इन्द्र ! सब ओर शस्त्र फेंकने वाले और सर्वत्र विचरणशील राक्षस रात्रियों में हमारे सामने न आवें यदि आवें तो उन्हें हम तुम्हारे अनुग्रह से नष्ट कर डालें ॥४॥ हे इन्द्र ! भले प्रकार भोगने योग्य तथा शत्रुओं को जीतने वाले, साहस पूर्ण धनों को हमारी रक्षा के निमित्त प्रदान करो ॥५॥ अल्प धन वाले हम बहुत सा धन पाने के लिये तथा वृत्र रूप राक्षसों को नष्ट करने के लिए वज्रधारी इन्द्र को आहूत करते हैं ॥६॥ इन्द्र ने कद्रु के निष्पन्न सोम-रस का पान कर सहस्र-बाहु को नष्ट किया, इस समय इन्द्र का पराक्रम दर्शनीय हुआ ॥७॥ हे काम्यवर्षक इन्द्र ! हम तुम्हारी कामना करते हुये, तुम्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं। हे सर्वव्यापक इन्द्र ! तुम हमारे स्तोत्र को जानो ॥८॥ जो याज्ञिक अग्नि को प्रज्ज्वलित करते हैं तथा जिनके मित्र इन्द्र हैं, वे क्रमपूर्वक कुशाओं को आच्छादित करते हैं ॥९॥ हे इन्द्र ! वैर करने वाले सब शत्रु-सेनाओं को छिन्न-भिन्न करो।

विनाशकारी युद्धों को समाप्त करो और फिर उनके स्पृहणीय धन को हमारे पास ले आओ ॥१०॥

पंचम दशति

(ऋषि—कण्वो धौरः त्रिशोकः, वत्सः, काण्वः, कुसीदी,, काण्वः, मेधातिथिः. श्रुतकक्षः, श्यावाश्वः, प्रगाथः, काण्वः, इरिम्बिठिः ।
देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री ।

इहेव श्रृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥१

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्ततो यथा पशुम् ॥२

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥३

देवानामिदवो महत् तदा वृणीमहे वयम् ।
वृष्णामस्मभ्यमूतये ॥४

सोमानां स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्त य औशिजः ॥५

बोधन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतः ।
श्रृणोतु शक्र आशिषम् ॥६

अद्य नो देव सवितः प्रजावत् सावीः सौभगम् ।
परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥७

क्व ३स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।

ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥८

उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम् ।

धिया विप्रो अजायत ॥९

प्र संम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।

नर नृषाहं मंहिष्ठम् ॥१०॥ (२।३)

मरुद्गण के हाथों में स्थित चाबुकों की ध्वनि को मैं सुनता हूँ । रणक्षेत्र में वह ध्वनि वीरत्व को उत्साहित करती है ॥१॥ हे इन्द्र ! जैसे पाव ग्रहण कर पशु-स्वामी पशु को देखता है वैंसे ही हमारे ये पुरुष तुम्हारी ओर देख रहे हैं ।२। जैसे नदियाँ निम्न गामिनी होकर समुद्र की ओर जाती है वैसे ही सब प्रजाये इन्द्र के क्रोध-भय से स्वयँ ही झुकती हुई उनके अभिमुख गमन करती हैं ॥३॥ हे देवगण ! तुम्हारी महिमामयी रक्षाये पूजनीय हैं, उन रक्षाओं की हम अपने निमित्त याचना करते हैं ।४॥ हे ब्रह्म-णपस्ते ! तुम मुझ सोमाभिषवकर्त्ता को उशिज पुत्र कक्षीवान के समान हीं तेजस्वी करो ॥५॥ जिनके लिये सोमाभिषव किया जाता है, जो हमारी कामनाओं के जानने वाले हैं और जो युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हैं, वे वृत्रपन्ता इन्द्र हमारी अपत्ययुक्त धन प्रदान करो और दुःस्वप्न के समान दुःख देने वाली द्ररिद्रता को हमसे दूर कर डालो ।७। वे इन्द्र काम्यवर्षक, युवा, लम्बी ग्रीवा वाले तथा किसी के सामने न झुकनेवाले है । वे इन्द्र इस समय कहाँ हैं ? कौन-सा स्तोता उनका पूजन करता है ? ॥८॥ पर्वतीय भूमि पर और नदियों के संगम-स्थल पर बुद्धिपूर्वक की गयी स्तुति को सुनने के लिए मेधावी इन्द्र शीघ्र

प्रकट होते हैं ॥९॥ भले प्रकार प्रतिष्ठित स्तोत्रों द्वारा प्रशंसनीय शत्रु-तिरस्कारक और महान दानी इन्द्र की स्तुति करो ॥१०॥

—※—

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

ऋषि—श्रुतकक्षः, मेधातिथिः, गोतमः, भरद्वाजः बिन्दुः पूतसुदक्षो वा, श्रुतकक्षः सुकक्षो वाः, वत्सः काण्वः, शुनःशेषः वाम देवो वा। देवता—इन्द्रः, । छन्द—गायत्री ।)

अपादु शिप्रयन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिण ।
इंदोरिन्द्रो यवाशिरः ॥१

इमा उ त्वा पुरूवसोऽभि प्र नोनुनवुर्गिरः ।
गावो वत्सं न धेनवः ॥२

अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३

यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः ।
तत्र पूषाभवत् सचा ॥४

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम् ।

युक्ता वह्नी रथानाम् ॥५
उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानां पते ।
उप नो हरिभः सुतम् ॥६
इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधन्तो अध्वरे ।
अच्छावभृथमोजसा ॥७
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥८
रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥६
सोमः पूषा च चेततुर्विश्वसां सुक्षितीनाम् ।
देवत्रा रथ्योर्हिता ॥१०॥ (२–४)

सुन्दर ठोड़ी वाले इन्द्र ने देवताओं को हवि देने में कुशल याज्ञिकों गारा जी के साथ परिपक्व सोमरूप अन्न के टपकते हुए रस का पान किया ॥१॥ हे महान् धनी इन्द्र ! हमारी ये स्तुतियाँ तुम्हारी ओर उसी प्रकार बारम्बार गमन करती है जिस प्रकार गौएँ अपने बछडों की ओर जाती हैं ॥२॥ इस गमनशील चन्द्रमा में त्वष्टा का जो तेज अन्तर्हित हैं, वही तेज सूर्य की रश्मियाँ हैं ॥३॥ जब अत्यन्त वर्षक इन्द्र वृष्टि-जलों को इस लोक में प्रेरित करते हैं तो पूषा देव उनकी सहायता करते हैं ॥४॥ऐश्वर्यवान् मरुद्गण को माता गौ, अन्न की इच्छा करती हुई अपने पुत्रों का पालन करती है ॥५॥ हे सोमाधिपति इन्द्र ! तुम अपने हर्यश्वों के द्वारा निष्पन्न सोम का पान करने के लिए

हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥६॥ हमारे यज्ञ में सात होताओं ने हवियों से इन्द्र को प्रवृद्ध किया और ओज से सम्पन्न होकर इन्द्र के लिये यज्ञान्त तक आहुति दी ॥७॥ पालन-कर्त्ता और सत्य-स्वरूप इन्द्र की श्रेष्ठ बुद्धि को मैंने ही ग्रहण किया है, इस कारण मैं सूर्य के समानही प्रकाश करता प्रकट हुआ हूँ ।८। हम अन्नवान् मनुष्य जिन गौओं से आनन्दित होते हैं, हमारी वे गौयें इन्द्र की प्रसन्नता प्राप्त होने पर दुग्ध-घृतादि से सम्पन्न और बलिष्ठ हों ॥६॥ देवताओं के रथ पर आरुढ़ होने वाला सोम और सूर्य इन्द्र के लिए श्रेष्ठकर्मा मनुष्यों द्वारा दी हुई हवियों को जानें ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषिः—श्रुतकक्षः, वसिष्ठः, मेधातिथिप्रितमेधौ., इरिम्बिठिः, मधुच्छदाः, त्रिशोकः, कुसीदीः, नः शेषः, । देवता—इन्द्रः, । छन्द—गायत्री ।)

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥1
प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत ।
सखायः सोमपाव्ने ॥२
वयमु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कण्वा उक्थेभिर्जरन्ते ॥३
इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ॥४
अयं त इंद्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥५

सुरूपकृतनुमुतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥६
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥७
य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमुषु ते सुतः ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८
योगयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इंद्रमुतये ॥९
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत
सखायः स्तोमवाहसः ॥१९॥ (२-५)

हे ऋत्विजो ! शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, सैकड़ों कर्म वाले मनुष्यों को महान् धन देने वाले, सोमपायी इन्द्र की स्तुति को भले प्रकार गाओ ॥१॥ हे मित्रो !हर्यश्व और सोम-पायी इन्द्र को प्रसन्न करने वाले स्तोत्र का गान करो ॥२। हे इन्द्र हम, तुम्हारे मित्र तुम्हें अपना बनाने की कामना से तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। हमारे पुत्र, सभी कण्ववंशी उक्थों द्वारा तुम्हारा यश गाते हैं ॥३॥ हर्षित मन वाले इन्द्र के निमित्त निष्पन्न सोम रस की, हमारी वाणी सदा प्रशंसा करे और सबकी पूजा के योग्य सोम का हम पूजन करें ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये यह सोम वेदी स्थिति कुशों पर निष्पन्न किया हुआ रक्खा है। तुम इस सोम के पास आकर इस यज्ञ-स्थान में पान करो ॥५॥ नित्यप्रति जैसे श्रेष्ठ दुग्ध वाली धेनु को बुलाते हैं, वैसे ही सुन्दर कर्म वाले इन्द्र को हम अपनी रक्षा के निमित्त प्रतिदिन बुलाते

हैं ॥६॥ हे काम्यवर्षक इन्द्र ! सोमाभिषव के पश्चात् उसके पान करने के लिये तुम्हें निवेदित करता हूँ। यह सोम अत्यन्त शक्ति प्रदायक हैं, तुम इसका रुचिपूर्वक पान करों ॥७॥ हे इन्द्र ! यह निष्पन्न सोम-रस चमस पात्रों में भरा हुआ तुम्हारे लिये ही रक्खा है। हे स्वामिन् ! इस सोम-रस का अवश्य ही पान करो ॥८॥ यज्ञादि अनुष्ठानों के आरम्भ में ही अथवा युद्ध उपस्थित होने पर हम मित्र उपासक अपनी रक्षा के लिए अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को आहूत करते हैं ॥९॥ हे स्तोम वाहक मित्र रूप ऋत्विजो ! तुम शीघ्र आकर बैठो और इन्द्र की सब प्रकार स्तुति करो ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषिः—विश्वामित्र, मधुछच्दाः, कुसीदी काण्वः, प्रियमेधः, वामदेवः, श्रुतकक्षः, मेधातिथिः, बिन्दुः, पूतदक्षो । देवता—इन्द्रः, सदसस्पतिः, मरुतः, । छन्द—गायत्री ।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते ।
पिबा त्वा३स्य गिर्वणः ॥१

महाँ इन्द्रः पुरश्च नो महित्वमस्तु वज्रिणे ।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥२

आ तू न इंद्र क्षुमंतं चित्रं ग्राभं सं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥३

अभि प्र गोपतिं गिरेन्दमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥४

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥५

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये ॥६
सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् ॥७
ये ते पन्था अधो दिवो येभिर्व्यश्वमैरयः ।
उत श्रोषन्तु नो भुवः ॥८
भद्रं भनुं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो ।
यदिन्द्र मृडयासि नः ॥६
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥१०॥ (२-६)

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! इस ओज सम्पन्न और निष्पन्न सोम रस का शीघ्र पान करो ॥१॥ हमारे इन्द्र महान् हैं। यह श्रेष्ठ गुण वाले। वज्रधारी की महिमा स्वर्ग के समान श्रेष्ठ हो और इनके बल की अधिक प्रशंसा हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हाथों वाले हो। हमें देने के लिये प्रशंसनीय अद्भुत, ग्रह-णीय धन को अपने रक्षक हाथ से उठाकर इसी समय दो ॥३॥ यह इन्द्र धेनुओं के स्वामी सत्योत्पन्न और सत्य के पालन करने वाले हैं। इनकी स्तुतियों सहित पूजा करो, जिससे ये हमें भले प्रकार जाने ॥४॥ अद्भुत गुण वाले, प्रवृद्ध और मित्र इन्द्र किस श्रेष्ठ कर्म से हमारे सामने हों ? वे किस अनुष्ठान से हमारे अभि मुख आवें ? ॥५॥ हे स्तोता ! तुम अनेकों का तिरस्कार करने वाले और स्तोता में बढ़े हुए उन इन्द्र को ही हमारी रक्षा के लिये अभिमुख करो ।६। अद्भुत कर्म वाले, इन्द्र के प्रिय कामना के योग्य धन देने वाले सदसस्पति देवता की शरण में श्रेष्ठ बुद्धिकी

प्राप्ति के लिये उपस्थित हुआ हूँ ॥७॥ हे इन्द्र ! जो मार्ग स्वर्ग के नीचे है तथा जिन मार्गों से मैं संसार में आया हूँ वह मार्ग स्तुत्य है । यजमान हमारे उस मार्ग वाले स्थान को सुनें ॥८॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! हमें अत्यन्त कल्याणकारी धन प्रदान करो । हमें बलयुक्त अन्न और सुख प्रदान करो ॥९॥ यह सोम मरुद्-गण द्वारा अभिषुत किया गया है, अतः अपने तेज से तेजस्वी हुये मरुद्गण प्रातःकाल उस सोम का पान करते हैं और अश्विद्वय भी प्रातःकाल ही सोमपान करते हैं ॥१०॥

चतुर्थ दशति

ऋषिः—इन्द्रमातरो देवजामयः, गोधाः, दध्यङ्ङाथर्वणः, प्रस्कण्वः, गोतमः, मधुच्छन्दाः, वामदेवः, वत्सः, शुनःशेपः, वातायान उलः । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री ।

इङ्खयन्तीरपस्युव इंद्रं जातमुपासते ।

वन्वानासः सुवीर्यम् ॥१

नकि देवा इनीमसि न क्या योपयामसि ।

मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ॥२

दोषो आगाद् बृहद्गाय द्युमद्गामन्नाथर्वण ।

स्तुहि देवं सवितारम् ॥३

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥४

इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।

जघान नवतीर्नव ॥५

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः ।
महां अभिष्टिरोजसा ॥६
आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि ।
महान्महीभिरूतिभिः ॥७
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ।८
अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥९
वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१०॥ (२-७)

अपने कर्म की इच्छा करती हुई और रुद्र को प्राप्त होती हुई हुई माताएं उत्पन्न हुये इंद्र की परिचर्या करती हैं और श्रेष्ठ धन को इन्द्र से पाती हैं ॥१॥ हे देवताओं ! हम तुम्हारे लिये कोई विपरीत कर्म नहीं करते प्रत्युत मन्त्रों में वर्णित तुम्हारे कर्मों पर चलते हैं ॥२॥ हे बृहद स म से गायक, प्रकाश-पथ के पथिक आथवर्ण ! ऋत्विज या यजमान की भूल से लगे दोष को दूर करने के लिये तुम सवितादेव की स्तुति करो ॥३॥ यह प्रत्यक्ष हुई, प्रसन्नता देने वाली उषा स्वर्गलोक से आकर रात्रि के अन्धकार को दूर करती है। हे अश्विद्वय ! मैं तुम्हारे लिये बृहद् स्तुति करता हूँ ॥४॥ अनुकूल शब्द वाले इन्द्र ने दधीचि की अस्थियों से आठसौ दस राक्षसों को मारा ॥५॥ हे इन्द्र ! हमारे अनुष्ठान में आगमन कर सोम रूप अन्न के पान द्वारा तृप्त होओं, फिर बल से अत्यन्त बली होकर शत्रुओं का तिरस्कार करो ॥६॥ हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुम हमारे पास आगमन करो।

तुम अपनी महती रक्षाओं के साथ आकर रक्षा करो ।।७।। इन्द्र का यह विख्यात ओज बढ़ गया। उसी ओज के द्वारा यह इन्द्र द्यावापृथ्वी को चर्म के समान लपेट लेते हैं ।।८।। हे इन्द्र ! यह साम तुम्हारे निमित्त संस्कृत किया हैं । तुम इस सोम की ओर हमारी स्तुति रूप वाली वाणी को भले प्रकार प्राप्त होते हो ।६। हमारे हृदय के लिये कल्याणकारी, सुखदाता औदिधि को वायु हमें प्राप्त करावें, जिससे हमारी आयु वृद्धि हों ।।१०।।

पंचम दशति

ऋषि—कण्वः, वत्सः, श्रुतकक्षः मधुच्छन्दाः, वामदेवः, इरिम्बिठिः वारुणिः सत्यधृतिः, । देवता–इन्द्रः । छन्द–गायत्री ।

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
न किः स दभ्यते जनः ।।१

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
वरिवस्या महोनाम् ।।२

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् ।
एनामृतस्य पिप्युषीः ।।३

अया धिया च गव्यया पुरुणामन् पुरूष्टुत ।
यत् सोमेसोम आभुवः ।।४

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ।।५

क इमं नाहुषीष्वा इन्द्रं सोमस्य तर्पयात् ।
स नो वसून्या भरात् ।।६

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥७
महि त्रीणामवरस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः दुराधर्षं वरुणस्य ॥८

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः ।
स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥९॥ (२-८)

जिस यजमान की मेधावी वरुण, मित्र, अर्यमा रक्षा करते हैं, उस यजमान को कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥१॥ हे इन्द्र ! जैसे हमारे पूर्व यज्ञ में तुम धन-दान के निमित्त पधारे थे, वैसे ही हम गौ, अश्व, रथ और प्रतिष्ठाप्रद धन देने के लिये अब भी आगमन करो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी यह सत्यरूप यज्ञ के पालन करने वाली श्रेष्ठ वर्ण गौएँ घृत और दूध से हमारे पात्रों को भरती हैं ॥३॥ हे बहुत नाम वाले, बहुतों द्वारा प्रस्तुत इन्द्र ! तुम मेरे प्रत्येक सोम-याग में जब सोम-पान के निमित्त आओ, तब मैं अपने लिये गौओं की कामना वाली बुद्धि से सम्पन्न होऊँ ॥४॥ अन्नवती, पवित्र करने वाली, धनों को प्रदान करने वाली सरस्वती दान योग्य अन्नों के सहित हमारे यज्ञ की इच्छा करती हुई आवें और यज्ञ को सम्पन्न करें ॥५॥ मनुष्यों में कौन ऐसा है जो इन्द्र को तृप्त कर सके ? वे इन्द्र हमारे यज्ञ में आकर तृप्त हों और धन-दान करें ॥६॥ हे इन्द्र ! यहाँ आगमन करो । तुम्हारे लिये ही हमने यह सोमाभिषव किया है । तुम इस सोम का पान करो वेदी पर बिछे हुये कुशा के आसन पर बैठों ॥७॥ मित्र, वरुण और अर्यमा की महती रक्षायें हमारी रक्षा करने वाली हों ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम बहुत ऐश्वर्य वाले हो ॥कर्मों को सफलता पूर्वक सम्पन्न करते हो । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! हम तुम्हारे हैं ।९।

॥ द्वितीय प्रपाठक सम्पाप्त ॥

तृतीयः प्रपाठकः

। द्वितीयोऽर्धः ।

प्रथम दशति

ऋषिः—प्रगाथः, विश्वामित्रः, वामदेवः, श्रतकक्षः, आँगिरसः,
मधुच्छन्दाः, गृत्समदः, भरद्वाजः, । देवता—इन्द्रः ।छन्द—गायत्री ।

उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः ।
अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥१
गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥२
सदा व इन्द्रश्चर्कृषदा पो नु स सपर्यन् ।
न देवो वृतः शूर इन्द्रः ॥३
आत्वा त्रिशन्त्विदवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥४
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रँ वाणीरनूषत ॥५
इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनाम् ॥६
इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥७
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः

गावो वत्सं न धेनवः ॥८
इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये ।
हुवेम वाजसतये ॥६
न कि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।
न क्येवं यथा त्वम् ॥१०॥ (२-६)

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हें प्रसन्न करे। हे वज्रिन् ! तुम धन प्रदान करो। ब्राह्मण के बैरियों को नष्ट कर डालो।१। हे स्तुत्य ! हमारे द्वारा अभिषुत इस सोम का पान करो। तुम हर्ष-प्रदायक सोम की धाराओं द्वारा सिंचित होते हो। हे इन्द्र ! हमारे पास तुम्हारे द्वारा प्रदत्त अन्न ही रहता है ॥२॥ हे यजमानों ! यह इन्द्र तुम्हें यज्ञानुष्ठान के लिये प्रेरित करते हैं। यह वीर इन्द्र हमारे द्वारा वरण किये गये हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! नदियाँ जसे समुद्र को प्राप्त होती हैं, वैसे ही हमारे सोम तुम्हें प्राप्त हों। अतः हे इन्द्र ! अन्य कोई देवता तुमसे बढ़कर नहीं है ॥४॥ साम गायक अपने बृहत्साम से स्तुति करते हैं, और अध्वर्यु यगुर्वेद रूप वाणी के द्वारा स्तुति करते हैं ॥५॥ हमारे द्वारा स्तुत इन्द्र महान् दाता ऋभु को हमें अन्न के निमित्त प्राप्त करावें बलवान इन्द्र ! अन्न प्राप्ति के लिए बलवान छोटे भाई को हमें दो ॥६॥ स्थिर मन बाले, विश्वद्रष्टा इन्द्र महान् भय का तिरस्कार करने वाले हैं ॥७॥ हे स्तुत्य इन्द्र ! प्रत्येक सोमाभिषव पर हमारी स्तुतियाँ गौओं के बछड़ो के पास पहुँचने के समान ही तुम्हें प्राप्त हों ॥८॥ हम इन्द्र और पूषा को आज ही मित्रता के लिए तथा अन्न और जल की प्राप्ति के लिए आहूत करते हैं ॥६॥ हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुमसे बढ़कर कोई नहीं है, तुमसे श्रेष्ठ भी कोई नहीं है ॥१०॥

द्वितीय दशति

ऋषि—त्रिशोकः, मधुछन्दाः, वत्सः, सुकक्षः वामदेवः, विश्वामित्रः, गोषूक्त्यूश्वसूक्तिनौ श्रुतकक्षः, सुकक्षो वा। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री ॥

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः।
समानमु प्र शंसिषम् ॥१
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत।
सजोषा वृषभं पतिम् ॥२
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा।
मित्रास्पान्त्यद्रुहः ॥३
यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम्।
वसु स्पार्हं तदा भर ॥४
श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम्।
आशिषे राधसे महे ॥५
अरं त इन्द्र श्रवसे गमेम शूर त्वावतः।
अरं शक्र परेमणि ॥६
धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥७
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥८
इमे त इन्द्र सोमाः सुतासो ये च सोत्वाः।

तेषां मत्स्व प्रभूवसो ॥९

तुभ्यं सुतासः सोमाः स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो ।

स्तोतृभ्य इन्द्रमृडय ॥१०॥ (२-१०)

हे मनुष्यों ! सन्तान आदि के पालन करने वाले, शत्रुओं को त्रासप्रद' पशुओं से सम्पन्न तथा अन्न देने वाले इन्द्र की मैं सदा स्तुति करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! मैंने तुम्हारे लिये स्तोत्र रचना की है । वह स्तोत्र स्वर्ग में स्थित, काम्यवर्षक, सोमपायी तुम्हारे समीप गये और तुमने उन्हें स्वीकार किया ॥२॥ जिस यजमान की द्रोहरहित मरुद्गण अर्यमा या मित्र देवता रक्षा करते हैं, वह यजमान श्रेष्ठ यज्ञ वाला होता है, इसे सब जानते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुमने जो धन स्थिर पुरुष में ओर जो धन दृढ़ पुरुष में स्थापित किया है, उसी कामनायोग्य धन को हमें प्रदान करो । ॥४॥ प्रसिद्ध वृत्रहन्ता एवं वेगवान् इन्द्र को प्रसन्न करके सोम रूप अन्न अर्पित करता हूँ ॥५॥ हे शूर इन्द्र ! हम तुम्हारा यश सुनने को उत्सुक हों । हे शक्र ! तुम्हारे समान देवता के यश को भी हम सुनें ॥६॥ हे इन्द्र ! भुने जौ और दधियुक्त सत्तू और परोडाश से युक्त प्रशंसित हमारे सोम-रस का प्रातः सेवन में पान करें ॥७॥ बैरियों की सब सेनाओं पर इन्द्र ने जब विजय प्राप्त की, तब नमुचि नामक राक्षस का सिर जल के फेनस्वरूप झागों से बने शस्त्र द्वारा काट डाला ॥८॥ हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे निमित्त ही सिद्ध किये गये हैं । जो सोम अब सिद्ध किये जायेंगे, वे भी तुम्हारे ही होंगे । तुम उन सब सोमों का पान कर तृप्त होओ ॥९॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम्हारे लिये सोम सिद्ध किये हैं । कुशा का आसन बिछा है, तुम इस

पर बैठो और सोमपान से तृप्त होकर हमें सुखी करो ॥१०॥

तृतीय दशति

ऋषि— शुनःशेप, श्रुतकक्षः, त्रिशोकः, मेधातिथिः, गोतमः, ब्रह्मातिथिः, विश्वामित्रो, जमदग्निर्वा प्रस्कण्वः

देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री।

आ व इन्द्रं कविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इंदुभिः ॥१

अतश्चिदिन्द्र न उपा याहि शतवाया।
इषा सहस्रवाजया ॥२

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छाद् वि मातरम्।
क उग्राः के ह श्रृण्विरे ॥३

ब्रवदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
साधः कृण्वन्तमवसे ॥४

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयति विद्वान्।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥५

दूरादिहेव यत्सतोऽरुणप्सुरशिश्वितत्।
वि भानुं विश्वथातनत् ॥६

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥७

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठाः यज्ञेष्वत्नत।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥८

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधानि दधे पदम् ।

समूढमस्य पाँसुले ॥९॥ (२–११)

हे अन्न की कामना वाले पुरुषो ! यह इन्द्र सैकड़ों कर्म करने वाले एवं महान हैं। जैसे कृषि को जल से सीचते है, वैसे ही तुम इन्हें सोमरस से भले प्रकार सींचो ॥१॥ हे इन्द्र ! स्वर्ग से हैकड़ों प्रकार के बल वाले हजारों अन्न और रसों के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥२॥ इन्द्र ने उत्पन्न होते ही बाण को ग्रहन किया और और अपनी माता से पूछा कि कौन कौन से पराक्रमी इस संसार में प्रसिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ॥२॥ लोक-रक्षा के लिये फैले हुये हाथ वाले, सत्र कर्मों को सिद्ध करने वाले स्तुत्य इन्द्र को हम बुलाते हैं ॥४॥ मित्र और वरुण, ये मेधावी देवता हमें सरल विधि से इच्छित फल प्राप्त करावें और अन्य देवताओं से समान प्रीति वाले अर्यमा देवता भी हमें सरलता से मार्ग पर लावें ॥५॥ दूर से पास आने वाली उषा जब अपना प्रकाश फैलातो है, तब उसकी दीप्ति अनेक प्रकार की होती है ॥६॥ हे श्रेष्ठकर्मा मित्रावरुण ! हमारे गोष्ठ को धृत के कारणभूत दुग्ध से भले प्रकार सिंचित करो और पारलौकिक धाम को भी मधुर रस से सम्पन्न करो ॥७॥ शब्द-रूपी वाणी के उत्पन्न करने वाले मरुतों ने यज्ञ के निमित्त जलों का उत्कर्ष किया और जल को प्रवाहित कर प्यास से रँभाती हुई गौओं को घुटने के बल झुक कर जल पीने की प्रेरणा दी ॥८॥ भगवान् विष्णु ने इस विश्व कों लाँघते हुए तीन पाद स्थापिम किये । इन विष्णु के धुलियुक्त पाँव में सब ससार भले प्रकार समा गया ॥९॥

चतुर्थ दशति

ऋषि—मेधातिथिः, वामदेवः, मेधातिथिप्रियमेधौः, बिश्वामित्रः,
कौत्सो दुर्मित्रः, सुमित्रो वा, दिश्वामित्रोः, गाथिनोऽमीपाव
उदलो वा, श्रुतकक्षः, । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपेरय ।
अस्य रातौ सुतं पिब ॥१
कदु प्रचेतसे महे वचो देवाय शस्यते ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥२
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत ।
न गायत्रं गीययानम् ॥३
इंद्र उक्थेभिर्मन्दिष्ठो वाजनां न वाजपतिः ।
हरिवाँत्सुतानां सखा ॥४
आ याह्युप नः सुतं वाजेभिर्मा हृणीयथाः ।
महाँ इव युवजानिः ॥५
क़दा वसो स्तोत्र हर्यत्रं आ अव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥६
ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूंरनु ।
तवेदं सख्यमस्तृतम् ॥७
वयं घा ते अपि स्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥८

एन्द्र पृक्षु कासु चिन्नृम्णं तनूषु धेहि नः।
सत्राजिदुग्र पौंस्यम् ॥९
एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥१०॥ (२८१२)

हे इन्द्र ! जो साधक क्रोध पूर्वक अभिषव करे, उसे त्याग दो उस स्थान पर श्रेष्ठ अभिषव कर्म वाले को भेजो और इस यजमान के यज्ञ में निष्पन्न हुये सोम का पान करो ॥१॥ उन महान मेधावी इन्द्र के निमित्त हमारा स्तोत्र यर्थार्थ रूप में न होने पर भी स्वीकृत हो। क्योंकि इस स्तोत्र से ही यजमान की वृद्धि सम्भव हैं ॥२॥ इन्द्र स्तुति न करने वाले के शत्रु हैं और होता द्वारा पठित स्तोत्र को भी जानते हैं वे साम गायक के साम को भी जानते हैं। अत: हम उन्हीं इन्द्र का स्तव करते हैं ॥३॥ अन्नों में श्रेष्ठ अन्न के स्वामी, हर्यश्ववान् इन्द्र होताओं द्वारा उच्चारित स्तोत्रों से प्रसन्न होकर सोम से मित्र के समान प्रीति करें ॥४॥ हे इन्द्र ! हमारे अभिषुत सोम को ग्रहण करो। दूसरों के हविरन्न से प्रीति न करो ॥५॥ हे सर्वव्याप्त इन्द्र ! हमारी स्तुति की कामना करने वाले तुम कृत्रिम नदी के समान रस रूप जल देने के लिये फैले हुये और निष्पन्न होमो को कब रोकोगे ? ॥६॥ हे इन्द्र ! देवताओं के पश्चात् ब्रह्मात्मक धन वाले पात्र से सोम का पान करो। देवताओं से तुम्हारी अटूट् मित्रता हैं ॥७॥ हे स्तुति योग्य इंद्र हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हों। हे सोमपायी ! तुम हमें सब प्रकार सन्तुष्ट करते हो ॥८॥ हे इंद्र ! हमारे देहाङ्गों में बल स्थापित करो क्योंकि महान् बल वाले हो। यज्ञ द्वारा वश में होने वाले तुम हमें हितकारी फल प्रदान करो ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में बलवान

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

शत्रुओं का वध करते हो। तुम वीर और स्थिर हो। तुम्हारा मन स्तुतियों से आकर्षित करने के योग्य हो ॥५०॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

पंचम दशति

ऋषि—वसिष्ठः, भरद्वाजः, बर्हिस्पत्यः, प्रस्कण्वः, नोधाः, कलिः, प्रगाथः, मेधातिथिः, भर्गः, कण्वः। देवता—इन्द्रः, मरुतः। छन्द—बृहती।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥१
त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः।
त्वाँ वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वा काष्ठास्वर्वतः ॥२
अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥३
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥४
तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाध ऊतये।
बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥५
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्र्वम् ॥६
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्मां अवन्तु ते धियः ॥७
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये।

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥८

न हि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः ॥६

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ।

॥१०॥ (३-१)

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पराक्रमी, स्थावर जङ्गम के स्वामी और सर्वद्रष्टा हो। विना दुही पयस्विनी गौओं के समान सोम से पूर्ण चमस वाले हम तुम्हें अनेक बार नमस्कार करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! हम स्तोता अन्नदान के लिए तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। तुम सत्य के रक्षक हो। तुम्हें दूसरे मनुष्य रक्षा के निमित्त बुलाते हैं। अश्वारोहियों के युद्ध में भी तुम्हें पुकारते हैं ॥२॥ अनेकों ऐश्वर्य वाले वे इंद्र हम स्तोताओं के लिए सहस्रों धन देते हैं। हे ऋत्विजो ! उन्हीं श्रेष्ठ धन वाले इंद्र का अत्यन्त पूजन करो ॥३॥ हे ऋत्विजो ! शत्रु-तिरस्कारक दर्शनीय, व्याप्त, सोम रूप अन्न से तृप्त होने वाले इन्द्र को बछड़ों को देख कर शब्द करने वाली गौओं के समान स्तुतिपूर्वक नमस्कार करते हैं ॥४॥ हे ऋत्विजो ! वेगवान् अश्वों वाले, धनदाता इंद्र की बाधा प्राप्त होने पर बृहत सोम द्वारा रक्षा के लिये स्तुति करो। हमने अपने जिस यज्ञ में सोमाभिषव किया है, वहाँ पुत्र द्वारा पिता सेवा करने के समान ही इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥५॥ युद्ध आदि में शीघ्रता वाला वीर पुरुष अपनो श्रेष्ठ बुद्धि से अन्नों को शीघ्र प्राप्त करता है। जैसे बढ़ई रथ-चक्र की नेमि को नम्र करता है, वैसे ही मैं अनेकों द्वारा आहूत इन्द्र को स्तुति करके

तुम्हारे लिये सामने बुलाता हूँ ।।६।। हे इन्द्र ! हमारे द्वारा अभि-षुत और गव्यादि से युक्त सोमरस का पान करो, तृप्त होओ और देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ में हमारे मित्ररूप धनदाता होते हुए हमारी वृद्धि की इच्छा करो। तुम्हारी कृपा-बुद्धि हमारी रक्षा करने वाली हो ।।७। हे इन्द्र ! मैं गौ-धन की कामना करने वाला हूँ अतः मुझे गौ-धन प्रदान करो। मैं अश्व चाहता हूँ अतः मुझे अश्वो से पूर्ण करो ।।८।। हे मरुद्गण तुमसे जो लघु हैं उनको भी स्तोता वसिष्ठ स्तुति से वंचित नही करते। तुम सब एकत्र होकर सोम के अभिषव होने पर सोम का पान करो ।।९।। हे स्तोताओं ! इन्द्र के स्तोत्र के अतिरिक्त अन्य स्तोत्र को उच्चारित न करो। सोमाभिषव के पश्चात् काम्यवर्षक इन्द्र की स्तुति करो ।।१०।।

।। प्रथम अर्ध समाप्तः ।।

—※—

।। द्वितीयोऽर्धः ।।

प्रथम दशति

ऋषि—आंगिरसः, पुरुहन्माः, मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्चः,
विश्वामित्रः, गौतमः, नृमेंधपुरुमेधौः, मेध्याथिः,
देवातिथिः, काण्वः, । देबता—इन्द्रः। छन्द—बृहती ।

नकिष्टं कर्मणा नशद् यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ।।1

य ऋते चिदभिश्रियः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विह्रुतं पुनः ।।२
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ।।३
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्नि येमुरिन्न पाशिनोऽति धन्वेव तां इहि ।।४
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः । ५
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इत् पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।।६
इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ।।७
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभिस्तोमैरनूषत ।।८
उदु त्ये मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।।९
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ।।१०।। (३-२)

सदा समृद्ध, स्तुत्य, महान् बल वाले, अतिरस्कृत और शत्रु को दबाने वाले इन्द्र को जो यजमान यज्ञादि कर्मों से अपने अनुकूल कर चुका हैं उसे कोई नही दबा सकता ॥१॥ जो इन्द्र बिना सामग्री ही ग्रीवाओं के जोड़ को रुधिर निकने से पहले ही जोड़ देते है तथा जो अनेक धनों के स्वामी हैं, वे इन्द्र देह के कटे हुए भाग को पुन: ठीक कर देते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! सुवर्ण-युक्त हवियों वाले यज्ञ में सोम-पान के लिये आवें ॥३॥ हे इन्द्र ! पथि जिस प्रकार मरुदेश को शीघ्र ही लाँघते हैं, वैसे ही तुम अपने मोर के समान रोमों वाले अश्वों से शीघ्र ही आगमन करो और जैसे पक्षियों को व्याघ्र पकड़ता हैं वंसे तुम्हें कोई भी न रोक सके ॥४॥ हे प्रशंसनीय इन्द्र ! तुम अपने तेज से तेजस्वी होकर अपने उपासक की प्रशंसा करते हो। तुमसे अधिक अन्य कोई देवता सुख प्रदान नहीं करता। अतः मैं यह स्तोत्र तुम्हारे लिये ही करता हूँ ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त यशस्वी, बलों के स्वामी और सत्य रूप सोम के पीने वाले हो और तुम अत्यन्त विकराल राक्षसों को भी अकेले ही नष्ट कर देते हो।६। देवताओं के इस यज्ञ में हम इन्द्र को ही आहूत करते हैं। यज्ञ के अवसर पर हम इन्द्र को ही बुलाते हैं। यज्ञ का समाप्ति पर भी हम इन्द्र का ही आह्वान करते हैं। धन लाभ के लिये भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं ॥७॥ हे इन्द्र ! मेरी स्तुति रूप वाणियाँ तुम्हें प्रवृद्ध करें। अग्नि समान तेज वाले तपस्वी ऋषि स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥८॥ शत्रुओ के विजेता, महान् धन वाले, अक्षय रक्षा वाले हे इन्द्र ! जैसे अन्न प्राप्ति के लिये रथ इधर-उधर गमन करते हैं, वैसे ही हमारे मधुर श्रेष्ठ स्तुति रूप वचन तुम्हारे लिये उच्चारित होते हैं ॥९॥ जैसे प्यासा गौर मृग जल से पूर्ण तड़ाग पर जाता हैं, वैसे ही मित्रता होने पर

हे इन्द्र ! तुम हमारे पास शीघ्र आगमन करो और हम कण्वों द्वारा अभिषुत सोम कृपापूर्वक पान करो ।।१०।।

द्वितीय दशति

ऋषि—भर्गः रेभः काश्यपः, जमदग्निः, मेधातिथिः, नृमेधपुरुमेधौ वसिष्ठः, रेभः, भरद्वाजः। देवता—इन्द्रः, मित्रावरुणादित्यः, छन्द—बृहती।

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ।।१
या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वा असुरेभ्यः।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ।।२
प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो।
वरूथ्ये वरुणे च्छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ।।३
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।।४
प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ।।५
बृहदिन्द्राय मरुतो वृत्रहन्तमम्।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ।।६
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।।७

मा न इन्द्र परा वृणग्भवा नः सधमाद्ये ।
त्वं न ऊती त्वमिन्न आप्यं मा न इन्द्र परा वृणक् ॥८
वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥९
यदिन्द्र नाहुषीष्वा ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पंचक्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या
॥१०॥ (२-३)

हे शचीपति वीर इन्द्र! सब रक्षाओं सहित अभीष्ट फल हमें प्रदान करो। तुम हमें सौभाग्ययुक्त धन प्रदान करने वाले हो, मैं तुम्हारी ही उपासना करता हूँ ॥१॥ हे वीर इन्द्र ! तुमने भोगने योग्य धनों को बली राक्षसों से उनको जीत कर प्राप्त किया है, अतः हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! तुम अपने दान द्वारा स्तोता को समृद्ध करो। जो याज्ञिक तुम्हारे निमित्त कुशा का आसन बिछाते हैं उनकी भी धन वृद्धि करो ॥२॥ हे याज्ञिको ! मित्र अर्यमा और वरुण को प्रसन्न करने वाले स्तोत्र का उनके विराजमान होने पर गान करो ॥३॥ हे इन्द्र ! स्तोतागण सोमपान के लिये, सब देवताओं से पहले तुम्हारी स्तुति करते हैं। रुद्र-मरुतों ने भी तुम प्राचीन पुरुषों की स्तुति की थी ॥४॥ हे स्तोताओं ! अपने महान् इन्द्र के निमित्त सोम-रूप स्तोत्र का गान करो। यह पापनाशक इन्द्र अपने सैकड़ों धार वाले वज्र से पापों को दूर करें ॥५॥ हे स्तोताओं ! इन्द्र के निमित्त बृहत् साम का गान करो जिन इन्द्र को ऋषियों ने सोम गान के द्वारा सूर्य के तेज से अलंकृत किया ॥६॥ हे इन्द्र ! हमें कर्मवान् बनाओ। जैसे पिता पुत्र को धन प्रदान करता है, वैसे ही तुम हमें धन प्रदान करो। हम नित्य-प्रति सूर्य के दर्शन करें। ७॥

हे इन्द्र ! तुम हम हविदाताओं को त्यागो और हमारे लिये सुख देने वाले यज्ञ में सोम पीने के निमित्त आओ। हे इन्द्र ! हमें अपनी रक्षा में रक्खो और हमारा त्याग न करो ॥८॥ हे इन्द्र ! निम्नगामी जल के समान झुकते हुए हम तुम्हें सोम के अभिषव सहित प्राप्त होते हैं तथा कुशा में आसन बिछाने वाले स्तोता तुम्हारी उपासना करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! जो धन बल मनुष्यों में है तथा जो पार्थिव धन अत्यन्त तेज वाला है, उसे हमको प्रदान करो और हमें सब महान् बलों को भी दो ॥१०॥

तृतीय दशति

ऋषि—मेधातिथिः, रेभः, वत्सः, भरद्वाजः, नृमेध पुरुहन्मा, नभेधः पुरुमेधौ वसिष्ठ मेधातिथिर्मध्यातिथिश्च, कलिः ।
देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती ।

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽविता ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः । १

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
अतस्त्वा गीर्भिद्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावां आ विवासति ॥२

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥३

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तये ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥४

श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनिमान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥५

न सोमदेव आप तदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतवो युयोजत इंद्रो हरी युयोजते ॥६

आ नो विश्वासु हव्यमिंद्रं समत्सु भूषत ।
अप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम ॥७

तवे दिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।
सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि न किष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥८

क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा असासिषु ॥९

वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।
तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ॥१०

हे विकराल कर्मा इन्द्र ! तुम सत्य कामनाओं की वर्षा करने वाले हो । तुम सोमाभिषकर्ता द्वारा आहूत हुए हमारे रक्षक और वरदाता कहे जाते हो । तुम पास में या दूर से भी अभीष्ट पूर्ण करने वाले सुने जाते हो ॥१॥ हे इन्द्र जब तुम स्वर्ग में या अन्तरिक्ष में स्थित होते हो तब तुम्हें महिमामयी कान्ति वाले अश्वों के समान स्तुतियों के द्वारा सोमाभिषवकर्ता अपने यज्ञ में आहूत करता है ॥२॥ हे उद्गाताओ ! सोम का अभिषव करते हुए तुम शत्रुओं को भयप्रद, शत्रु तिरस्कारक

मेधावी स्तुत्य और सर्व शक्तिमात्र इन्द्र की स्तुति गाओ ॥३॥ हे इन्द्र ! शीत, धूप, वर्षा आदि से रक्षा करने वाला कल्याणप्रद धन युक्त गृह मुझे और मेरे यजमानों को प्रदान करो। शत्रुओं द्वारा छोड़े अस्त्रों को इनके पास से दूर कर दो ॥४॥ हे मनुष्यो ! जैसे आश्रिता किरणें सूर्य की सेवा करती है, वैसे ही इन्द्र के सब धनों का उपयोग करो। वे इन्द्र जिन धनों को अपने ओज से प्रकट करते हैं, उन धनों को हम पिता द्वारा प्रदत्त भाग के समान ही धारण करें ॥५॥ हे दीर्घजीवी इन्द्र ! तुमसे विमुख मनुष्य उस प्रसिद्ध अन्न को नहीं पाते। जो इन्द्र यज्ञ में जाने के लिये अपने हर्यश्वों को योजित करते हैं, उनकी जो स्तुति नहीं करता वह उन्हें प्राप्त नहीं होता ॥६॥ हे स्तोताओ ! राक्षसों के साथ संग्राम उपस्थित होने पर जिन्हें अपनी रक्षा के लिए बुलाया जाता है, उन इन्द्र के लिए हमारे यज्ञ में स्तोत्र उच्चारण करो जो वृत्रहन्ता शत्रु-नाशिनी प्रत्यञ्चा वाले है, उन इन्द्र को तीनों सवनों में स्तुतियों से विभूषित करो ।७॥ हे इन्द्र ! पार्थिव निम्न धन तुम्हारा ही है। सुवर्ण आदि मध्यम धन को तुम ही पुष्ट करते हो। तुम सभी रत्नादि धनों के राजा हो, तुम जब गवादि धन देते हो, तब तुम्हें कोई भी रोक नहीं सकता ॥८॥ हे इन्द्र ! कहाँ गये थे ? अब कहाँ हो ? तुम्हारा मन बहुतों की ओर जाता है। हे रणकुशल और असुर-नाशक इन्द्र ! यहां आओ. हमारे चतुर स्तोता तुम्हारी स्तुति गाते हैं ॥९॥ हम यजमान इन इन्द्र को कल सोम द्वारा तृप्त कर चुके हैं। हे इन्द्र ! आज अभिषुत हुये इस सोम को ग्रहण करो। हे अध्वर्यो ! इस समय स्तुति से उन्हें सुशोभित करो ॥१०॥

—※—

चतुर्थ दशति

ऋषि—पुरुहन्मा:, भर्गः, इरिम्बिठि: जमदग्नि:, देवातिथि:, वसिष्ठ:, भरद्वाज:, मेध्य: काण्व: । देवता–इन्द्र:, सूर्य:, इन्द्राग्नी । छन्द—बृहती ।

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुत्रा पृतनाना ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥२

वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सः पुरां दे शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥३

वण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ॥४

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ यदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रैर्याति सभामुप ॥५

यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥६

यदिन्द्र प्रागपागुदग् न्यग्वा हूयसे नृभिः ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥७

कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा हि ते मघवन् पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥८

ईन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात् पद्वतीभ्यः ।
हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरत्त्रिंशत् पदा
न्यक्रमीत् ॥९

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः
॥१०॥ (३–५)

रथ द्वारा गमन करने वाले इन्द्र मनुष्यों के स्वामी हैं, उनके समान गमनशील कोई नहीं। वह पाप नाशक और सेनाओं के पार लगाने वाले हैं। मैं उन महान् इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥१॥ हे इन्द्र ! हम जिससे भयभीत हैं, उस हिंसाकरी के प्रति हमें अभय दो क्योंकि तुम अभय-दान की शक्ति वाले हो। हमारी रक्षा के लिए शत्रुओं को जीतो और हमारी हिंसाकामना वालों पर विजय प्राप्त करो ॥२॥ हे गृहपते ! गृह का आधार-भूत स्तम्भ दृढ़ हो। हम सोमाभिषव करने वालों को देह-रक्षक बल की प्राप्ति हो। असुरों की पुरियों को तोडने वाले सोम-पायी इन्द्र ऋषियों के सखा हो ॥३॥ हे सूर्यात्मक इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो। हे आदित्य ! तुम महान् हो। स्तोता-गण तुम्हारी महिमा की स्तुति करते हैं। सूर्य ! तुम बल से भी महान् हो। ॥४॥ हे इन्द्र ! जो पुरुष तुम्हारा सखा हो जाता हैं, वह अश्वों, रथों और गौओं वाला होकर श्रेष्ठ रूप और अन्न-धन से सम्पन्न होता है। फिर सब को सुख देने वाले स्तोत्र वाला होकर सभा आदि में जाने वाला होता है ॥५॥ हे इन्द्र ! सौ स्वर्ग भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकते। सौ पृथ्वी भी तुमसे अधिक नहीं हो सकतीं। सहस्रों सूर्य भी तुम्हें प्रकाश नहीं

दे सकते। कोई भा उत्पन्न पदार्थ और द्यावा-पृथ्वी भी तुम्हें व्याप्त नहीं कर सकते ॥६॥ हे इन्द्र ! पूर्व दिशा में वर्तमान, पश्चिम या उत्तर में वर्तमान तथा निम्न दिशा में वर्तमान स्तोतागण अपने राजा के हित के लिए प्रार्थना करते हैं, तुम तुर्वश द्वारा भी बुलाये गये थे ॥७॥ हे व्यापक इन्द्र ! तुम प्रसिद्ध को कोई ललकारा नहीं सकता। तुम्हारे लिये जो श्रद्धायुक्त यजमान हवि-सम्पन्न होता है, वह सोमाभिषव के दिन हविरन्न देने की इच्छा करता है ॥८॥ हे इन्द्राग्ने ! बिना पाँव वाली वह उषा पाँव वाली प्रजाओं से पहले आती है और प्राणियों के शिर को कम्पित कर उनकी वाणी से ही अत्यन्त शब्द करती हैं। यह उषा तुम्हारे प्रताप से ही एक दिन में तीन मुहुर्तों को लाँघती है ॥९॥ से इन्द्र ! हमारी निकटस्थ यज्ञशाला में श्रेष्ठ मति और राक्षसों के सहित आगमन करो। तुम अपनी कल्याण मयी अभीष्टियों के सहित आगमन करो। हे बन्धो ! तुम सुखदात्री उपलब्धिों के सहित यहाँ आओ ॥१०॥

पंचम दशति

ऋषि—नृमेधः, वसिष्ठः, भरद्वाजः, परुच्छेपः, वामदेवः, मेधातिथि,, गर्गः, मेधातिथिर्मेध्यातिथिश्च। देवता—इन्द्रः, अश्विनौ। छन्द—बृहती।

इन ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्रियावृधम् ॥१
मो षु त्वा वाघतश्चन नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥२

सुनोत सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित् पृणन्नित् पृणते मय ॥३
यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमन्यो तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥४
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दिशस्यतम् ।
मा वा रातिरुपदसत् कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥५
यदा कदा च मीढुषे स्तोता जरेत मर्त्यः ।
आदिद् वन्देत वरुणं विहा गिरा धर्तारं विव्रतानाम् ॥६
पाहि गा अन्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः सम्मिश्लो हर्योर्यो हिरण्यय इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥७
उभयं शृणवच्चन इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राचाच्या मघवांत्सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥८
महे च न त्वाद्रिवः परा शुल्काय दीयसे ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥९
वस्यां इन्द्रासि मे पितुरूत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च म छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे

॥१०॥ (३—६)

हे मनुष्यों ! तुम अजर, शत्रु-विजेता, वेगवान्, यज्ञ मंडप में जाने वाले, रथियों में उत्कृष्ट, अहिंसनीय, जल की वृद्धि करने वाले इन्द्र को रक्षा के लिए अभिमुख करो ।।१।। हे इन्द्र ! यजमान भी तुम्हें हमसे दूर न रमाये रहें। तुम दूर रहकर भी हमारे यज्ञ में शीघ्रता से आओ और हमारी स्तुतियों को श्रवण करो ।२।

हे मनुष्यों ! सोमपायी वज्रधारी इन्द्र के लिये सोमाभिषव करो इन्द्र की तृप्ति के लिये पुरोडाशों को परिपक्व करो। यह इन्द्र यजमान को सुख देते हुये ही हवि स्वीकार करते हैं। अतः तुम भी इन्द्र का प्रसन्न करने वाला अनुष्ठान करो ॥३॥ जो इन्द्र शत्रुओं के नाशक और सबके द्रष्टा हैं, हम उन इन्द्र को स्तुतियों द्वारा आहूत करते हैं। हे सैकड़ो प्रकार के क्रोध करने वाले बहु धनयुक्त, सत्यपालक इन्द्र ! तुम रणक्षेत्रों में भी हमारी वृद्धि करने वाले होओ ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम हमारे द्वारा कृत कर्मों को ही धन मानते हो। हमारे यज्ञरूप कर्म का दिन-रात फल प्रदान करो। तुम्हारा दिया हुआ धन उपेक्षा योग्य कभी नहीं होता, अतः हमारा दान भी उपेक्षा योग्य न हो ॥५॥ जब कभी मनुष्य स्तोता, हविदाता यजमान के लिये स्तुति करे, तब पाप-नाशक और विभिन्न कर्मों को धारण करने वाले वरुण की रक्षात्मक वाणी से स्तुति करे।६। हे इन्द्र ! हे मेध्यातिथे ! इस पिये हुये साम से तृप्त होकर हमारी गौओं की तुम रक्षा करो। जो इन्द्र अपने रथ में हर्यश्वों को योजित करते हैं वे वज्रधारी सुवर्ण निर्मित रथ वाले हैं ॥७॥ स्तोत्र और शस्त्र दोनों प्रकार की स्तुतियों को हमारे सामने आकर सुनें और हमारे यज्ञ को सम्पन्न करने बाली बुद्धि से युक्त ऐश्वर्यवान् इन्द्र सोम पीने के लिये यहाँ आगमन करें ॥८॥ हे वज्रिन् ! मैं महान् मूल्य के लिये भी तुम्हारा विक्रय नहीं करता। सहस्र के लिये भी विक्रय नहीं करता। मैं उन्हें अपरिमित धन के लिये भी नहीं बेचता ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम मेरे पिता से भी अधिक ऐश्वर्य वाले हो। पालन न करो, तो भी मेरे भ्राता से अधिक ही हो। मेरी माता और तुम समान मन वाले होकर मुझे अन्न-धन में स्थापित करो।१०।

॥ तृतीय प्रपाठक समाप्त ॥

चतुर्थः प्रपाठकः

। प्रथमोऽर्धः ।

प्रथम दशति

(ऋषिः—वसिष्ठः, वामदेवः, मेधातिथिर्मेध्तातिथिः, विश्वामित्र, इत्येके, मेधातिथिः, वालखिल्यः, सृष्टिगुः नृमेधः । देवता—इन्द्रः बहवः छन्द—वृहती ।)

इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
तां आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्या याह्योक आ ।।१
इम इन्द्र मदाय ते सोमाश्चिकित्र उक्थिनः ।
मधोः पपान उप नो गिरः शृणु रास्व स्तोत्राय गिर्वणः ।।२

आ त्वा द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्र धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरंकृतम् ।।३
न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वोडवः ।
यच्छिक्षसि स्तुवते मावते वसु न किष्टदा मिनाति ते।।४
क ईं वेद सुते सचा हिबन्त कद्रयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्रयन्धसः ।।५
यदिन्द शासो अव्रतं च्यावया सदसस्परि ।
अस्माकमंशुं मघवन् पुरुस्पृहं वसव्ये अधि बर्हय ।।६
त्वष्टा नो दैव्यं वच पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः ।

पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरं त्रामणं वचः ॥७
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥८
युंक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥९
त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन् भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥१०
(३–७)

हे वज्रिन ! दधि मिश्रित यह सोम तुम्हारे लिए ही निष्पन्न किये थे। उन सोमों की तृप्ति के लिए पीने को हमारे यज्ञ-स्थान में अश्वों के द्वारा हमारे अभिमुख होओ ॥१॥ हे इन्द्र ! यह स्तोत्र सम्पन्न सोम तुम्हारी तृप्ति के लिए ही है। तुम इन्हें पीते हुए हमारे स्तोत्रो को सुनो। तुम स्तुत्य होकर मुझ स्तोता को अभीष्ट फल प्रदान करो ॥२॥ मैं अब अधिक दुग्धवती, सुख पूर्वक दोहन-योग्य प्रशंसा के पात्र वाली अनेक दुग्धधारा वाली, कामना के योग्य गौ के समान सुशोभित इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥३॥ हे इन्द्र ! बड़े-बड़े सुदृढ़ पर्वत भी तुम्हारे बल को नहीं रोक सकते। मेरे समान जिस स्तोता को तुम धन देते हो, उस धन दान को कोई नहीं रोक सकता ॥४॥ अभिषुत सोम को ऋत्विजों के साथ पान करने वाले इन्द्र का ज्ञाता कौन है ? यहकितने प्रकार के अन्नों को धारण करते हैं ? यह इन्द्र ही सोम से तृप्त होकर शत्रु-तुरियों को अपनी शक्ति से नष्ट कर डालते हैं ॥५॥ हे इन्द्र ! यज्ञ में विघ्न करने वालों को तुम दण्ड देते हो इसलिये हमारे यज्ञ के चारों ओर स्थित विघ्न-कर्त्ताओं

को दूर करो और हमारे सोम की अधिक वृद्धि करो ॥६॥ त्वष्टा -देव, पर्जन्य, ब्रह्मणस्पति अपने पुत्रों और भाइयों के सहित अदिति हमारे यज्ञ में विरोधियों से स्तुति रूप वाणी की रक्षा करें ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम हिंसक कदापि नहीं हो। तुम हविदाता के पास ऋत्विज को प्रेरित करते हो। हे मघवन् ! तुम्हारा बहुत सा दान हमें प्राप्त होता है ॥८॥ हे वृत्रहन् इन्द्र ! अपने हर्यश्वों को रथ में योजित करो। तुम अत्यन्त पराक्रमी हो। दर्शनयोग्य मरुद्गण के सहित स्वर्ग से हमारे सामने आओ ।९। हे वज्रिन् ! तुम्हें हविदाता यजमानों ने आज प्रथम सोमपान कराया था। तुम हमारे यज्ञ में आकर हमारे स्तोता के स्तोत्र को सुनो ।१०।

द्वितीय दशति

ऋषि—वसिष्ठः,:, अश्विनो:, मुस्कण्वः, मेधातिथिर्मेध्यातिथिः,
देवातिथिः, नृमेधः। देवता—उषा, अश्विनौ, इन्द्र।
छन्द—बृहती।

प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दूहिता दिवः।
अपी महीवृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोवि सूनरी ॥१

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१

कुष्ठ को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः।
घ्नता वामश्मया क्षपमाणोऽशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमो दिविष्टुयु ।
मतश्विना पिबसं तिरोअह्नपं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥४
आ त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं ज्या ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधंक ईशानं याचिषत् ॥५
अश्वयो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उपो नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥६
अभीषतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन् बभूविथ भरेभरे च हव्यः ॥७
यद्रिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमोशीय ।
स्योतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ॥८
त्वामिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥९
प्र यो रिरिक्ष ओजसा दिवः सोभ्यस्परि ।
न त्वा विव्याच रज इन्द्र पार्थिवमति विश्वं ववक्षिथ
॥१०॥ (३-८)

अन्धेरे को नष्ट करती हुई आने वालीं उषा के सभी ने दर्शन किये। वह घोर अन्धकार को दूर कर अत्यन्त प्रकाश के करने वाली है ॥१॥ हे अश्विद्वय ! तुम स्वर्ग की कामना वाले के लिए बुलाता हूँ क्योंकि तुम अपने प्रत्येक स्तोता के पास जाते हो ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुम स्वयं प्रकाश वाले हो। कौन सा पार्थिव देहधारी तुम्हारा प्रकाश है ? तुम्हारे निमित्त

सोमाभिषव करके थका हुआ यजमा राजा के समान ऐश्वर्य-वान् होता है ॥३॥ अश्विद्वय ! तुम्हारे यज्ञार्थ यह मधुर सोम अभिषुत हुआ है । प्रथम दिन निष्पन्न हुए इस सोम का पान करो और हवि दाता को श्रेष्ठधन प्रदान करो ॥४॥ हे इन्द्र ! सिंह के समान तुम्हें सोम रस के सहित स्तुति करता हुआ मैं तुमसे ही याचना करता हूँ । अपने स्वामी से कौन सा मनुष्य याचना नहीं करता ॥५॥ हे अध्वर्यो ! तुम सोम को उत्तरवेदी पर पहुँचाओ क्योंकि यह इन्द्र सोमपान की कामना करते हैं । सारथि द्वारा योजित रथ में वृत्रहन्ता इन्द्र यहाँ आ गये ॥७॥ हे महान् इन्द्र ! उसे याचित धन को सब ओंर से लाकर दो । तुम बहुतों द्वारा याचना करने योग्य तथा संग्रामों में बुलाये जाने योग्य हो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम जितने धन के स्वामी हो वह धन मेरा ही होगा । मैं अपने साम गाता स्तोता को धन देने में समर्थ होऊँ । मैं व्यर्थ नष्ट करने को धन का उपयोग न करूँ ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम सव युद्धों शत्रु-सेनाओं को दबाते हो । तुम दैवी कोप को दूर करते हो । तुम हमारे शत्रुओं को सङ्कट देते और उन्हें नष्ट करते हो । जो दुष्ट हमारे कर्म में विघ्न डालते हैं, उन्हें भी तिरस्कृत्त करते हो ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग के स्थानो से श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त हो । पृथ्वी लोक भी तुमसे बड़ा नहीं है । तुम सबकी उपेक्षा करते हुये हमें ही रक्षित करो ॥१०॥

तृतीय दशति

(ऋषिः—वसिष्ठः, गातुः, पथुर्वैन्यः, सप्तगुः, गोरिवीजिः, वेनो भार्गवः, बृहस्पतिर्नकुलो वा सुहोत्रः । देवता—इन्द्रः । चन्द—त्रिष्टुप् ।

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा न स्तोममन्धसो मदेषु ॥१

योनिष्ट इंद्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि।
असो यथा नोऽविता वृधश्चिद्ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥२

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान् बद्बधानां अरम्णाः
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजद्धारा अव यद्दानवान् हन्
॥३

सुष्वाणास इंद्र स्तुमसि त्वा सनिष्यन्तश्चित्तुविनृम्ण वाजम्
आ नो भर सुवितं यस्य कोना तना त्मना सह्यामा-
त्वोताः ॥४

जगृह्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं
रयिं दाः ॥५

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता श्रवसश्च काम आ गोमति व्रजे भजा त्वं
नः ॥६

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्द्धि चक्षुर्मुमुग्ध्य स्मान्निधयेव
बद्धान् ॥७

नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥८

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शंतमानि वचांस्यस्मै स्थविराय तक्षुः ॥१०॥ (३-९)

गव्यादि से सुसंस्कृत उज्ज्वल सोम का हमने अभिषव किया है। इसके प्रति यह इन्द्र स्वभाव से ही आकर्षित होते हैं। हे इन्द्र ! हम तुम्हें हवियों से प्रसन्न करते हैं। तुम सोम से तृप्त होकर हमारी स्तुतियों का जानों ॥१॥ हे इन्द्र ! हमारे बैठने के लिए यह स्थान बनाया गया है। तुम अनेकों द्वारा आहूत हुये हो मरुद्गण के सहित अपने उस स्थान पर आकर बैठो और हमारे रक्षक तथा वृद्धिकर्ता होओ। हमें धन देते हुये सोमों से तृप्त होओ ॥२॥ हे इन्द्र ! तुमने जल वाले मेघ को चीर डाला। मेघ में जल निकलने के मार्गों को बनाया। जल रोकने वाले मेघों को स्रवित किया। तुमने मेघ को खोलकर जल छोड़ा और राक्षसों को नष्ट किया ।३। हे इन्द्र ! हम सोमाभिषवकर्ता तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम धनदाता को हम पुरोडाश का भाग देते है। अतः तुम हमें श्रेष्ठ धन दो। जो धन अत्यन्त कामना के योग्य है, वही हमें प्रदान करो। तुम्हारे बहुत से धनों को तो तुम्हारी कृपा होने मात्र से ही प्राप्त कर लेते हैं ॥४॥ हे धनेश्वर ! हम तुम्हारे दक्षिण हाथ को का कामना से पकड़ते हैं। हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हें गोओं का स्वामी जानते हैं, अतः हमें अभीष्ट फल वाला धन प्रदान करो ॥५॥ हम युद्ध में रक्षा वाले कर्म को प्रयुक्त करते हैं, संग्राम में इन्द्र को रक्षार्थ आहूत करते हैं, ऐसे इन्द्र ! हमारे द्वारा अन्न की याचना करने पर हमें

पशुओं से सम्पन्न गोष्ठ वाला बनाओं ॥६॥ सुखदात्री, गमनशील यज्ञप्रिय दर्शनीय सूर्य की रश्मियाँ इन्द्र को प्राप्त हुई हैं। हे इन्द्र तुम अन्धकार का नाश करो। हमें चक्ष बनाओ। हमें पाशों से मुक्त करो ॥७॥ हे वेन ! तुम श्रेष्ठ पर्ण वाले अन्तरिक्ष में गमनशील, सुवण पँख वाले, जल के अभिमानी देव वरुण के दूत यम के स्थान में पक्षी के रूप मे स्थित और वृष्टि आदि के द्वारा पोषक हो। तुम्हारो कामना वाले स्तोता अन्तरिक्ष की ओर देखते हैं ॥ ॥ वेन नामक गन्धर्व ने आनन्दसूचक ध्वनि करते हुए पूर्वोत्पन्न ब्रह्म को दर्शनीय तेज से युक्त किया। उसी गन्धर्व ने आदित्य आदि के तेज की स्थापना की। उसी ने उत्पन्न हुये तथा भविष्य में उत्पन्न होने वाले प्राणियों के स्थान को बनाया ॥६॥ महान् पराक्रमी, वीर शीघ्रकर्मा स्तुत्य, प्रवृद्ध और वज्रधारी इस इन्द्र के लिये स्तोतागण अतग्न्त सुखदायक एवं नवीन स्तोत्रों का उच्चारग करते हैं ॥१०॥

चतुर्थ दशति

ऋषि—द्युतानः, वृक्दुथ्यः वामदेवः, वसिष्ठः, विश्वामित्रः,
गौरिवीति, देवता—इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदीयानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नीहितिं नृमणा अधद्राः ॥१

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजुहुर्ये सखायः।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥२

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।

देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥३
त्वं ह त्यत्सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र ।
गूढे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं
धाः ॥४

मेडि न त्वा वज्रिणं भृष्टिमन्तं पुरुधस्मानं वृषभं स्थिर-
प्स्नम्।
करोष्यर्यस्तरुषीर्दुवस्युरिन्द्र द्युक्षं वृत्रहणं गृणीषे ॥५
प्र वो महे महे वृधे भरध्वं प्रचेतसे प्रसुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्रचर चर्षणिप्राः ॥६
शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानि
॥७

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि श्रवसा ततानोपश्रोता म ईवतो
वचांसि ॥८

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९
(३–१०)

दस हजार राक्षसों के सहित आक्रमण करने वाला कृष्णा-सुर अंशुमती नदी पर पहुँचा। उन भयप्रद शब्द वाले राक्षसों के पास मरुद्गण सहित इन्द्र पहुँचे। उन समान मन वाले देवताओं ने हिंसक राक्षस-सेना का संहार किया ॥१॥ हे इन्द्र ! यह विश्वेदेवा तुम्हारे सहायक मित्र थे। वे सब वृत्रासुर के श्वास से

भयभीत होकर चारों ओर भाग गये और तुम्हारा साथ छोड़ दिया परन्तु मरुद्गण ने साथ नहीं छोड़ा। तुम उन मरुतों से मित्रता रखो। तब इन शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकोगे ॥-॥ रणक्षेत्र में बहुत से शत्रुओं को भगाने वाले वीर युवक को भी इन्द्र की कृपा प्राप्त वृद्ध हरा देता है और वृद्ध आज मरता है, वह दूसरे दिन ही जन्म धारण कर लेता है। इन्द्र की यह सामर्थ्य महिमा मयी ही है ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम पराक्रमी होकर ही प्रकट होते हो। तुमने ही सात राक्षसों की पुरियों को नष्ट किया और अन्धकार से ढकी द्यावा पृथिवी को सूर्य से प्रकाशित किया ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे शत्रुओं के क्षीण करने वाले ओर हमें विजय प्राप्त कराने वाले हो। जैसे वृष्टि कराने वाली वाणी की प्रार्थना की जाती है, वैसे ही तुम मेघों के प्रेरक, जलों के धारक, काम्य-वर्षक, दृढ़ बज्रधारी को स्तुति द्वारा प्रसन्न करता हूँ ॥५॥ हे ऋत्विजो ! धन-वृद्धि करने वाले महान् इन्द्र के लिये सोम अर्पित करो। वे इन्द्र अत्यन्त ज्ञानी हैं, उनको स्तुति करो। हे इन्द्र ! तुम अभीष्टपूरक हो, अतः हविदाता मनुष्यों के समक्ष आगमन करो ॥६॥ अन्न लाभ कराने वाले, विजय दिलाने वाले युद्ध में विश्व के स्वामी इन्द्र का हम आह्वान करते हैं। यह इन्द्र शत्रुओं को भयभीत करने वाले, राक्षसों के हननकर्ता, शत्रु-धन विजेता हैं। हे इन्द्र ! ऐसे तुम्हें हम रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥७॥ हे ऋषियो ! इन्द्र के निमित्त स्तोत्र और हवियों को अर्पित करो अपने यज्ञ में इनका पूजन करो। जो इन्द्र सब लोकों को अपनी महिमा से बढ़ाते हैं, वे हमारे स्तोत्र को सुनें ॥८॥ इन इन्द्र का शस्त्र मेघ हनन के लिये अन्तरिक्ष में स्थित हुआ। उसी ने इन्द्र के निमित्त जल को वश में किया। पृथिवी में सिंचित जल औषधियों में व्याप्त होती है ॥९॥

पंचम दशति

ऋषि—अरिष्टनेमिस्तक्ष्र्यः, भरद्वाजः, वसुकृद, वासुक्रः विमदो वामदेवः, विश्वामित्रः, रेणु गौतमः । देवता—ताक्ष्र्यो इन्द्रः, इन्द्रापर्वतौ । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहोवानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
हुवे नु शक्रं पुरुहूतमिन्द्रमिन्दं हविर्मघवा वेत्विन्द्रः ॥२

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यां विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रुभिर्दोधुवदूर्ध्वधा भुवद्वि सेनाभिर्भयमानो वि राधसा ॥३

सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रं महामपारं वृषभं सुवज्रम् ।
हन्ता यो वृत्रं सनितोत वाजं दाता मघानि मघवा सुराधाः ॥४

यो नो वनुष्यन्नभिदाति मर्त उगणा वा मन्यमानस्तुरो वा ।
क्षिधी युधा शवसा वा तमिन्द्राभी ष्याम वृषमणस्त्वोताः ॥५

यं वृत्रेषु क्षितयः स्पर्धमाना यं युक्तेषु तुरयन्तो हवन्ते ।
यं शूरसातौ यमपामुपज्मन् यं विप्रासो वाजयन्ते स इन्द्रः ॥६

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्धेथां गीर्भिरिडया मदन्ता ॥७

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रैरयत् सगरस्य बुध्नात्
यो वक्षेणेव चक्रियौ शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ
पृथिवीमुत द्याम् ॥८
आ त्वा सखायः सख्या ववृत्युस्तिरः पुरू चिदर्णवाञ्जगम्याः ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अस्मिन् क्षये प्रतरां दीद्यानः
॥९
को अद्य युंक्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो
दुर्हणायून् ।
आसन्नेषामप्सुवाहो मयोभून् य एषां भृत्यामृणधत् स
जीवात् ॥१०॥ (३-११)

उन प्रसिद्ध अन्न वाले सोम लाने के लिए देवताओं द्वारा प्रेरित रथों को युद्ध-क्षेत्र में लाने वाले, शत्रु-विजेता: द्रुतगामी तार्क्ष्य को कल्याण के निमित्त आहूत करते हैं ॥१॥ मैं रक्षक इन्द्र का आह्वान करता हूँ। अभीष्टपूरक इन्द्र का आह्वान करता हूँ। सब संग्रामों में बुलाने योग्य इन्द्र को आहूत करता हूँ। वे इन्द्र हमारे हव्य का सेवन करें ॥२॥ दक्षिण हाथ में वज्र धारण करने वाले, कर्म वाले हर्यश्वों को रथ में जोड़ने वाले इन्द्र की हम पूजा करते हैं। सोम-पान के पश्चात् दाढी-मूँछ को कम्पित करते हुए वे इन्द्र विभिन्न धनों को प्रदान करते हैं ॥३॥ हम स्तोता शत्रुहन्ता, तिरस्कारक, शत्रुओं को दूर करने वाले काम्यवर्षक, वज्रधारी इन्द्र की स्तुति करते हैं। वे इन्द्र वृत्र-हन्ता अन्नदाता और श्रेष्ठ धनों के देने वाले हैं ॥४॥ हमें हिंसित करने की इच्छा वाला हमपर आक्रमण करने वाला अपने को महान्

हुआ जो मनुष्य क्षीण करने वाले शस्त्रों को लेकर चढ़ाई करता हैं, उसे हम भले प्रकार तिरस्कृत करें ।।५।। क्रोधित मनुष्य जिसे पुकारते हैं, परस्पर हिंसा करने वाले पुरुष जिसे पुकारते हैं, जल की इच्छा से जिन्हें पुकारते है और मेधावीजन जिन्हें ह व अर्पित करते है, वह इन्द्र हैं ।।६।। हे इन्द्र और पर्वत ! तुम महान् रथ द्वारा आकर प्रार्थना योग्य अन्न प्रदान करो। हमारे यज्ञों में आकर हवि भक्षण करो और उससे तृप्त होकर स्तुतियों से प्रवृद्ध होओं ।।७।। निरन्तर ऊच्चरित जो स्तुतियाँ इन्द्र निमित्त होती हैं. उनसे वे जलों को प्रेरित करते हैं और पृथ्वी तथा स्वर्ग को रथ-चक्र के समान स्थिर रखते हैं ।।८।। हे इन्द्र ! स्तोतागण तुम्हें स्तुतियों से अभिमुख करते हैं। तुम उड़ते हुए अन्तरिक्ष-गामी हुए थे। हमारे यज्ञ में तेज से अत्यन्त दीप्त हुए इन्द्र मुझे पुत्र प्रदान करें ।।९।। सत्य के ज्ञाता इन्द्र के रथ में योजित तेजस्वी, क्रोधयुक्त, इन्द्र को वहन करने वाले अश्वों के रथ-वहन की प्रशंसा करता है, वह चिरंजीवी होता है ।।१०।।

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

ऋषि—मधुछन्दा, जेता, माधुच्छन्दसः, गौतमः, अत्रिः, तिरश्वी काण्वो नीपातिथि', विश्वामित्रः, शंयुर्बृहस्त्यः। देवता—इन्द्र। छन्द—अनुष्टुप्।

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ।।1
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसंगिरः।

रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१
इदमिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥३
यदिद्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥४
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥५
असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥६
एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७
आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः ।
अभि त्वा समनूषत गावो वत्सं न धेनवः ॥८
एतो न्विद्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वाँसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ॥९
यो रयिं वो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥१० (३–१२)

हे इन्द्र ! उद्गाता तुम्हारी स्तुति करते हैं। मन्त्रोच्चारण करने वाले होता तुम्हारी स्तुति करते हैं। जैसे बाँस की नोंक पर नाचने वाले नट आदि बाँस को ऊँचा करते हैं, वैसे ही तुम्हें हम उच्च आसन पर प्रतिष्ठित करते हैं ॥१॥ समुद्र के समान

महान् रथियों में महारथी, अन्नों के स्वामी इन्द्र की हमारी सब स्तुतियों ने वृद्धि की ॥२॥ हे इन्द्र ! इस अत्यन्त प्रशंसनीय तृप्तप्रद अभिषुत सोम का पान करो। यज्ञ-मण्डप में स्थित इस उज्ज्वल सोम की धारायें तुम्हारे अभिमुख गमन करती हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम अद्भुत बल वाले, वज्रधारी, मेधावी और व्याप्त हो। तुम्हारा जो देय धन इस लोक में नहीं है उसे अपने दोनों हाथों से लाकर हमें दो ॥४॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हारी हवियों से उपासना करता हैं, वह मैं तिरश्चय तुम्हारी स्तुति करता हूँ। उसे सुनकर मुझे श्रेष्ठ अपत्य, गवादि पशु और सब प्रकार का धन देकर परिपूर्ण करो, क्योकि तुम महान् हो ॥५॥ हे इन्द्र ! सोम तुम्हारे निमित्त सम्पादित हुआ है। तुम अत्यन्त बली और शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले हो। हमारे इस यज्ञ स्थान में आगमन करो सूर्य द्वारा अन्तरिक्ष को किरणों से पूर्ण किये जाने के समान तुम्हें सोम की शक्ति पूर्ण करे ॥६॥ हे इन्द्र ! अपने अश्वों पर चढ़कर मुझ कण्व की श्रेष्ठ स्तुति के प्रति आगमन करो। जब तुम स्वर्गलोक का शासन करते हो तब हम सुखी होते हैं। हमारे कर्म की समाप्ति पर स्वर्ग को गमन करो ॥७॥ हे स्तुत्य इन्द्र ! सोमाभिषव के पश्चात् हमारी वाणियाँ, रथी के युद्ध स्थल में पहुँचने के समान तुम्हारे समक्ष शीघ्र ही पहुँचती हैं। हे इन्द्र ! हमारी वाणियाँ गौएँ जैसे बछड़ों के पास रँभाती हुई जाती है, वसे ही जाती हुई तुम्हारी स्तुति करती हैं ॥८॥ शीघ्र आकर शोधित सोम के द्वारा और पवित्र करने वाले उक्थ्य के द्वारा शुद्ध हुये इन इन्द्र की स्तुति करें। पाप मुक्त होकर वृद्धि को प्राप्त हुये इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा गो दुग्धादि में संस्कृत हुआ यह सोम हर्ष देने वाला है ॥९॥ हे इन्द्र ! जो सोम अत्यन्त सुख वाला है और अपनी दीप्ति से अत्यन्त तेज वाला है, वह सोम तुम्हारे भक्तों को धन देने वाला हो। हे स्वाधिपति इन्द्र!

यह निष्पन्न हुआ सोम तुम्हें हर्षदायक होता है ॥१०॥

द्वितीय दशति

ऋषि—भरद्वाज:, वामदेव:, शाकपूतो वा प्रियमेध:, प्रगाथ:, श्यावाश्व आत्रेय:, शंयु:, वामदेव:, जेता माधुच्छन्दस: देवता—इन्द्र: मरुक:, दधिक्रा वा अग्नि । छन्द—अनुष्टुप् ।

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नर: ॥१

आ नो वयो वय: शयं महान्तं गह्वरेष्ठाम् ।
महान्तं पूर्विणेष्ठाम् उग्रं वचो अपावधी: ॥२

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्रं शविष्ठ सत्पतिम् ॥३

स पूर्व्यो महोनां वेन: क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनु: पिता देवेषु धिय आनजे ॥४

यदी वहन्त्याशवो भ्राजमाना रथेष्वा ।
पिबन्तो मदिरं मधु तत्र श्रवांसि कृण्वते ॥५

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं शचिष्ठ विश्ववेदसम् ॥६

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिन: ।
सुरभि नो मुखा करत् प्र न आयुंषि तारिषत् ॥७

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुत: ॥८॥(१-१)

हे यज्ञ-कर्म में नेता अध्वर्यु ओ ! सोमपान की कामना वाले, सबसे ज्ञाता, यज्ञों में गमनशील और अग्रगन्ता इन्द्र के लिये सोम अर्पित करो ॥१॥ हे इन्द्र ! [तुम हमारे सखा हो। अनेक गुफाओं में वर्तमान हमारे सोम को लाकर, पहले से ही संसार में स्थित हमारे भयानक मानवी वचन को नष्ट करो अर्थात् हमारे मनुष्य जन्म को समाप्त कर देवता बना दो।२। हे इन्द्र ! जैसे रक्षा के लिये रथ को घुमाते हैं, वैसे ही तुम [अत्यन्त बली शत्रु-तिरस्कारक और सत्य-रक्षक इन्द्र को हम भ्रमण कराते हैं ॥३॥ वे इन्द्र अपने मुख्य उपासक यजमानों के यज्ञों द्वारा उनकी हवियों की इच्छा करते हुये आते हैं। उस इन्द्र की प्राप्ति वाले अनुष्ठानों को देवताओं के प लक मनुष्य पाते हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! जिस रथ में योजित तुम्हारे वाहन तुम्हें अभिमुख करते है, उस यज्ञ में मधु रूप एवं हर्षकारी सोम का पान करते हुए तुम अन्न के लिये वृष्टि करने वाले होते हो ॥५॥ हे यजमानो ! उपासकों पर कृपा करने वाले, बल के रक्षक, शत्रु-तिरस्कारक कर्मों में स्थित, विश्वरूप धन वाले इन्द्र की तुम्हारे लिऐ स्तुति करता हूँ ॥६॥ अश्व के समान वेग वाले, विजयशील अग्नि की स्तुति करता हूँ। यह अग्नि हमारे मुख आदि को सशक्त करें और हमारे आयुधों की वृद्धि करें ॥७॥ यह इन्द्र शत्रु-पूरियों के विध्वंसक, नित्य युवा, क्रान्तदर्शी, अत्यन्त ओजस्वी, विश्वकर्मा-रूप धारण करने वाले वज्रहस्त और अनेकों द्वारा स्तुत है ॥८॥

— । —

तृतीय दशति

ऋषि—प्रियमेधः, वामदेवः, मधुछन्दाः, भरद्वाजः, अत्रिः, प्रस्कण्वः, आप्त्यस्त्रितः । देवता—इन्द्रः, उषाः, विश्वेदेवाः । छन्द अनुष्टुप् ।

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं वन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥1

कश्यपस्य स्वर्विदो यावाहुः सयुजाविति ।
ययोर्विश्वमपि व्रतं यज्ञं धीरा निचाय्य ॥२

अर्चत प्रार्चता नरः प्रियमेधासो अर्चत ।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरमिद्‌ धृष्णवर्चत ॥३

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्‌ सख्येषु च ॥४

विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथानाम्‌ ॥५

स घा यस्ते दिवो नरो धिया मर्तस्य शमतः ।
ऊती स बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥६

विभोष्ट इंद्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अथा नो विश्वचर्षणे द्युम्नं सुदत्र मंहय ॥७

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपाच्चतुष्पादर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥८

अमी ये देवा स्थन मध्य आ रोचने दिवः ।

कद्व ऋतं कदमृतं का प्रत्ना व आहुतिः ।।९

ऋचं साम यजामहे याभ्या कर्माणि कृण्वते ।

वि ते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु वक्षतः ।।१०।।(९—२)

हे अध्वर्यो ! तुम त्रिष्टुप् युक्त अन्न को वीरो के प्रशंसक इन्द्र के प्रति निवेदित करो । वे इन्द्र अनुष्ठान के निमित्त अत्यन्त ज्ञान वाले कर्म का सेवन करते हैं ।।१।। इन्द्र के अश्वों से सभी कार्य यज्ञ के निमित्त हैं । यज्ञ में आने के लिये ही योजित किये जाते हैं, यह बात स्वर्ग के ज्ञाता पुरुष कहते हैं ।२। हे अध्वर्यो ! इन्द्र का पूजन करो । यज्ञ:कर्म से प्रेम करने वाले उपासकों ! इन अभीष्टपूरक और शत्रु तिरस्कारक इन्द्र का बारम्बार पूजन करो ।।३।। शत्रु-नाशक इन्द्र के लिए वृद्धि के साधन रूप उक्थ प्रशंसनीय हैं । इससे प्रसन्न हुए इन्द्र हमारे पुत्रादि तथा हम मित्रों में वर्तमान होकर हर्ष-ध्वनि करें ।।४।। हे मरुद्-गण ! तुम्हारे सहित वैश्वानर, न झुकने वाले बल के स्वामी इन्द्र को अपने सैनिकों और रथों के गमन काल में रक्षा के लिये आहूत करता हूँ ।।५।। शान्त भाव से अपने कर्म में लगे हुये मनुष्यों में दिव्य गुणयुक्त स्तुति करने वाला पुरुष स्तोता तुम्हारी रक्षाओं से रक्षित होकर, शत्रुओं को पाप के समान लाँघता है ।।६।। हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारा महान् धन वाला दान बहुत है, इसलिये तुम महान् दानी हो । तुम हव धन प्रदान करो ।।७।। हे उषे ! तुम्हारे प्रकाश फैलाने वाले आगमन पर मनुष्य पशु और पक्षी सभी अपनी इच्छानुसार विचरण करते है ।।८।। हे देवताओ ! तुम सूय के प्रकाशित होने पर अन्तरिक्ष में स्थित हो । तुम्हारे स्तोत्र से सम्बन्धित सत्य और असत्य

कहाँ है ? तुम्हारी प्राचीनकाल की आहूति कौन-सी है ? ॥६॥ जिन स्तोत्रादि के द्वारा होता और उद्गाता अनुष्ठानादि कर्म करते है, उन ऋचा और सोम से हम यज्ञ करते हैं। वही ऋचायें स्तोत्र रूप से सुशोभित होती और यज्ञीय भाग को देवताओं को प्राप्त कराती है ॥१०॥

चतुर्थ दशति

ऋषि—रेभः, सुवेदाः शैलूषिः, वामदेवः, सव्य आङ्गिरसः विश्वामित्रः, कृष्ण आङ्गिरसः, भरद्वाजः, मेधातिथिः, कुत्सः। देवता—इन्द्रः, द्यावापृथिवी। छन्द—जगती, महापंक्ति

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राज से।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम् ॥१

श्रते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन् यद् दस्युं नर्यं विवेरपः।
उभे यत्वा रोदसी धावतामनु भ्यासाते शुष्मात् पृथिवी चिदद्रिवः ॥२

समेत विश्वा ओजसा पतिं दिवो य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम्।
स पूर्व्यो नूतनमाजिगीषं तं वर्तनीरनु वावृत एक इत् ॥३

इमे त इन्द्र वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् क्षोणीरिव प्रति तद्धर्य नो वचः ॥४

चर्षणीघृतं मघवानमुक्थ्या३मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥५

अच्छा व इन्द्रं मतयः स्वर्युवः सध्रीचीर्विश्वा उशतीर-
नूषत ।
परि ष्वजन्त जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवान-
मूतये ॥६

अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो
अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषं भुजे मंहिष्ठमभि
विप्रमर्चत ॥७

त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभुवः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमिन्द्रं ववृत्यामवसे
सुवृक्तिभिः ॥८

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे
भूरिरेतसा ॥९

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१०

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृ-
जिश्वना ।

अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वंतं सख्याय हुवेमहि ॥११॥(४-३)

आक्रमण करने वाली, सब ओर फैली हुई सेनायें एकत्र होकर शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र को आयुधयुक्त करती है और स्तोता उन ऐश्वर्यवान् इन्द्र को यज्ञ में प्रकट करते हैं। वे सत्य कर्म के लिये शत्रुहन्ता उग्र, स्थिर, तेजस्वी इन्द्र की धन-लाभार्थ स्तुति करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हारे प्रमुख क्रोध को श्रद्धा से देखता हूँ। उस क्रोध से तुमने राक्षसो का हनन किया और मेघों में छिपे जलों को इस लोक में भेजा। जब द्यावा पृथिवी तुम्हारे आधीन होते हैं तब विस्तृत अन्तरिक्ष भी तुम्हारे बल से डरता है ॥२॥ हे प्राणियों ! स्वर्ग के और बल के स्वामी इन्द्र को स्तोत्र और हवि द्वारा प्राप्त होओ। जो एकाँकी हो यजमानों में अतिथि के समान पूज्य माने जाते हैं, वे पुराण पुरुष इन्द्र 'शत्रु-जय' की कामना वाले स्तोता को विजय-पथ पर अग्रसर करते हैं ॥३॥ हे अनेकों द्वारा स्तुत और अत्यन्त ऐश्वर्य वाले इन्द्र ! हम तुम्हारे आश्रित होकर ही यज्ञ में प्रवृत्त होते हैं। हमारी स्तुतियों को तुमसे भिन्न कोई भी प्राप्त नही होता। जैसे पृथिवी अपने में उत्पन्न सब प्राणियों को आश्रय देती है वैसे ही हमारे स्तोत्र को आश्रय दो ।४। हे उपासको ! स्तुति रूप वाणी से अभीष्ट बल से युद्ध करने वाले, ऐश्वर्यवान्, प्रशंसा योग्य प्रवृद्ध, अनेको द्वारा स्तुत, अविनाशी इन्द्र का स्तव करो ॥५॥ स्त्रियाँ जैसे बलवान् पति की रक्षा के लिए कामनाकरती हैं, वैसे ही स्वर्ग में एकत्र होने वाली, कामनायुक्त वाणियाँ इन्द्र की स्तुति करती हैं ॥६॥ शत्रुओं से युद्ध के लिये तत्पर, यजमानों द्वारा आहूत धनों के आश्रयस्थान इन्द्र के कर्म सूर्य-रश्मियों के समान मनुष्यों का हित करने वाले होते हैं। उन मेधावी और

महान् इन्द्र का सुख के निमित्त पूजन करो ।।७।। जिनके साथ भूमियाँ प्राप्त होती हैं, उन शत्रु-स्पर्द्धी, धनदाता, रथ के समान गन्तव्य स्थान को प्राप्त कराने वाले, अश्व के समान द्रुतगामी इन्द्र की रक्षार्थ पूजन करो और स्तुतियुक्त सौ प्रदक्षिणा करो। ।।८।। द्यावा पृथ्वी, जल वाले प्राणियों के आश्रय योग्य हैं। यह जल को प्रेरित करने वाले वरुण की धारण शक्ति से ठहरे हुये और महान् वीर्य वाले हैं ।।९।। हे इन्द्र ! जैसे उषा अपने प्रकाश से सब संसार को पूर्ण करती है, वैसे ही तुम द्यावा पृथ्वी का अपने तेज से पूर्ण करते हो। इस प्रकार के तुम बड़े से बड़े मनुष्यों के स्वामी इन्द्र को अदिति ने उत्पन्न किया। इस कारण वह जननियों श्रेष्ठ हुई ।।१०।। हे ऋत्विजो ! इन्द्र के निमित्त हविपुक्त स्तुति का उच्चारण करो। जिन ने ऋत्विजो को साथ ले कृष्णासुर को स्त्रियों सहित नष्ट कर डाला, उन अभीष्ठ बर्षक वज्रधारी, मित्रभूत इन्द्र का हम आह्वान करते हैं ।।११।।

पंचम दशति

ऋषि—नारदः, गोपूक्यश्वसूक्तिनौ, पर्वतः, विश्वमना वैयश्वः,
नृमेधः, गोतमः। देवता—इन्द्रः, छन्दः—उष्णिक्

इन्द्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महाँ हि षः ।।१
तमु अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तवीषमा विवासत ।।२
तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ।।३
यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।

यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥४
एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरस्तवते सदावृधः ॥५
एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥६
एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥७
इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ॥८
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥९
सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१०॥ (४-४)

हे इन्द्र ! सोमाभिषव होने पर उसका बल लाभ के लिए पान करते और अपने स्तोता को पवित्र करते हो, ऐसे तुम अत्यन्त ही महान् हो ॥१॥ हे स्तोताओ ! अनेकों द्वारा बुलाये गये, अनेकों से स्तुत उन इन्द्र की बारम्बार स्तुति करो। वे इन्द्र महान् हैं, उनको मन्त्रों से पूजा करो ॥२॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे उन अभीष्टवर्षी युद्धों में, शत्रु-तिरस्कारक लोकों के रचयिता और हर्यश्वों से सेवनीय सोम से उत्पन्न हुये आनन्द की प्रशंसा करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र ! विष्णु के आगमन पर तुम उनके साथ अन्न याग में सोम का पान करते हो। आप्त के पुत्र वित के यज्ञ में भी तुम सोम का पान करते हो। मरुद्गण के

आने पर उनके साथ भी सोम पीते हो, फिर भी हमारे इन श्रेष्ठ सोमों से हर्ष को प्राप्त होओ ॥४॥ हे अध्वर्यो ! हर्षप्रदायक सोम के अत्यन्त आनन्ददायक रस को इन्द्र के लिए सींचो । यह समर्थ इन्द्र ही स्तोत्र आदि के द्वारा पूजित होते हैं ॥ ५ ॥ हे ऋत्विजो ! इस श्रेष्ठ सोम को इन्द्र के लिये ही सींचो। फिर इन्द्र इस रस का पान करें और स्तोताओं को अपनी महिमा से श्रेष्ठ अन्न को अपरिमित रूप से प्रदान करें ॥६॥ हे सखाभूत ऋत्विजो ! तुम शीघ्र ही आगमन करो और सबके स्वामी इन्द्र की स्तुति करो। वे इन्द्र समस्त शत्रु-सेनाओं को अकेले ही वशीभूत करते हैं ॥७॥ हे उद्गाताओं ! मेधावी, महान् अन्न के उत्पन्न करने वाले तथा स्तुति की कामना वाले इन्द्र के निमित्त बृहत्साम का गान करो ॥८॥ अकेले ही जो इन्द्र हविदाता यजमान को धन देते हैं हैं, वे इन्द्र सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं ॥९॥ हे ऋत्विजो ! हम वज्रधारी इन्द्र के लिए स्तुति करते हैं। तुम सबके लिये शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र की मैं ही स्तुति करता हूँ ।१०।

॥ चतुर्थ प्रपाठक समाप्त ॥

—*—

पञ्चमः प्रपाठकः

। प्रथमोऽर्धः ।

प्रथम दशति

ऋषि—प्रगाथः, भरद्वाजः, नृमेधाः, पर्वतः, इरिम्बिठिः, विश्वमनाः, वसिष्ठः दवता–इन्द्रः आदित्यः । छन्दः—उष्णिक् विराडुष्णिक्

गृणे तदिन्द्र ते शव उपमां देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते ॥१

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयन् ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥२

एन्द्र नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिविः ॥३

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्य३त्रिणं तमीमहे ॥४

तुचे तुनाय तत्सु नो द्राघी य आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः समहसः कृणोतन ॥५

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परि पदामिव ॥६

अपामोवामप स्त्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।
आदित्यासो सुयोतना नो अंहसः ।।७
पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ।।८।। (४-५)

हे इन्द्र ! तुम्हारे श्रेष्ठ बल के लिए एव यज्ञ के लिये तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुम अपने बल से वृत्र का हनन करते हो ।।१।। हे इन्द्र ! जिस सोमपान जनित हर्ष के होने पर तुमने दिवोदास के शत्रु शम्बरासुर की हिंसा की उस सोम का तुम्हारे निमित्त अभिषव किया गया है, तुम उसका पान करो ।।२।। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का तिरस्कार करने वाले, शत्रु-विजेता, सबके प्रिय, स्वर्ग के स्वामी और पर्वत के समान महान् हो । तुम हमारे निकट आगमन करो ।।३।। हे सोमपायी इन्द्र ! तुम्हारा सोमपान जनित हर्ष वृत्रवध आदि कर्म को जानने वाला है । तुम उस शक्ति से राक्षसों को मारते हो । हम तुम्हारी उस शक्ति की स्तति करते हैं ।।४।। हे आदित्यों ! हम रे पुत्र, पौत्र के जीवन के निमित्त दीर्घ आयु प्रदान करो ।।५।। हे वज्रिन् विघ्न-कारियों को दूर करना तुम ही जानते हो सूर्योदय के समय कर्म ब्राह्मण नित्य शुद्ध होते हैं और सूर्योदय होने पर पक्षी सब ओर उड़ जाते हैं, वैसे ही तुम्हारे बल के उदय होने पर शत्रु भी भाग जाते हैं ।।६।। हे आदित्य ! हमसे रोगों को दूर करो । बाधक शत्रु को हमारे पास से भगाओ । जो हमें दुःख देना चाहे उसे हमसे दूर हटाओ और हमें पाप से भी मुक्त करो ।।७।। हे इन्द्र ! सोमपान करो । यह सोम तुम्हें हष देने वाला हो । अश्व के समान ग्रहीत सोमाभिषव प्रस्तर ने तुम्हारे निमित्त सोम को संस्कृत किया है ।।८।।

तृतीय दशति

ऋषि—सौभरिः, नृमेधः देवता—इन्दुः, मरुतः। ककुप्।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।
युधेदापित्वमिच्छसे ॥१

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे।
सखाय इन्द्रमूतये ॥२

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थात समन्यवः।
दृढा चिद्यमयिष्णवः ॥३

आ याह्ययमिन्दवेऽश्वपते गोपत उर्वरापते।
सोमं सोमपते पिब ॥४

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥५

गावश्चित् घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः।
रिहते ककुभो मिथः ॥६

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनासहम् ॥७

अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे।
उदेव ग्मन्त उदभिः ॥८

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥९

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोवस्यवः ।
वज्रिञ्चित्रं हवामहे ॥१०॥ (४-६)

हे इन्द्र ! तुम जन्म से ही वान्धव-रहित, शत्रु-रहित और प्रभुत्व करने वाले से रहित हो। जव तुम अपने किसी उपासक की रक्षा करना चाहते हो तब उसके मित्र हो जाते हो ॥१॥ हे मित्रो ! जिन इन्द्र ने इस श्रेष्ठ धन को हमें अधिक मात्रा में पहले ही दिया था, उसी धन वाले इन्द्र की तुम्हारे धन-लाभ और रक्षा के लिए स्तुति करता हूँ ॥२॥ हे मरुद्गण ! हमारे पास आगमन करो हमें हवि मत पहुँचाओ। तुम दृढ़ पर्वत आदि को भी नियम में रखते हो। हमारा त्याग मत करो ॥३॥ हे अश्वों, गौओं और अन्नवती पृथिवी के स्वामी इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त यह सोम प्रस्तुत हैं, तुम यहाँ आकर इसका पान करो ॥४॥ हे अभीष्टवर्षी इन्द्र ! गवादि पशु वाले यजमान के स्थान में श्वास लेते हुए शत्रु को तुम्हारी कृपा से ही उत्तर देने में हम समर्थ होंगे ॥५॥ हे मरुद्गण ! यह गौएँ भी समान जाति होने के कारण बाँधवयुक्त हुई और दिशाओं में जाकर परस्पर प्रेम करती हैं ॥६॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम हमें ओज और धन प्रदान करो। तुम अपने बल से शत्रु-सेनाओं को दबाते हो। हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥७॥ हे इन्द्र ! हम इच्छित पदार्थों की तुमसे याचना करते हुए तुम्हारी स्तुति करते ॥८॥ हे इन्द्र ! स्वर्ग-प्रति वाले तुम्हारे दूध-घृत मिश्रित सोम के समीप एकत्र हुए हम तुम्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥९॥ हे वज्रिन् ! सोम से तुम्हें पुष्ट करने वाले हम अपनी रक्षा के लिए तुम्हें बुलाते हैं, जिस प्रकार अधिक गुणवान् मनुष्य किसी अन्त मनुष्य को बुलाते हैं ॥१०॥

तृतीय दशति

ऋषि:—गोतम;, त्रित:, अवस्यु: । देवता—इन्द्र:, विश्वेदेवा:,
अश्विनौ । छन्द—पंक्ति: ।

स्वादोरित्था विषूवतो मधोः पिबन्ति गौर्य: ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभथा वस्वीरनु
स्वराज्यम् ॥१

इत्था हि सोम इन्मदो ब्रह्म चकाम वर्धनम् ।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु
स्वराज्यम् ॥२

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतिमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र
नोऽविषत् ॥३

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तव त्यन्माययावधीरर्चन्ननु
स्वराज्यम् ॥४

प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु
स्वराज्यम् ॥५

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धनम् ।

युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं बसौ ।
दधोऽस्मां इन्द्र वसौ दधः ॥६
अक्षन्नमोमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया
मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥७
उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
कदा नः सूनृतावतः कर इदर्थयास इद्योजा न्विन्द्रते
हरी ॥८

चन्द्रमा अप्स्वा३न्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतोत्
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥९
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी
मम श्रुतं हवम् ॥१०॥ (४-७)

सब यज्ञों में निष्पन्न होने वाले रस युक्त मधुर सोम का श्वेत वर्ण वाली गौयें पान करती हैं। वे गौयें अभीष्टवर्धक इन्द्र का अनुगमन करती हुई सुखी होती हैं और दूध देती हुई अपने स्वामी के राज्य में निवास करती हैं ॥१॥ हे वज्रिन् ! इस प्रकार तुम्हारे सोम ग्रहण करने पर स्तोता आनन्द देने वाली स्तुति करता है। तब तुमने अपने साम्राज्य में स्थापित होकर वृत्र पर शासन करते हो ॥२॥ हे वृत्रहन ! शक्ति के निमित्त, बल के निमित्त याज्ञिकों द्वारा प्रवृद्ध किये गये तुम सभी छोटे-

बड़े युद्धों में बुलाये जाते हो। हमारे द्वारा आहूत इन्द्र युद्धादि में हमारी भले प्रकार रक्षा करें ।।३।। हे वज्रिन् ! तुम्हारा बल किसी से तिरस्कृत नही हुआ। उसी बल से तुमने अपना प्रभुष्व दिखाते हुए माया मृग रूप वृत्र को अपनी माया से मार डाला ।।४।। हे इन्द्र ! शीघ्रता से आक्रमण कर शत्रुओं को पकड़ो। क्योंकि तुम्हारा वज्र शत्रुओं द्वारा रोका नहीं जा सकता। तुम्हारे बल के सामने सभी झुकते हैं। इस कारण अपने प्रभुत्व को प्रकट करने वाले तुम उस वृत्र को मार कर जलो कों जीतो ।।५।। युद्ध के उपस्थित होने पर जो शत्रु को जीतता है उसे ही धन मिलता है।हे इन्द्र ! ऐसे संग्रामों में शत्रु के अहंकार का नाश करने वाले अपने अश्वों को योजित करो और अपने विरोधी को मारों अपने उहासक को धत्र में स्थापित करो ।।६।। हे इन्द्र ! तुम्हारे दिये हुए अन्न का यजमानों ने सेवन किया और और उसके श्रेष्ठ स्वाद को कहने में असमर्थ रहने के कारण आनन्द से शिर हिलाया। फिर तेजस्वी हुये विप्रों ने अभिषव स्तोत्र से स्तुति की। अतः अपने हर्यश्वों को योजित करो ।।७। हे इन्द्र ! हमारे निकट आकर हमारा स्तुतियों को भले प्रकार सुनो। तुम हमें सत्य वाणी से सम्पन्न कब करोगे ? तुम हमारी स्तुतियों को सदा ही स्वीकार करते रहे हो, अतः अपने अश्वों को योजित नर शीघ्र हों आगमन करो ।।८।। अन्तरिक्ष के जल-युक्त मण्डल में वर्तमान सूर्य-रश्मियाँ चन्द्रलोक में और स्वर्ग में समान रूप से गमन करती हैं ऐसी ही रश्मियों ! तुम सुवर्ण के समान नोक वाली हो तुम्हारे चरण रूप अग्र भाग को मेरी इन्द्रियां पकड़ नहीं सकती हे द्यावा पृथिवी ! तुम मेरी स्तुति को जानो ।।९।। हे अश्विद्वय तुम्हारे फलवर्षक और धनवाहक रथ को स्तोता ऋषि स्तोत्रों से सुशोभित करता है। अतः हे मधु विद्या के ज्ञाताओं ! इस ात को सुनो ।।१०।।

चतुर्थ दशति

ऋषि—वसुश्रुतः, विमदः, सत्यश्रवाः, गोतमः, अंहोमुग्वमदेव्यः

देवता—अग्निः, उषाः, सोमः इन्द्रः, विश्वेदेवाः ।

छन्द—पंक्ति, बृहती ।

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद् दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य
आ भर ॥१

अग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
शीरं पावकशोचिषं वि वो मदे यज्ञेषु स्तीर्णबर्हिषं
विवक्षसे ॥२

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ॥३

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अथा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणा गावो न यवसे
विवक्षसे ॥४

क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृते शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवाँ दधे ।
हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥५

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।

यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्राचिकेतति योजा

न्विद्र ते हरी ॥६

अग्नि तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं

स्तोतृभ्य आ भर ॥७

न तमंहो दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयति वरुणो अति

द्विषः ॥८॥ (४-८)

हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान और अजर हो। हम तुम्हें भले प्रकार प्रज्वलित करते हैं। तुम्हारी स्तुति योग्य ज्योति स्वर्ग में भी दमकती है तुम हम स्तोताओं को अन्न प्रदान करो ॥१॥ हे अग्ने अपने द्वारा की हुई स्तुति से देवाह्वान को सिद्ध करने वाले यज्ञों में जिनके लिए कुशायें बिछाई गई हैं ऐसे सर्वत्र व्यापक तथा पवित्रायुक्त दीप्तिवाले तुम्हारे निमित्त सोम जनित हर्ष के लिए निवेदित करते हैं, क्योंकि तुम महान् हो ॥२॥ हे उषे ! आज इस यज्ञ के दिन हमें अपरिमित धन के लिये प्रकाश दो। इसी प्रकार तुमने पहले भी प्रकाश दिया था। हे सत्य रूप वाली उषे ! मुझ वय-पुत्र सत्यश्रवा पर कृपा करो ।३। हे सोम ! तुम महान् हो। विशिष्ट मद वाले होकर तुम हमारे मन, अन्तरात्मा और कर्म को कल्याणमय करो। यह स्तोता तुम्हारे सखा हो, जैसे गौयें घास से मित्रता करती हैं ॥४॥ कर्म से महान्-शत्रुओं को भयप्रद इन्द्र सोमपान के पश्चात् अपने बल को प्रकट करते हैं। फिर वे श्रेष्ठ नासिका वाले, हर्यश्वान् इन्द्र

अपने हाथों में लोह वज्र को समृद्धि-लाभ के निमित्त ग्रहण करते हैं ॥५॥ हे अभीष्टवर्षक, गौएँ प्राप्त कराने वाले, रथारुढ इन्द्र ! तुम्हारा जो रथ पूर्ण पात्र को प्रकट करता है, अपने उस रथ में हर्यश्वों को योजित करो ॥६॥ उपासकों से धन रूप घर के समान आश्रम रूप जिन अग्नि को गौएँ तृप्त करती हैं और द्रुत-गामी अश्व जिन्हें प्राप्त होते हैं तथा उपासक यजमान जिन के समक्ष हवि लेकर जाते हैं, मैं उन्हीं अग्नि की स्तुति करता हूँ। हे अग्ने ! हम स्तोताओं को अन्न प्रदान करो ॥७॥ हे देवगण ! शत्रुओं को दण्ड देने वाले अर्यमा, मित्र वरुण शत्रुओं से पार कर जिसकी उन्नति करते हैं उस मनुष्य को कोई दोष और उसका फल व्याप्त नहीं करता ॥८॥

पंचम दशति

ऋषि—धिष्ण्या ऐश्वरयोऽग्नेयः, त्र्यरुणत्रसदस्युः वसिष्ठ वामदेवाः। देवता—पवमानः, मरुत; वाजिनः।
छन्द—पंक्ति, उष्णिक् इत्यादयः।

परि प्र धन्वेन्द्राय सोम स्वादुर्मित्राय पूष्णे भगाय ॥१

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईरसे ॥२

पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम ॥३

पवस्य सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥४

इन्दुः पविष्ट चारुर्मदायापामुपस्थे कविर्भगाय ॥५

अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि महे समर्यराज्ये।

वाजाँ अभि पवमान गाहसे ॥६

क ईं व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वा ॥७

अग्नु तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।

ऋध्यामा त ओहैः ॥८

आविर्मर्य्या आ वाजं वाजिनो अग्मं देवस्य सवितुः सर्वं ।

स्वर्गां अर्वन्तो जयत ॥९

हवस्व सोम द्युम्नो सुधारो महां

अवीनामनुपूर्व्यः ॥१०॥ (४-६)

हे सोम ! तुम्हारा रहे अत्यन्त सुस्वादु है। तुम इन्द्र के लिये मित्र के लिए, पूषा के लिए और भग देवता के लिये सब पात्रों में स्रवित होओ और साहस पूर्वक शत्रुओं पर आक्रमण करो। तुम हमारे ऋणों को नष्ट करने के लिये शत्रुओं को तिरस्कृत करते हो ॥२। हे सोम ! तुम महान् प्रवाहमान् सबके पालक और देवताओं के सब धामों के पात्रों को परिपूर्ण करते हो ॥३॥ हे सोम ! तुम अश्व के समान जलों से प्रक्षालित होकर वेगवान् होते हो। अतः महान् बल ओर धन के लिये पात्रों को पूर्ण करने ॥४॥ यह कल्याणकारी सोम श्रेष्ठ वृद्धि द्वारा सेवनीय हर्ष के लिये जलों के मध्य क्षरित होता है ।५। हे सोम तुम्हारा अभिषव होने पर हम तुम्हारी स्तुति

करते हैं। हे पवमान् ! तुम मनुष्यों के साथ राष्ट्र की रक्षा के निमित्त शत्रुओं से युद्ध करते हो ॥६॥ प्रभुत्व सम्पन्न कान्तिमान समान स्थान वाले, मनुष्य हितैषी और श्रेष्ठ अश्वों वाले ऐसे कौन है जो दीन स्तोता के लिए अपने बन जाते हैं? ॥७॥ हे अग्ने ! तुम कल्याण रूप, अश्व के समान हवि वाहक और इन्द्रादि देवताओं को प्राप्त कराने वाले हो। आज हम ऋत्विज तुम्हें स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करते हैं ॥८॥ मनुष्यों का हित करने वाले, प्रकाशयुक्त हवि प्राप्त करने वाले देवताओं ने सवित्ता देव द्वारा सम्पादित अन्न रूप सोम को प्राप्त किया। अत: हे यजमानो ! स्वर्ग पर विजय प्राप्त करो ॥९॥ हे सोम ! तुम अन्न-युक्त, प्राचीन, महान् सुन्दर धाराओं वाले और क्रमपूर्वक सम्पादित होने वाले हो ॥१०॥

(द्वितीयोऽर्धः)

प्रथम दशति

ऋषि— त्रसदस्युः, संवर्तः। देवता—इन्द्रः
विश्वेदेवः उषाः। छन्द—दिपदा विराट्

विश्वतोदावन् विश्वतो न आ भर यं त्वा शविष्ठमीमहे ॥१

एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे ॥२

ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥३
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षुस्त्वष्टा वज्रं पुरहूत द्युमन्तम्
॥४
शं पदं मघं रयीषिणो न काममव्रतो हिनोति न स्पृश-
द्रयिम् ॥५
सदा गावः शुचयो विश्वधायसः सदा देवा अरेपसः ॥६
आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनि यदूधभिः ॥७
उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे य इन्द्रः॥८
अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्का आ स्तोभति श्रुतो युवा स
इन्द्रः ॥९
प्र व इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं यं
जुजोषते ॥१०॥(४-१०)

हे शत्रुनाशक और उपासकों को दान देने वाले इन्द्र ! तुम हमें सब प्रकार के अभीष्ट धन दो। तुम अत्यन्त सामर्थ्य वाले हो। अतः हम तुम्हीं से याचना करते हैं ॥१॥ वसन्त आदि ऋतुओ में प्रकट होने वाले जो इन्द्र अपने नाम से ही प्रसिद्ध हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥२॥ राक्षसों को नष्ट करने के लिए प्रशंसनीय स्तोत्रों से पूजन करने वाले विप्र, इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं ॥३॥ हे इन्द्र! तुम्हारे रथ की मनुष्यों और देवताओं ने रचना की। तुम अनेकों द्वारा पुकारे गये और विश्वकर्मा ने तुम्हारे वज्र को तेजस्वी बनाया ॥४॥ हविदाता यजमान सुख, पदवी और धन को प्राप्त करते हैं और इन्द्र के लिए कर्म न करने वाला व्यक्ति दानादि करने से समर्थ नहीं होता और अपने

अभीष्ट धन का भी स्पर्श नहीं कर सकता। ५। इद्र की शरण में जाने वाले सदा स्वच्छ और पोषण-शक्ति तथा दानादि गुण वाले और निष्पाप होते हैं। ६। हे उषे! कामना-योग्य तेज के सहित आगमन करो। उषा की किरणें रथ का वहन करती हैं, वे ऐनों से सम्पन्न हैं।७। हे इन्द्र! राजा द्वारा बनवाये चमस में से मधुरतायुक्त श्रेष्ठ अन्न को हम तुम्हारे पास आकर परोसते हुए तुम्हारा ध्यान करते हैं।८। श्रेष्ठ स्तोत्र वाले स्तोता पूजनीय इन्द्र का हवियों और स्तोत्रों से पूजन करते हैं। वे युवा और श्रेष्ठ इन्द्र उनके शत्रुओं का हनन करते हैं। ६। है ब्राह्मणो! वृत्रहन्ता इन्द्र के लिये उस स्तोत्र का गान करो जिससे इन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—पृषध्रः, बन्धुः, संवर्तः, भुवन आप्त्यं, भरद्वाजः इत्यादयः। देवता—अग्निः, इन्द्रः, उषाः, बिश्वेदेवाः। छन्द—द्विपदा विराट्, एकपदा।)

अचेत्यग्निश्चिकितिर्हव्यवाड् सुमद्रथः ॥१
अग्ने त्वं नो अंतम उत त्राता शिवो भुवो बरूथ्यः ॥२
भगो न चित्रो अग्निर्महोनां दधाति रत्नम् ॥३
विश्वस्य प्र स्तोभ पुरो वा सन् यदि वेह नूनम् ॥४
उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥५
इमा नु कं भुवना सोषधेमेन्द्रश्च बिश्वे च देवाः ॥६
वि स्रुतयो यथा पथा इन्द्र त्वद्यन्तु रातयः ॥७
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥८

ऊर्जा मित्रो वरुणः पिन्वतेडाः पीवरीमिषं कृणुही न इन्द्र ॥९

इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१०॥ (४–११)

अत्यन्त मेधावी, हवियों से युक्त एवं हवि वहन करने वाले अग्नि हविदाता को भले प्रकार जानते हैं। १। हे अग्ने ! सेवा करने के योग्य तुम हमारे निकटस्थ रक्षक तथा कल्याणप्रद होओ। २। सूर्य के समान अद्‌भुत महान् अग्नि याज्ञिको को श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं। ३। यह अग्नि सब शत्रुओं के मारने वाले हैं। वे इस यज्ञ स्थान में पूर्व दिशा में स्थित होकर पूजे जाते हैं।४। यह उषा अपनी भगिनी रूप रात्रि के अन्धकार को अपने प्रकाश से दूर कर देती है और रथ पर भी अपना उत्तम प्रकाश पहुंचाती है। ५। इन दर्शनीय लोकों को सुख प्राप्ति के लिये शीघ्र ही वश में करता हूँ। इन्द्र और सब देवगण मुझ पर प्रसन्न होकर मेरे कार्य को सिद्ध करें। ६। हे इन्द्र ! राजमार्ग से जैसे छोटे-छोटे मार्ग निकलते हैं, वैसे ही तुम्हारे दान हमें प्राप्त हों ॥ ७ ॥ हम इन्द्र के दान को इस स्तुति के प्रभाव से भोगने वाले हों। श्रेष्ठ पुत्रों वाले हम सौ हेमन्तों तक सुखी रहें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हे मित्रावरुण ! तुम हमें बलयुक्त अन्न प्रदान करो। हमारे अन्न को अपरिमित करो। ९। इन्द्र ही सम्पूर्ण विश्व के स्वामीं हैं ॥१०॥

—★—

तृतीय दशति

(ऋषि–गृत्समदः, गौराङ्गिरसः (?, गोर आ० घोर आ० वा०)
परुच्छेपो, रेभः, एवयामरुतः, अनानतः पारुच्छेपिः नकुलः ।
देवता—इन्द्रः, सूर्यः, विश्वेदेवाः मरुतः पवमानः,
सविता, अग्निः । छन्द—अष्टिः,
अत्यष्टि, अतिजगती)

**त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत् सोमम्
पिबद् विष्णुना सुतं यथावशम् ।**
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महापुरुं सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥१
अयं सहस्रमानवो दृशः कवीनां मतिर्ज्योतिर्विधर्म ।
ब्रध्नः समीचीरुषसः समैरयदरेपसः सचेतसः स्वसरे
मन्युमन्तश्चिता गोः ॥२
एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव
सत्पतिरस्ता राजेव सत्पतिः ।
हवामहे त्वा प्रयस्वन्तः सुतेष्वा पुत्रासो न पितरं वाज-
सातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥३
तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं
श्रवांसि भूरि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तं राये नो विश्वा
सुपथा कृणोतु वज्री ॥४

अस्तु श्रोषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु त्यच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे ।
यद्ध क्राणा विवस्वते नाभा सन्दाय नव्यसे ।
अध प्र नूनमुप यन्ति धीतयो देवां अच्छा न धीतयः ॥५
प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये ।
धुनिव्रताय शवसे ॥६
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि तरति
सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः
विश्वा यद्रूपा परियास्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥७
अभि त्यं देवं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवं रत्नधामभि प्रियं मतिम् ।
ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत् सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः ॥८
अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् ।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः ॥९
तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिव प्रवाच्यं कृतम् ।

यो वेवस्य शवसा प्रारिणा असु रिणन्नपः ।
भुवो विश्वमभ्यदेवमोजसा विदेदूर्जं ।
शतक्रतुर्विदेद्विषम् ।।१०।। (४–१२)

अत्यन्त बली, पूजनीय इन्द्र ने ज्योति, गौ और आयु वाले दिनोंमें अभिषुत सोम का विष्णुके साथ इच्छानुसार पान किया। उस सोम ने वृत्रहनन आदि कर्मों में इन महिमामय इन्द्र को हर्षयुक्त किया। वह टपकता हुआ श्रेष्ठ सोम इन इन्द्र में रमण करे। १। सहस्र मानवों वाले, दर्शनीय मेधावी, विधाता एवं ज्योतिस्वरूप यह सूर्य अंधकार रहित इन उषाओं को प्रेरित करते हैं। तब यह प्रकाशयुक्त चन्द्रमा आदि भी दिन के प्राप्त होने पर सूर्य के तेज के कारण आभाहीन हो जाते हैं। २। हे इन्द्र ! दूर देश से हमारे निकट आगमन करो। जैसे यह अग्नि और संस्कृत सोम प्राप्त हुए हैं, जसे सत्यपालक यजमान यज भूमि में आया है, जैसे चन्द्रमा अपने लोक को प्राप्त होता है, वैसे ही हम यजमान तुम्हारे अभिमुख आकर आह्वान करते हैं। जैसे अन्न के लिए पुत्र पिता को पुकारते हैं। वैसे ही युद्ध जीतने के लिये हम तुम्हें पुकारते ।। ३ ।। उग्र, धनवान बलधारक, जो शत्रु द्वारा न रुक सके ऐसे इन्द्र को बारम्बार आहूत करता हूँ। वे महान् इन्द्र हमारी स्तुतियों के प्रति अभिमुख हो रहे हैं। वे वज्रधारी हमें धन प्राप्त होने वाले मार्गों को सुगम करें ।। ४ ।। हे इन्द्र ! उत्तर वेदी के अग्रभाग में आह्वानीय अग्नि को मैंने धारण किया। हम उन अग्नि की पूजा करते हैं। इन्द्र और वायु की स्तुति करते हैं। यह सब यजमानके लिए देवयज्ञ वाले स्थान में एकत्र होकर अभीष्ट पूर्ण करते हैं हमारे सभी कर्म तुम्हें प्राप्त होते हैं। ५। एवयामरुत नामक ऋषि की स्तुतियाँ मरुत्वान् और विष्णु सहित इन्द्र को प्राप्त हों। यह यजन योग्य अलंकृत

बलवान् मरुद्गण के बल को भी प्राप्त हों। ६। पवित्रकर्त्ता सोम अपनी हरित वर्ण वाली धारा से जैसे सूर्य अन्धकार को नष्ट करता है वैसे ही सब बैरियों को नष्ट करता है। उस सोम की धारा तेजस्वी होती है, यही सोम अपने तेजों से सब रूपों को व्याप्त करता है। ७। सर्वज्ञ, सत्यप्रेरक, धनदाता, प्रित, स्तुति योग्य उन सविता देवता का पूजन करता हूँ। उन सविता की दीप्ति ऊँची उठकर द्यावापृथिवी में दमकती है। वे श्रेष्ठकर्मा सविता देव कृपापूर्वक स्वर्ग के निमित्त सोमपान करते हैं। ८। सब देवताओं में अग्र-होता, अधिक धनदात , बल के पुत्र. सर्व ज्ञाता अग्नि देवता यज्ञ का भले प्रकार निर्वाह करते हैं, वे देवताओं क हवि पहुँचाने की इच्छा करते हुए सब ओर से होमे-जाते हुए घृत को स्वीकार करते हैं। ९। हे सर्व प्रेरक इन्द्र! तुम्हारा प्राचीन मनुष्य-हितैषी कर्म स्वर्ग में प्रशंसनीय है। तुमने अपनी शक्ति से असुर के प्राणों को नष्ट किया और उसके द्वारा अवरुद्ध जलों को खोल दिया। ऐसे हे इन्द्र! अपने बल से राक्षसों को तिरस्कृत करो। तुम बल और हविरूप अन्न को प्राप्त करो ॥१०॥

—※—

चतुर्थ दशति

(ऋषि—अमहीयुः, मधुच्छन्दा, भृगुर्वारुणि, त्रितः, कश्यपः
जमदग्निः दृढ़च्युत आगस्त्यः काश्यपोऽसितः । देवता-
पवमानः, सोमः । छन्द—गायत्री ।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रं शर्म महि श्रवः ॥१

स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥२

वृषा पवस्व धारया मरुत्वते च मत्सरः ।
विश्वा दधान ओजसा ॥३

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा ।
देवावीरघशंसहा ॥४

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः ।
हरिरेति कनिक्रदत् ॥५

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।
अर्कस्य योनिमासदम् ॥६

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः
श्येनो न योनिमासदत् ॥७

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥८

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥९
परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतुः ॥१०॥ (५-१)

हे सोम ! तुम्हारा रस उत्पन्न हुआ । हम स्वर्ग में विद्यमान उग्र कल्याण को और महिमामय अन्न को प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ हे सोम ! तुम इन्द्र के पानार्थ संस्कृत हुए हो । अतः अत्यन्त स्वाद वाली हर्ष प्रदायक धार सहित क्षरित होओ ॥२॥ हे सोम ! तुम स्तोताओं के लिए अभीष्टवर्धक होते हुए कलश में आगमन करो और मरुत्वान् इन्द्र के लिए सब धनों को धारण कर हर्षयुक्त होओ ॥३॥ हे सोम ! तुम्हारा रस देवताओं द्वारा कामना किया हुआ, राक्षस-हन्ता, अत्यन्त हर्षप्रद है । उस रस के सहित कलश में आगमन करों ॥४॥ तीन वेदों की वाणी गौएँ रँभाती हैं, तब हरे वर्ण का सोमरस शब्द करता हुआ कलश में गमन करता है ॥५॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त मधुर हो । इस यज्ञ स्थान में इन्द्र के लिये कलश में स्थित होओ ॥ ६ ॥ पर्वत में उत्पन्न सोम शक्ति के निमित्त अभिषुत किया गया जलों में बढ़ता है । श्येन जैसे अपने स्थान को प्राप्त होता है, वैसे यह सोम अपने स्थान को प्राप्त होता है, वैसे ही यह सोम अपने स्थान पर स्थित होता है ॥७॥ हे सोम ! तुम हर्ष और बल के साधन रूप हो । इन्द्र आदि देवताओं के पानार्थ तथा मरुद्गण के निमित्त कलश में स्थित होओ ॥८॥ यह सोम पवित्र कलश में स्थिति हुआ है । हे सोम ! तुम पर्वत पर उत्पन्न होने वाले हो । अभिषुत होने पर सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो ॥ ९ ॥ वुद्धि को बढाने वाला सोम अभिषवण फलक में स्थित होकर स्वर्ग गमन में प्रीति करने वालों को प्राप्त होता है ॥१०॥

पंचम दशति

(ऋषि—श्यावाश्व:, त्रित:, अमहीयु:, भृगु:, कश्यप:, निध्रुवि:, काश्यप:, काश्ययोऽसित:। देवता—पवमान: सोम:। छन्द—गायत्री।)

प्र सोमासो मदच्युत: श्रवसे नो मघोनाम्।

सुता विदथे अक्रमु: ॥१

प्र सोमासो विपश्चितोऽपो नयन्त ऊर्मय:।

वनानि महिषा इव ॥२

पवस्वेन्दं वृषा सुत: कृधी नो यशसो जने।

विश्वा अप द्विषो जहि ॥३

वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हवामहे।

पवमान स्वर्दृशम् ॥४

इन्दु: पविष्ट चेतन: प्रिय: कवीनां मति:।

सृजदश्वं रथीरिव ॥५

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया।

शुक्रासो वीरयाशव: ॥६

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मद:।

वायुमा रोह धर्मणा ॥७

पवमानो अजीजनद् दिवश्चित्रं न तन्यतुम्।

ज्योतिश्वानरं बृहत् ॥८

परि स्वानास इन्दवो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥९
परि प्रासिष्यदत् कविः सिन्धोरूर्मावधि श्रितः ।
कारुं बिभ्रत् पुरुस्पृहम् ॥१०॥ (५–२)

हर्षप्रदायक सोम अभिषुत होने पर हमारे हवियुक्त यज्ञ में अन्न और यज्ञ के लिए पात्रों में स्थित होता है । १ । बुद्धि-वर्धक यह सोम जल की लहरों के समाम तथा पशुओं के बन में जाने के समान पात्रों में जाता है । २ । हे अभिषुत सोम ! तुम कामनाओं को पूर्ण करने वाले होकर धाराओं सहित पात्र में स्थित होओ और हमें यश से सम्पन्न करो तथा सब शत्रुओं को नष्ट करो । ३ । हे सोम ! तुम अभीष्टवर्धक हो । हे पवमान सोम ! तुम सर्वद्रष्टा को हम यज्ञ में आहूत करते हैं ॥ ४ ॥ चैतन्यप्रद, देवप्रिय यह सोम ऋत्विजों की स्तुतियों के सहित पात्रों में जाता है । ५ । बलवान् भाग्यशाली सोम गौओं, अश्वों और पुत्रो की कामना से ऋत्विजों द्वारा शुद्ध होता है । ६ । हे दिव्य गुण वाले सोम ! पात्रों में स्थित होओ और तुम्हारा हर्षकारी रस इन्द्र को प्राप्त हो । तुम रस रूप से वायु को प्राप्त होओ । ७ । सोम ने वैश्वानर नामक ज्योति को स्वर्ग के अद्भुत वज्र के समान प्रकट किया । ८ । अमृत रूप सोम निचौड़े जाते हुए धारा रूप से देवताओं के हर्ष के लिये छन्ने से नीचे टपकते हैं । ९ । मेधावी समुद्र की लहरों में आश्रित, स्पृहणीय स्तोता के धारण करने वाला सोम पात्र में सिंचित होता है ॥१०॥

—*—

षष्ठः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

प्रथम दशति

(ऋषि—अमहीयुः, वृहन्मतिः, आङ्गिरस, जमदग्निः, प्रभूवसुः,
मेघ्यातिथिः निध्रुविः काश्यपः, उचथ्यः । देवता—
पवमानः, सोमः । छन्द—गायत्री ।)

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः।१
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः
आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः ।
इन्दुरिन्द्राय धीयते ।।३
असर्जि रथ्यो यथा पवित्रे चम्वोः सुतः ।
कार्ष्मन् वाजी न्यक्रमीत ।।४
प्र यद्गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ।।५
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित् सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ।।६
अया पवस्व धारया यथा सूर्यमरोचयः ।
हिन्वानो मानुषीरपः ।।७

स पवस्व य आविथेन्द्रं वृत्राय हन्तवे ।
वव्रिवांसं महीरपः ॥८
अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।
अवाहन्नवतीर्नव ॥९
परि द्युक्षं सनद्रयिं भरद्वाजं नो अंधसा ।
स्वानो अर्ष पवित्र आ ॥१०॥ (५-३)

भले प्रकार उत्पन्न हुए जलों द्वारा प्रेरित शत्रु नाशक, गो-घृत आदि से मिश्रित सोम को देवगण प्राप्त होते हैं ॥१॥ जो इष्टा सोम-शत्रु-सेनाओं पर आक्रमण करता है, उस सोम को शुद्धियों से शोभित करते हैं ॥२॥ कलश में प्रविष्ट हुआ निष्पन्न सोम सब धनों की वर्षा करता हुआ इन्द्र के निमित्त स्थित होता है ॥३॥ रथ के अश्व को जैसे छोड़ देते हैं, वैसे ही अभिषवण फलकों में अभिषुत सोम छन्ने में छोड़े जाने पर वेग वाला होकर युद्धों में आक्रमण करने वाला होता है ॥४॥ प्रकाशयुक्त और गमनशील सोम यज्ञ में उसी प्रकार जाते हैं जैसे गौएँ गोष्ठ में जाती हैं ॥ ५ ॥ हे सोम ! तुम हर्षप्रदायक हो, हिंसक शत्रुओं को नष्ट करने वाले हो। तुम पात्रों में स्थिर रहने वाले होकर देव विरोधी राक्षसों को दूर करो ॥६॥ हे सोम ! मनुष्य हितैषी जलों को प्रेरित करते हुए तुम अपनी जिस धार से सूर्य को प्रकाशित करते हो, उसी धार से पात्र में गमन करो ॥ ७ ॥ हे सोम ! तुम जलों के रोकने वाले वृत्र के हननकर्त्ता इन्द्र की रक्षा करो और धारा से कलश को पूर्ण करो ॥ ८ ॥ हे सोम ! इन्द्र के सेवनार्थ अपने रस रूपसे कलस में स्थित होओ। तुम्हारे रस ने ही युद्धों की निन्यानवे पुरियों को तोड़ डाला था ॥ ९ ॥ देव धनों को यह सोम हमें अन्न के सहित प्रदान करे। हे सोम ! तुम छाने जाते हुये कलश में टपको ॥१०॥

द्वितीय दशति

(ऋषि—मेध्यातिथिः, भृगुः, उचथ्यः, अवत्सार निध्रुविः, काश्यपः, असतिः, कश्यपो, मारीचः, कवि, जमदग्निः अयास्य आङ्गिरसः, अमहीयुः । देवता—पवमानः, सोमः । छन्द—गायत्री ।)

अचिक्रदद् वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण विद्युते ॥१

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।
पान्तमा पुरुस्पृहम् ॥२

अध्वर्यो अद्रिभिः सुतं सोमं पवित्र आ नय ।
पुनाहीन्द्राय पातवे ॥३

तरत् स मन्दी धावति ॥४

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं सोम सुवीर्य्यम् ।
अस्मे श्रवांसि धारय ॥५

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः ।
रुचे जनन्त सूर्यम् ॥६

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत् ।
सीदन् योनौ वनेष्वा ॥७

वृषा सोम द्युमाँ असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥८

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः ।
इन्दो रुचाभि गा इहि ॥९

मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्व देवयुः ।
अव्या वारेभिरस्मयुः ॥१०

अया सोम सुकृत्यया महान्त्सन्नभ्यवर्धथाः ।
मन्दान इद् वृषायसे ॥११

अयं विचर्षणिर्हितः पवमानः स चेतति ।
हिन्वान आप्यं बृहत् ॥१२

प्र न इन्दो महेतु न ऊर्मि न बिभ्रवर्षसि ।
अभि देवाँ अयास्यः ॥१३

अपघ्न पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।
गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ॥१४॥ (५-४)

अभीष्टवर्धक, हरित वर्ण वाला, पूजनीय, सखा के समान और दर्शनीय सोम जो अभिषव काल में शब्द करता है, वह सूर्य के साथ ही प्रकाशित होता है ॥ १ ॥ हे सोम हम याज्ञिक तुम्हारे बल की याचना करते हैं। वह बल सुखदाययक धन प्राप्त कराने वाला, रक्षक और अनेकों द्वारा कामना किया गया है। २। हे अध्वर्यो ! पाषाणों द्वारा कूटकर निकाले गये सोम-रस को छन्ने में डालो और इन्द्र के पीने के लिये पवित्र करो। ३। निष्पन्न सोम की धार से जो उपासक इन्द्र को हर्ष प्रदान करता है, वह पाप से तरते हुये ऊर्ध्वगति को पाता है। ४। हे सोम ! तुम सहस्र संख्यक धन की वृष्टि करो और हम में अन्नों को स्थापित करो। ५। प्राचीन और गमनशील

सोमों ने नवीन पद का आक्रमण किया और दीप्ति के लिए सूर्य के समान तेजस्वी हुए ॥ ६॥ हे सोम ! तुम अत्यन्त तेजस्वी और बारम्बार शब्द करने वाले हो । इस यज्ञ-मण्डप में आगमन करो ॥७॥ हे सोम ! तुम काम्यवर्षक और तेजस्वी हो । हे वर्षण-शील सोम ! तुम कर्मों के धारण करने वाले हो ॥८॥ हे सोम ! ऋत्विजों द्वारा शोभित हुए अन्न-लाभ के लिए धाराओं सहित स्रवित होओ और अन्न रूप गवादि पशुओं को प्राप्त होओ ॥६॥ हे सोम ! काम्यवर्षक, देवताओं द्वारा इच्छित तुम हमारी रक्षा करो और छन्ने में धारा रूप से टपको ॥ १० ॥ हे सोम ! इस श्रेष्ठ कर्म द्वारा महान् होते हुए तुम देवत ओं के निमित्त वृद्धि को प्राप्त हाओ । तुम हर्षप्रदायक होते हुए: बैल के समान शब्द करते हो ॥११॥ चैतन्यताप्रद शुद्ध, पात्र में स्थित यह सोम जल से उत्पन्न अन्न को देता हुआ जाता है ॥ १२ ॥ हे सोम ! तुम हमारे धन के लिए कलश को प्राप्त होते हो, तुम्हारी तरङ्गों के धारण करने वाला विप्र देव-पूजन के निमित्त गमन करता है ॥१३॥ इस सोम ने शत्रुओं का और अदानशीलों को मारा । यह इन्द्र के स्थान को प्राप्त होने वाला सोम धारा रूप में क्षरित होता है ॥ १४ ॥

तृतीय दशति

(ऋषि—भरद्वाज:, कश्यप, गोतमोऽर्चिर्विश्वामित्र: जम-दग्निर्वसिष्ठः । देवता—पवमान:, सोम: । छन्द--वृहती ।)

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि ।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥1

परीतो षिञ्चता सुतं सोमो य उत्तमं हविः ।
दधन्वां यो नर्यो अप्स्वा३न्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥२
आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे ॥३
प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥४
सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।
अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्राय याति धारया ॥५
तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति ताँ इहि ॥६
मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशङ्गं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ।७
समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥८
पुनानः सोम जागृविरव्या वारैः परि प्रियः ।
त्वं विप्रो अभवोऽङ्गिरस्तम मध्वा यज्ञं मिमिक्षणिः ॥९
इन्द्राय पवते मदः सोमो मरुत्वते सुतः ।
सहस्रधारो अत्यव्यमर्षति तमी मृजन्त्यायवः ॥१०
पवस्व वाजसातमोऽभि विश्वानि वार्या ।
त्वं समुद्रः प्रथमे विधर्मं देवेभ्यः सोम मत्सरः ॥११

पवमाना असृक्षत पवित्रमति धारया ।
मरुत्वन्तो मत्सरा इन्द्रिया हया मेधामभि
प्रयांसि च ॥१२॥ (५-५)

हे सोम ! तुम जलों के आच्छादक हो । धारा रूप से कलश में जाते हो । रत्नादि धन के दाता, यज्ञ स्थान में स्थित होने वाले, दिव्य सोम देवताओं के लिए हितकारी होते हैं ॥१॥ जो सोम देवताओं के लिए उत्तम हवि है, वह मनुष्यों का हितैषी सोम जलों में जाता है । उस सोम को पाषाणों से कूट कर जलों में सिंचित करो ॥२॥ हे सोम ! प्रस्तर द्वारा कूटे जाने पर तुम छन्ने को लाँघते हुए कलश में जाते हो ! जैसे नगर में मनुष्य होता है वैसे ही सोम काष्ठ के पात्रों में पहुँचता है ॥३॥ हे सोम ! देवताओं के पानार्थ सिन्धु के समान वसतीवरी जलों से वृष्टि को प्राप्त हुए तुम अपने अंशों सहित मधुर रस युक्त कलश को प्राप्त होते हो ॥४॥ निचोड़ा जाता हुआ सोम शुद्ध होकर कलश में जाता है । यह सोम हरे वर्ण की धार से आनन्ददायक होता हुआ प्राप्त होता है ॥५॥ हे सोम ! मैं नित्य प्रति तुम्हारे सख्य भाव में रहूँ । जो अनेक राक्षस मेरे कर्म में बाधक होते हैं, उन्हें तुम नष्ट करो ॥६॥ हाथों से भले प्रकार संस्कृत हुए सोम ! तुम शब्द करते और अनेकों द्वारा कामना किये गये स्वर्णादि धन का स्तोताओं को लाभ कराते हो ॥७॥ हे ज्ञानी, गमनशील हर्षयुक्त, रस सिंचने वाले सोम ! तुम अपने रस को कलश के ऊपर सब ओर निकालते हो ॥८॥ हे सोम ! तुम चैतन्ययुक्त, प्रिय और पवित्र होते हुए छन्ने से टपकते हो । पितरों के नेता और बुद्धिवर्धक हो तथा हमारे यज्ञ को अपने मधुर रस से सिंचित करते हो ॥९॥ हर्षप्रदायक संस्कृत सोम मरुत्वान् इन्द्र

के लिए कलश में पूर्ण होता और अपनी धाराओं से छन्ने में टपकता है। ऋत्विज उसका शोधन करते हैं ॥१०॥ हे सोम! तुम सब स्तोत्रों के द्वारा अन्न लाभ वाले होकर आओ और देवताओं के लिये हर्षप्रद और तृप्तिकारक होते हुए टपको ॥११॥ मरुद्गण सहित इन्द्र की प्रिय स्तुतियों और अन्नों को लक्ष्य करते हुए स्तोता के अन्न लाभ के निमित्त यह सोम छन्ने से निकलते हैं ॥१२॥

चतुर्थ दशति

ऋषि—उशना काव्यः, वृषणो वसिष्ठः, परासरः, शाक्त्यः, वसिष्ठो मैत्रावरुणिः प्रतर्दनी देवोदासिः, प्रस्कण्वः, काण्वः
देवता—पवमानः, सोमः । छन्द—त्रिष्टुप् ।

प्र तु द्रव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ।
अश्वं न त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा ।
बर्हो रशनाभिर्नयन्त ॥१

प्र काव्यमुशनेव ब्रुवाणो देवो देवानां जनिमा विवक्ति ।
महिव्रतः शुचिबन्धु पावकः पदा वराहो अभ्येति रेभन् ॥२

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निनर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।
गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः
सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥३

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम् ।
सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितेव सद्म पशुमन्ति होता ॥४

सोमः पवते जनीता मतीनां जनिता दिवो जनिता
पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः
॥५
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामंगोषिणमवावशन्त वाणीः ।
वना वसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि
॥६
अक्रान्त्समुद्रः प्रथमे विधर्मञ्जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः ।
वृषा पवित्रे अधि सानो अव्ये बृहत्
सोमो वावृधे स्वानो अद्रिः ॥७
कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन् वनस्य जठरे
पुनानः ।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिज गामतो मतिं जनयत स्वधाभिः
॥८
एष स्य ते मधुमाँ इन्द्र सोमो वृषा वृष्णः परि पवित्रे
अक्षाः ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा शश्वत्तमं बर्हिरा वाज्यस्थात्
॥९
पवस्व सोम मधुमाँ ऋतावापो वसानो नद्यि सानो
अव्ये ।
अव द्रोणानि घृतवन्ति रोह
मदिन्तमो मत्सरः इन्द्रपानः ॥१०॥ (५-६)

हे सोम ! तुम शीघ्र आकर कलश में स्थित होओ। ऋत्विजों द्वारा पवित्र किये जाते हुए तुम इस यजमान को अन्न प्रदान करो तुम्हें अश्व के समान शुद्ध करते हुए विप्र यज्ञ में पहुचाते हैं ॥१॥ उशना के समान स्तुति करने वाला इन्द्रादि देवों के प्राकट्य का वर्णन करता है। तेजस्वी व्रती और पापशोधक शब्द करता हुआ पात्रों को भर देता है ॥२॥ हविदाता यजमान तीनों वेदों की वाणियों का उच्चारण करता है ओर सोम की सत्य कल्याण-दायी स्तुति कहता है। अभीष्ट की याचना वाले स्तोता सोम की स्तुति के लिये गमन करते हैं ॥३॥ सुवर्ण द्वारा पवित्र किया गया सोम अपने रस को देवताओं में मिलाता है। यह अभिषुत सोम शब्द करता हुआ छन्ने में जाता है, जैसे होता पशुओं से भरे गोष्ठ में जाता है ॥४॥ बुद्धियों को प्रकट करने वाला स्वर्ग, पृथिवी, अग्नि, आदित्य और इन्द्र को प्रकट करने वाला विष्णु को भी बुलाने वाला सोम कलश में स्थित है ॥५॥ तीनों सवन वाले, काम्यवर्षक, अन्नदाता, शब्दवान् सोम की कामना वाणी करती है। यह जलों में बसा हुआ प्रवहामान सोम स्तोताओ को वरुण के समान धन प्रदान करता है ॥६॥ जल-वर्षक, यज्ञपालक, काम्यवर्षक संस्कृत सोम जलधारक अन्तरिक्ष में प्रजाओ को प्रकट करता हुआ सबको लाँघ जाता है ॥७॥ सब ओर से परिस्रुत हरि सोम शब्द करता हुआ शोधा जाता है और द्रोण कलश में पहुँचता है। यह अपने को दुग्धादि मिश्रित करता हुआ कलश में जाता है। स्तोता इस सोम के लिये हवि-युक्त स्तोत्र करे ।८। हे काम्यवर्षक इन्द्र ! यह मधुर सोम तुम्हारे लिये सींचने वाला होता हुआ छन्ने से टपकता है। वह हजारों सैकड़ों धनों के स्वामी धनों को देने वाला अत्यन्त प्राचीन यज्ञमें विद्यमान हुआ ॥९॥ हे सोम ! तुम माधुर्यमय हो। वसतीवरी

जलों को आच्छादित करते हुए छन्ने में गिरते हो। फिर अत्यन्त हर्षप्रदायक होकर द्रोण कलश में स्थिर होते हो ॥१०॥

पंचम दशति

ऋषि—प्रतर्दनः, पराशरः शाक्त्यः इन्द्रप्रमितिर्वासिष्ठः, वसिष्ठो मैत्रावरुणः, कणश्रुद्वासिष्ठः, नोधा गोतमः, कण्वो धौरः, मन्युर्वासिष्ठः कुत्स आङ्गिरसः, कश्यपो मारीचः, प्रस्कण्वः काण्वः। देवता—पवमानः सोमः

छन्द—त्रिष्टुप्।

प्र सेनानीः शूरो अग्ने रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान् कृण्वन्निन्द्रहवांत्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥१

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन् वारं यत्पूतो अत्येष्यव्यम्।
पवमान पवसे धाम गोनां जनयंत्सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥२

प्र गायताभ्यर्चाम देवान्त्सोमं हिनोत महते धनाय।
स्वादुः पवतामति वारमव्यमा सीदतु कलशं देव इन्दुः ॥३

प्रहिन्वानो जनिता रोदस्यो रथो न वाजं सनिषन्नयासीत्।
इन्द्रं गच्छन्नायुधा संशिशानो विश्वा वसु हस्तयोरदधान

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग् ज्येष्ठस्य धर्मं द्युक्षोरनीके
आदीमायन् वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम् ॥५

साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः।

हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी ॥६

अधि यदस्मिन् वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूरे न विशः ।
अपो वृणानः पवते कवीयान् व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥७

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सहत्रि इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यराति वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य राजा ॥८

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात् ॥९

महत् तत् सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥१०

असर्जि वक्वा रथ्ये यथाजौ धिया मनोता प्रथमा मनीषा
दश स्वसारो अधि सानो अव्ये मृजन्ति वह्निं सदनेष्वच्छ ॥११

अपामिवेदूर्मयस्ततुराणाः प्र मनीषा ईरते सोममच्छ ।
नमस्यन्तीरुप च यन्ति सं चाच विशन्त्युशतीरुशन्तम् ॥१२॥ (५-७)

सेनाओं में अग्रगन्ता, शत्रुओं का बाधक सोम, गौ आदि की कामना करता हुआ रथों के आगे चलता है। इस सोम से युक्त सेना हर्षित होती है। यह सोम इन्द्र के आह्वानों को मङ्गलमय करता हुआ इन्द्र के आगमन के लिये दुग्ध आदि को ग्रहण करता है ॥१॥ हे सोम ! तुम्हारी मधुमयी धाराएँ हर्षयुक्त होती हैं। वसतीवरी जलों में जब तुम शुद्ध होते हो और छन्ने से निकलते हो तब गौ दुग्ध को देखकर क्षरित होते हो फिर प्रसिद्ध होकर सूर्य को अपने तेज से पूर्ण करते हो ॥२॥ हे स्तोताओं ! सोम की भले प्रकार स्तुति करो। हम देवताओं की पूजा करते हैं। सोम का अभिषव करो। वह सोम छन्ने से क्षरित होकर द्रोण कलष में स्थित हो ॥ ॥ अध्वर्युओं से प्रेरित, द्यावा पृथिवी का प्रकट करने वाला, अन्न देता हुआ तथा आयुधों को तीक्ष्ण करता हुआ सोम हमें देने के लिये हाथों में धन ग्रहण करता हुआ प्राप्त होता हैं।।४।। स्तोता की वाणी उसे संस्कृत करती है, तब यज्ञ में देवताओं को हर्ष देने वाले सबके पोषक, कलश-स्थित सोम की कामना करती हुई गौंएँ अपने दुग्ध को मिश्रित करती हैं ॥५॥ कर्म करती हुई अँगुलियाँ सोम का अभिषव करती हैं, तब वह हरित सोम सब दिशाओं में जाता हुआ अश्व के समान वेग से कलश में स्थित होता है ॥६॥ सूर्य में जिस प्रकार रश्मियाँ उदित होती हैं, वैसे ही सोम का संस्कार करने वाली दसों अँगुलियाँ उपस्थित होती हैं। तब वह जलों को ढकता हुआ सोम स्तोताओं की कामना करता हुआ गो-पालक के गोष्ठ में जाने के समान कलश में जाता है ॥६॥ क्षरणशील, गमनशील बलवान् इस इन्द्र के निमित्त प्रेरित होता है। यह यजमान को धन-लाभ कराने वाला राजा को इन्द्र की शक्ति को देने के लिये स्रवित होता है। वही राक्षसों को नष्ट

करता और शत्रुओं को रोकता हे ॥८॥ हे सोम ! धनयुक्त धारा के सहित सिंचित होओं। तुम वसतीवरी जलों में मिलकर कलश में जाओ। तब आदित्य और वायु के समान प्रेरक वेग को धारण कर इन्द्र को प्राप्त होओ ॥९॥ महान् सोम ने बहुत से कर्म किये हैं। जलों के गर्भ रूप इस सोम ने देवताओं का यजन किया और इन्द्र में सोमपान से उत्पन्न बल को धारण किया। इसो सोम ने सूर्य में तेज की स्थापना की ॥१०॥ जिस सोम में देवताओ के मन रमे हैं वह शब्द करने वाला सोम यज्ञ में स्तुति के स थ अश्व के समान योजित किया गया। दस अँगुलियाँ सोम को उच्च स्थान रूप छन्ने में प्रेरित करती हैं ॥११॥ जल की शीघ्रकर्मा तरङ्गों के समान कर्म में शीघ्रता करने वाले ऋत्विज स्तुतियों को सोम के प्रति प्रेरित करते हैं। नमस्कार युक्त स्तुतियाँ उस सोम को देवताओं के निकट पहुँचती हुई प्रविष्ट होती हैं ॥१२॥

—*—

॥ द्वितीयोऽर्धः ॥

प्रथम दशति

ऋषि—आधीगुः, श्यावाश्विः, नहुषोः मानवः, ययातिर्नाहुषः मनुः साँवरणः, ऋजिवाष्वरीष रेभसूनू काश्यपौ, प्रजापतिर्विच्यो वा । देवता-पवमानः सोमः ।

छन्द—अनुष्टुप् वृहती ।

पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायौ दीर्घजिह्वयम् ॥१
अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति ।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥२

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः ।
पवित्रवन्तो अक्षरन् देवान् गच्छन्तु वो मदाः ॥३
सोमाः पवन्त इंदवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥४
अभो नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इंदो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ॥५
अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥६
आ हर्यताय धृष्णवे धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम् ।
शुक्रा वि यन्त्यसुराय निर्णिजे विपामग्रे महीयुवः ॥७
परि त्यं हर्यतं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान् विश्वाँ इत् परि मदेन सह गच्छति ॥८
प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ॥९॥ (५–८)

हे मित्रों ! सोम के अभिषुत रस की रक्षा के लिए लीम्ब्र जीभ वाले श्वान को दूर करो ॥१॥ यह सेवनीय सोम छन्ने में शुद्ध होकर कलश में जाता हुआ सब प्राणियों का पोषक होता है और अपने तेज से द्यावा पृथिवी को प्रकाशित करता है ॥२॥ मधुमय, हर्ष प्रदायक, निष्पन्न सोम छन्ने में होता हुआ पात्र में टपकता हैं। हे सोम ! तुम्हारे हर्षकारी रस देवताओं के पास पहुँचे ॥३॥ श्रेष्ठ मार्ग के ज्ञाता देवताओं के मित्र, पाप रहित सोम तेजस्वी हुए आगमन करते हैं ॥४॥ हे सोम ! सैकड़ों द्वारा

कामना करने योग्य सहस्रों का भरण करने वाले, अन्न यश वाले, तेजस्वी और बलदाता अपत्य हमें प्राप्त कराओ ॥५॥ गौएँ जैसे बछड़ो को चाटती हैं, वैसे ही वसतीवरी जल इन्द्र के प्रिय सोम से मिलते हैं ॥६॥ सबके द्वारा कामना किये गये, शत्रु-तिरस्कारक सोम के लिए प्रष्यन्या के समान फैले हुए छन्ने को आध्वर्यु गण आच्छादित करते हैं ॥७॥ सबके स्पृहणीय हरित सोम को छन्ने में छानते हैं। वह सोम इन्द्रादि देवताओं को अपनी हर्षकारी धाराओं सहित प्राप्त होता है ॥८॥ सोम के शब्द को कर्म में बाधा देने वाला न सुनें। हे स्तोताओं ! अपने पूर्व-काल में जैसे दक्षिणारहित मुख को भृगुओं ने दूर किया था, वैसे ही श्वान को दूर हटाओ ॥९॥

द्वितीय दशति

ऋषि—कविर्भार्गवः, सिकतानिवावरी रेणुर्वैश्वामित्रः वेनो-भार्गवः, वसुर्भारद्वाजः, वत्सप्रीः, गृत्समदः शौनकः पवित्र आङ्गिरस- । देवता—पवमानः; सोमः । छन्द—जगती ।

अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो अधियेषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वंचमरुहद् विचक्षणः ॥१

अचोदसो नो धन्वन्त्विन्दवः प्र स्वनासो बृहद् देवेषु हरयः ।
वि चिदश्नाना इषयो अरातयोर्यो
नः सन्तु सनिषंतु नो धियः ॥२

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः ।

अभ्यतस्य सदुघा घृतश्चुतो वाश्रा ।
अर्षन्ति च पयसा धेनवः ।।३
प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्यः निष्कृतं सखा
सख्युर्न प्र मिनाति सगिरम् ।
मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः
कलशे शतयामना पथा ।।४
धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो
देवानामनुमाद्यो नृभिः ।
हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा
पाजांसि कृणुषे नदीष्वा ।।५
वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो अह्नां
प्रतीरीतोषसां दिवः ।
प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य
हार्द्याविशन्मनीषिभिः ।।६
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे व्योमनि
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत
।।७
इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रवापामीवा भवतु रक्षसा सह
मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनो
द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः ।।८
अवासि सोमो अरुषो वृषा हरी
राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।

पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं
घृतवन्तमासदत् ॥९
प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव
आ न धेनव:
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभि:
परिस्रुतमुस्त्रिया निर्णिजं धिरे ॥१०
अंजते व्यंजते समंजते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयंतमुक्षणं
हिरण्यपावा: पशुमप्सु गृभ्णते ॥११
पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि
विश्वत: ।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते
शृतास इद् वहन्त: सं तदाशत ॥१२ (५-९)

भक्षण योग्य हितकारी सोम संसार को तृप्त करने वाले जलों को प्राप्त होता है। फिर यह वृद्धि को प्राप्त हुआ सोम, सूर्य के विहरण करने वाले रथ पर विश्वद्रष्टा होकर आरूढ़ होता है ॥१॥ अप्रेरित, पापनाशक, सिद्ध सोम देवताओं वाले यज्ञ में आवें। अदानशील शत्रु अन्न की इच्छा करके भी भोजन प्राप्त न करें। हमारे स्तोत्र देवताओं को प्राप्त हों ॥२॥ इन्द्र के वज्र के समान यह बीजवपनकर्ता सोम द्रोण कलश में जाता हुआ शब्द करता है। इसकी फल-वृष्टि करने वालीं जलमयी धाराएँ दुधारु गौंओ के समान शब्द करती हुई, प्राप्त होती हैं ॥३॥ यह सोम इन्द्र के उदर में जाकर उन्हें सुखी करता है।

वह वसतीवरी जलों से मिलकर छन्ने से छनत्ता हुआ द्रोण कलश में जाता है ॥४॥ सबका धारक, शोधनीय, बलदाता, हरे वर्ण का स्तुत्य सोम छन्ने में आता-आता सप्त प्राणियों द्वारा सिद्ध किया जाता है। वह बिना यत्न ही अश्व के समान वसतीवरी जलों में अपने वेग को करता है ॥५॥ काम्यवर्षक द्रष्टा, दिन, उषा और आदित्य की वृद्धि करने वाला संस्कारित सोम स्तुतियों द्वारा प्रेरित होकर हृदय में प्रवेश करने की इच्छा से कलशों में जाता हुआ शब्द करता है ॥६॥ यज्ञ में स्थित सोम के लिए इक्कीस गौएँ दुही जाकर दुग्ध-पात्रों को भरती हैं। तब यह सोम यज्ञों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता हुआ वसतीवरी जलों के शोधन हेतु मङ्गलरूप हो जाता है ॥७॥ हे सोम ! तुम प्रसिद्ध होकर इन्द्र के लिए रस सींचो। रोग और राक्षस को दूर करो वे तुम्हारे रसपान का आनन्द प्राप्त न करें। इस यज्ञ में तुम्हारे रस हमारे निमित्त धन से सम्पन्न हों ॥८॥ काम्यवर्षक हरित सोम सिद्ध होकर राजा के समान तेजस्वी होता है वह रस निकलने के समय शब्द करता हुआ पवित्र होता है यथा छन्ने से टपकता है। फिर श्येन के समान अपने स्थान को प्राप्त होता है ॥९॥ मधुमय सोम देवताओं के लिए पात्र में जाता है। गौएँ जैसे अपने बछड़ों देखकर दूध टपकाती हैं, वैसे ही यज्ञ में रँभाती हुई गौएँ सब ओर से टपकने वाले सोम को इन्द्र के लिए धारण करती हैं ॥१०॥ ऋत्विज् सोम को दुग्ध से मिश्रित करते हैं। देवगण इस भले प्रकार मिलाये गये सोम का आस्वादन करते हैं। वह सोम गौ धृत से मिलाया जाता है। वही सोम जल के आधार-भूत अन्तरिक्ष में उठाया जाकर सुवर्ण से पवित्र किया जाता हुआ ग्रहणीय होता है ॥११॥ हे ब्रह्मणस्पते ! हे सोम ! तुम्हारा अंग सर्वत्र फैला है। तुम पान करने

वालों के देह में व्याप्त होते हो व्रत आदि से जिसका देह तेजस्वी नहीं हुआ है वह सोम-पान में समर्थ नहीं होता। परिपक्व देह वाला तेजस्वी ही इसमें समर्थ है ॥१२॥

तृतीय दशति

ऋषि—अग्निश्चाक्षुषः चक्षुर्मानवः, पर्वतनारदौ, त्रिय आप्त्यः, मनुराप्सवः, द्वित आप्त्यः। देवता—पवमानः, सोमः, छन्द—उष्णिक्।

इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः।
श्रुष्टे जातास इंदवः स्वर्विदः ॥१

प्र धन्वा सोम जागृविरिन्द्रायेंदो परि स्रव।
द्युमंतं शुष्ममा भर स्वर्विदम् ॥२

सखाय आ नि षीदत पुनानाय प्र गायत।
शिशुं न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥३

तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्तिभिः ॥४

प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम्।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥५

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा।
आ कलशं मधुमत्सोम नः सदः ॥६

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ॥७

प्र पुनानाय वेधसे सोमाय वच उच्यते।
भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते ॥८

गोमन्न इंदो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धनिव ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारत ॥९
अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत ।
गोभिष्टे वर्णमभि वायसामसि ॥१०
पवते हर्यतो परिरति ह्वरांसि रह्या ।
अभ्यर्ष स्तोतृभ्यो वीरवद्यशः ॥११
परि कोशं मधुश्चुतं सोमः पुनानो अर्षति ।
अभि वाणीर्ऋषीणां सप्ता नूषत ॥१२॥ (५-१०)

शीघ्र सुसंस्कृत पात्रों में स्रवित होते हुये सर्वज्ञ हरित वर्ण के यह सोम काम्यवर्षक इन्द्र को प्राप्त हों ॥ १ ॥ हे सोम ! इस पात्र में आओं । इन्द्र के निमित्त सब ओर से सिंचित होओ। शत्रुओं का शोषण करने वाले स्वर्ग प्रापक बल को हमें प्रदान करो ॥२॥ हे सखाओ ! स्तुति के लिए तत्पर होओ । शोधे जाते इस सोम के प्रति साम गाओ । पिता जैसे अपने बालक को अलंकारों से सुशोभित करता है, वैंसे ही सोम की समृद्धि के निमित्त विभूषित करो ॥३॥ हे मित्रों ! तुम देवताओं के हर्ष के लिए सोम कीं स्तुति करो । हवियों को स्तुतियों से सुस्वादु बनाओ ॥४॥ यज्ञ को सम्पन्न करने वाला पूज्य जलों वाला सोम यज्ञ को व्यक्त करने वाले रस को प्रेरित करता हुआ, सब हवियो को व्याप्त करता हुआ, स्वर्ग और पृथिवी पर स्थित होता है ॥५॥ हे सोम ! देवताओं के सेवन के लिए बल के साथ पात्र मे पहुँचो और रसयुक्त होकर द्रोण कलश में स्थित होओं ।६। पवित्र स्तोत के आगे बारम्बार शव्द करने वाला सोम अपनी धारा से छन्ने में जाता है ।७। छन्ने में छनते हुये स्तुति करो। इन स्तुतियों से

प्रसन्न होने वाले के किये अधिकता से स्तुति करो ।८। हे सोम ! तुम संस्कृत होकर गौओं और अश्वों सहित धन प्रदार करो। फिर मैं तुम्हारे पवित्र रस को गोरस में मिश्रित होने पर अधिक प्राप्त करूँ ।।९।। हे सोम ! तुम धन देने वाले हो। हमारी वाणियाँ धन-लाभ के निमित्त तुम्हारी स्तुति करती हैं तथा हम तुम्हारे रस को गौ-दुग्ध आदि से आच्छादित करते हैं ।।१०। हरे वर्ण का सोम छन्ने से निकलता है। हे सोम ! तुम स्तोताओं को अपत्ययुक्त यश प्रदान करो ।। ११ ।। वह संस्कृत होता हुआ सोम अपने मधुर रस को कलश में पहुँचाता है। इस सोम का, ऋषियों की सत्य वाणियाँ स्तव करती हैं ।।१२।।

चतुर्थ दशति

(ऋषि—गौरवीतिः शाक्त्यः, ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः, ऋजिश्वा भारद्वाज, कृतयशा आङ्गिरसः, ऋणञ्चयः, शक्तिर्वासिष्ठः, उरुरांगिरसः, देवता—पवमानः, सोमः। छन्द-ककुप्ः, यवमध्या, गायत्री।)

पस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमोमदः ।

महि द्युक्षतमो मदः ।।1

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम् ।

वि कोशं मध्यमं युव ।।२

आ सोता परि षिञ्चाताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम्

वनप्रक्षमुदप्रुतम् ।।३

एतमु त्यं मदच्युतं सहस्रधारं वृषभं दिवोदुहम् ।

विश्वा वसूनि बिभ्रतम् ।।४

स सुन्वे यो वसूनां रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥५
त्वं ह्यांग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृत्वाय घोषयत् ॥६
एष स्य धारया सुतोऽव्या वारेभिः पवते मदिन्तमः ।
क्रीडन्नूर्मिरपामिव ॥७
य उस्रिया अपि या अन्तरश्मनि निर्गा अकृन्तदोजसा ।
अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं
वर्मीव धृष्णवा रुज ॐ वर्मीव धृष्णवा रुज ।८।(५-११)

हे सोम ! अत्यन्त मधुर कर्म वाले, पूज्य और हर्षप्रद तुम इन्द्र के हर्ष करने वाले होओ । १ । सोम ! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हमें बहुतसा अन्न प्रदान करो और अन्तरिक्ष स्थित मेघ को वृष्टि के लिए खोलो ।२। हे ऋत्विजो ! अश्व के समान वेगवान, स्तुत्य, जलों के प्रेरक,तेजप्रेरक,पात्रोंमें फ़ैले हुए सोमका अभिषव करते हुए वसतोवरी जलों से सिंचित करो । ३ । देवताओं की कामना वाले ऋत्विजों ने शक्तिप्रदायक सहस्र धार वाले, धन धारक सोम का दोहन किया ।४। जो धनों का, गौओं का, भूमियों का और मनुष्यों का लाने वाला है वह सोम ऋत्विजों द्वारा अभिषुत हुआ है । ५ । हे सोम । तुम अत्यन्त दीप्तियुक्त देवताओं को जानते हो । उनके अमृतत्व के लिए शब्द उत्पन्न करते हो।६।अत्यन्त आनन्ददायक इधर-उधर जाता हुआ अभिषुत सोम छन्नेसे धाररूप में कलश में टपकता है । ७ । यह सोम अन्तरिक्ष में मेघों के भीतर असुरों के रोके हुए प्रवाहमान जलोंको अपने बल से छिन्न-भिन्न करता है । असुरों द्वारा चुरायी

हुई गौओं और अश्वों को यह सोम सब ओर से व्याप्त करता है ! हे सोम ! इन राक्षसों का नाश करो ॥८॥

—:०:—

। द्वितीयोऽर्धः ।

प्रथम दशति

(ऋषि—भरद्वाजः, वसिष्ठः, वामदेवः, शुनःशेपः, गृत्समदः, अमहीयुः, आत्मा । देवता—इन्द्रः, वरुणः, पवमानः, सोमः, विश्वेदेवः अन्नम् । छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्ः गायत्री, जगती ।

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पुपुरि श्रवः ।
यद्दिधृक्षेम वज्रहस्त रोदसी उभे सुशिप्र पप्राः ॥१

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधिक्षमा विश्वरूपं यदस्य ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतं चिदर्वाक् ॥२

यस्येदमा रजोयुजस्तुजे जने वनं स्वः ।
इन्द्रस्य रन्त्यं बृहत् ॥३

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथादित्य व्रते वयं तवानागसो अदितये स्याम ॥४

त्वया वयं पवमानेन सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः
पृथिवी उत द्यौः ॥५
इमं वृषणं कृणुतैकमिन्माम् ॥६
स न इंद्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित् परिस्रव ॥७
एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥८
अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्य पूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ।
यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ।९

(६-१)

हे वज्रहस्त, श्रेष्ठ ठोड़ी वाले इन्द्र ! जिस अन्न की हम कामना करते हैं, जिसे द्यावापृथिवी पूर्ण करतीं है, उस अत्यन्त बलप्रद प्रशंसनीय और तृप्तिकारक अन्न को हमें प्रदान करो॥१॥ जो इन्द्र सब प्राणियों के ईश्वर और सब प्रकार पार्थिव धनों के स्वामी हैं, वह दानशील यजमान को सब प्रकार के धन को प्रदान करते हैं । वही इन्द्र हमारी ओर सब प्रकार के धनों को प्रेरित करें ॥२॥जिन तेजस्वी इन्द्र की हवि स्तोत्र वाली है, वह इन्द्र दानशील यजमान के निमित्त स्वर्ग में कामना के योग्य हैं, अतः इन्द्र का दान अत्यन्त श्रेष्ठ और अपरिमित है ॥ ३ ॥ हे वरुण ! शिर में बँधे पाश को ऊपर की ओर, पांवों में बँधे पाश को नीचे की ओर और मध्यम पाश को अलग करके ढीला करो। फिर हम तुम्हारे कर्मके कारण दुःख-रहित और अपराध-

रहित हों ।।४।। सोम ! छन्ने से छनते हुए तुम रणक्षेत्र में भी सहायक हो । मित्र वरण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और स्वर्ग हमें धन आदि से प्रवृद्ध करें ।।५।। हे देवगण ! इस एकमात्र विशिष्ट गुँण वाले सोम को अभीष्टवर्धक करो और मुझे फलवर्षक क्रिया वाला बनाओ।।६।।हे सोम ! तुम हमें धन प्राप्त कराने वाले हो। हमारे पूज्य इन्द्र, वरुण और मरुद्गण के लिये धार सहित क्षरित होओ ।।७।। इस सोम के द्वारा सब अन्नो को पाकर हम उचित प्रकार बाँटते हैं ।। ८ ।। मैं अन्न देवता, अन्य देवताओं से तथा सत्य रूप ब्रह्म से भी पूर्व जन्मा हूँ। जो मुझ अन्न को अतिथियों को देता है, वही सब प्राथियों की रक्षा करता है। जो लोभी दसरों को नहीं खिलाता, मैं अन्नदेवता उस लोभी का स्वयं भक्षण कर लेता हूँ ।।९।।

द्वितीय दशति

ऋषि:—श्रुतकक्ष:, पवित्र:, मधुच्छन्दा:, वैश्वामित्र:, प्रथ,, गृत्समद:, नृमेधपुरुमेधौ । देवता— इन्द्र,, पवमान:, विश्वेदेवा, वायु: । छन्द—गायत्री, जगती, त्रिष्टुम्, अनुष्टुम् ।)

त्वमेतदधारय: कृष्णासु रोहिणीषु च ।
परुष्णीषु रुशत् पय: ।।१

अरूरुचदुषस: पृश्निरग्रिय ऊक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयु: ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षस: पितरो गर्भमादधु: ।।२

इन्द्र इद्धर्यो: सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्यय:।।३

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥४
प्रथश्च यस्य सप्रथश्चनामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात् सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा
वसिष्ठः ॥५
नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।
गंतासि सुन्वतो गृहम् ॥६
यज्जासथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत् पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ।७। (१—२)

हे इन्द्र ! काले, लाल तथा विचित्र रंग वाली गौओं मैं चमकते हुए सफेद दूध को तुमने स्थित किया है। यह तुम्हारा सामर्थ्य ही है। १। उषा और आदित्य से सम्बन्धित सोम स्वयं प्रकाशित होता है और वृष्टिकारक मेघरूप से बल और अन्नदान की इच्छा से शब्द करता है। देवताओं ने अपनी श्रेष्ठ बुद्धि से इसे उत्पन्न किया है। २। इन्द्र ही रथ में योजित हर्यश्वों को एकत्र करने वाले, वज्रधारी और सुवर्णाभूषणों मे सुशोभित रहते हैं। ३। हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बलवान् होने के कारण किसी का प्रभुत्व नहीं मानते। हमको अपनों श्रेष्ठ रक्षाओं से सहस्रों धन-लाभ वाले संग्रामों में रहित करो। ४। वसिष्ठ-पुत्र प्रथ और भरद्वाज-पुत्र सप्रध है। मुझ वसिष्ठ ने अनुष्टुप् छन्द हवि की और रथन्तर सोम को धाता देवता से और तेजस्वी विष्णु से प्राप्त किया। ५। हे वायो ! तुम अपने वाहनों पर चढ़कर आगमन करो। यह सोम तुम्हारे लिए ग्रहण

किया है क्योंकि तुत सोमाभिषवकर्त्ता यजमान के पास जाते हो । ६ । अपूर्व और धनयुक्त इन्द्र ! जब तुम वृत्र-हनन के लिये प्रकट हुए, तब तुमने पृथिवी को दृढ़ किया ओर स्वर्ग को भी स्थिर किया ॥७॥

तृतीय दशति

(ऋषि—वामदेवः, गोतमः, मधुच्छन्दः, गृत्समदः, भरद्वाजोः, बार्हस्पत्यः, ऋजिश्वाः, हिरण्यस्तूपः. विश्वामित्रः । देवता—प्रजापतिः, पवमानः, सोमः, अग्निः, रात्रिः, अपान्नपःत्ः, विश्वेदेवाः, लिङ्गोक्ताः, इन्द्रः, आत्मा वैश्वानरः छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, गायत्री, जगती, पंक्तिः ।)

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत्पयः ।
परमेष्ठी प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥१

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः
आप्यामानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि
धिष्व ॥२

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्व गाः
त्वमातनोरुर्वान्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥३

अग्निमोडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥४

ते मन्वत प्रथमं नाम गोनां त्रिः सप्त परमं नाम जानन् ।
ता जानतीरभ्यनूषत क्षा आविर्भुवन्नरुणीर्यशसा गावः ।।५
समन्या यन्त्युपयन्त्यान्याः समानमूर्वं नद्यस्पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपान्नपातमुप यन्त्यापः ।।६
आ प्रागाद्भद्रा युवतिरह्नः केतून्त्समीर्त्सति ।
अभूद्भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ।।७
प्रक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू महः प्र नो वचो विदथा जात-
वेदसे वैश्वानराय मतिर्नव्यसे शुचिः सोम इव पवते
चारुरग्नये ।।८
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञमुभे रोदसी अपां नपाच्च
मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा ।
मदेम ।।९
यशो मा द्यावापृथिवी यशो मेन्द्रबृहस्पती ।
यशो भगस्य विन्दतु यशो मा प्रति मुच्यताम् ।
यशसास्या संसदोऽहं प्रवदिता स्याम् ।।१०
इंद्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम् ।।११
अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन् ।

त्रिधातुरर्को रजसो विमानोऽस्त्रं ज्योतिर्हविरस्मि

सर्वम् ॥१२

पात्यग्निर्विपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति
देवानामुपमादमृष्वः ॥१३॥ (६-३)

परमेष्ठी स्वर्ग के तेज के समान मेरे शरीर में ब्रह्म तेज की वृद्धि करें और यज्ञ सम्बन्धी हवि को बढ़ावें ॥ १ ॥ हे शत्रु-नाशक सोम ! तुम्हें दुग्ध और हविरन्न प्राप्त हों। तुम अपने अमरत्व के लिये बढ़ते हुए स्वर्ग में हमारे सेवनीय अन्नों को धारण करते हो ॥२॥ हे सोम ! तुमने पृथिवी पर स्थित सब औषधियाँ उत्पन्न कीं। तुमने वृष्टिजल और गवादि पशुओं को उत्पन्न किया। तुमने अन्तरिक्ष को विस्तृत कर अपनी ज्योति से अन्धकार को भी नष्ट कर डाला है ॥३॥ यज्ञ के पुरोहित-संज्ञक होता और रत्नों के कारण करने वाले अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ ॥४॥ हे अग्ने ! तुम्हारे स्तोता आंगिरसों ने स्तुति-साधक शब्दों को वाणी में जाना और इक्कीस स्तोता रूप छन्द्रों को भी जाना उन स्तुतियों को जानती हुईं ॥ ५ ॥ वृष्टिजल पृथिवी में गिरते हैं और भूमि के जल में मिल जाते हैं त। वह जल नदी रूप होकर समुद्र में स्थित बड़वानल को तृप्त करते हैं। जलों के पौत्र अनल के निकट सभी शुद्ध जल प्राप्त होते हैं ॥६॥ कल्याण-मयी रात्रि सम्मुख आ रही है वह चन्द्रमा की रश्मियों के साथ भले प्रकार सम्बन्ध स्थापित करती हुए विश्व को शयन कराने वाली होती है ॥७॥ हे वैश्वानर ! तुम्हारा तेज अभीष्टवर्धक,

हविरन्न वाला और दीप्तिमान है। मैं उस तज की स्तुति करता हूँ। उन सर्वज्ञाता अग्नि के लिये स्तोताओं को पवित्र करने वाली मङ्गलमयी स्तुति सोम के समान निकलती है।८। देवता मेरे यज्ञ को स्वीकार करें। अपान्नपात अग्नि औप द्यावा-पृथिवी मेरे स्तोत्र पर ध्यान दें। मैं देवताओ मैं त्याज्य वचनों को नहीं कहता हूँ. श्रेष्ट स्तोत्र का ही उच्चारण करता हूँ। अतः हम तुम्हारे प्रदत्त कल्याण में ही आनन्द पावें।६। हे देव ! मुझ स्तोता को द्यावा-पृथिवी का यश प्राप्त हो। इन्द्र बृहस्पति और आदित्य सम्वधी यश को भी मैं प्राप्त करूँ। मैं इस यश से हीन न होउँ। में सदा श्रेष्ठतापुर्वक बोलने वाला बनूँ।१०। मैं इन्द्र के महान् पराक्रमों को कहता हूँ। उन्होंने मेघ को विदीर्ण कर जलों को गिराया और पर्वतों से बहने वाली नदियों के तटों को बनाया।११। मैं अग्नि जन्म से ही सर्वज्ञाता हूँ। धृत मेरा चक्षु है और अमृत रूप से मेरे मुख में है। मैं विश्व का रचियता प्राण हूँ। मैं तीन रूप से स्थित हूँ और अन्तरिक्ष का स्वामी हूँ। आदित्य भी मैं हूँ। अग्नि मैं हूँ और हव्यवाहक भी मैं हूँ। जन्म लेते ही ज्ञानी हूँ।१२। अग्नि पृथिवी के मुख-स्थान की रक्षा करते हैं। सूर्य के मार्ग अन्तरिक्ष की भी रक्षा करते हैं। मरुद्-गण और यज्ञ की भी अग्नि रक्षा करते ॥१३॥

चतुर्थ दशति

ऋषि—वादेमवाः, नारायणः। देवता—अग्निः, ऋचुः, पुरुषः, द्यावापृथिवीः, इन्द्र, गौः। छन्द—पंक्तिः, अनुष्टुपः, त्रिष्टुप्।

भ्राजन्त्यग्ने समिधान दीदिवो जिह्वा चरत्यन्तरासनि।
स त्वं नो अग्ने पयसा वसुविद्रयिं वर्चो दृशेऽदाः ॥१

वसन्त इन्नु रन्त्यो ग्रीष्म इन्नु रन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नु रन्त्यः ॥२

सहस्रशीर्षा: पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥३

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
तथा विष्वङ् व्यक्रामदशनानशने अभि ॥४

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
पादोऽस्य सर्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥५

तावानस्य महिमा ततो ज्यायाँश्च पुरुषः ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥६

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥७

मन्थे वां द्यावापृथिवी सुभोजसौ ये अप्रथेथा-
ममितमभि योजनम् ।
द्यावापृथिवी भवतं स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥८

हरी त इन्द्र श्मश्रूण्युतो ते हरितौ हरी ।
तं त्वा स्तुवन्ति कवयः पुरुषासो वनर्गवः ॥९

यद्वर्चो हिरण्यस्य यद्वा वर्चो गवामुत ।
सत्यस्य ब्रह्मणो वर्चस्तेन मा सं सृजामसि ॥१०

सहस्तन्न इन्द्र दद्‌धयोज ईशे ह्यस्य महतो विरप्शिन् ।
क्रतुं न नृम्णं स्थविरं च वाजं वृत्रेषु
शत्रून्त्सहना कृधी नः ॥११

सहर्षभाः सहवत्सा उदेत विश्वा रूपाणि बिभ्रति-
द्व्यूध्नीः ।
उरुः पृथुरयं वो अस्तु लोक इमा आपः
सुप्रपाणा इह स्त ॥१२॥ (६–४)

हे अग्ने ! तुम्हारी जिह्वा रूप ज्वालाएं हवि-भक्षण करती हैं । हे धन-प्रापक अग्ने ! तुम हमें अन्न सहित उपभोग्य धन और तेज प्राप्त कराओ ॥१॥ वसन्त ऋतु, ग्रीष्म ऋतु, वर्षा शरद, हेमन्त और शिशिर सभी ऋतुएँ रमणीय होती हैं । २ । विराट् पुरुष सहस्रों शिर, सहस्रों नेत्र और सहस्रो चरणों वाले हैं । वह पृथ्वी को सब ओर से लपेट कर दशांगुल रूप हृदय में स्थित हैं । ३ । वही त्रिपाद पुरुष संसार के गुण-दोषों से पृथक् रहता हुआ अपने एक बाद को बारम्बार प्रकट करता है । फिर वह अनेक रूप से व्याप्त होकर संसार में रम जाता है । ४ । यह विश्व पुरुष ही है । उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होने वाला जगत् पुरुष ही है । सब प्राणी इस पुरुष के चतुर्थांश हैं । इसके तीन पाद अविनाशी और प्रकाश रूप में स्थित हैं । ५ । इस पुरुष का सामर्थ्य ही संसार का आधार है । यह स्वयं उस महिमा से भी महान् है जिससे यह सब देवत्व का ईश्वर हुआ है । क्योंकि वह प्राणियों के कर्म-फल-भोग के निमित्त कारणावस्था का अति-क्रमण कर प्रत्यक्ष विश्व के रूप में उत्पन्न हुआ है । ६ । उस आदि

पुरुष से विराट् की उत्पत्ति हुई । उससे देहाभिमानी देवतारूप जीव उत्पन्न हुआ । वही विराट् पुरुष देहाधारी रूप से प्रकट हुआ । फिर पृथ्वी और प्राणियों के देह को सृष्टि हुई ।७। हे द्यावापृथिवी ! तुम पालन करने वाले को मैं जानता हूँ । तुम सब ओर से अपरिमित धन आदि की वृद्धि करो । हमारे लिए कल्याण रूप होकर हमें पापों से मुक्त करो।८। हे इन्द्र ! तुम्हारी मूँछे हरे वर्ण की हैं । तुम्हारे अश्वों का भी हरा रङ्ग है। मेधावीजन तुम्हारी भले प्रकार स्तु त करते हैं।९।जो तेज सुवर्ण में है, जो तेज गौओं में सत्यस्वरूप ब्रह्म में है, हम उसी तेज से सम्पन्न होने की कामना करते हैं ।१०। हे इन्द्र ! हमें उन शत्रुओं का नाश करने वाला ओज प्रदान करो । क्योंकि तुम महान् बल के स्वामी हो । हमारे लिये सत्य के समान धन और बल देते हुए हमारे शत्रुओं को हमें हानि पहुँचाने वाले कार्यों में असफल करो ।११। हे गौओं ! तुम सब रूपवाली होकर वृषभों और बछड़ों सहित प्रातः-सांयकाल में वृद्धि को प्राप्त होओ । यह लोक तुम्हारे वास योग्य हो और जल तुम्हारे पीने योग्य हो ।१२।

पंचम दशति

ऋषि—शर्त वैखानसाः, विभ्राट्, कुत्सः, सार्पराज्ञीः,

प्रस्कण्वः, काण्वः । देवता—अग्निः, पवमानः, सूर्यः ।

छन्द—गायत्री, जगती, त्रिष्टुप् ।)

अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥१

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति
बहुधा वि राजति ॥२

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च ॥३

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥४

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥५

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक् पतंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥६

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।
सूराय विश्वचक्षसे ॥७

अदृश्रन्नस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥८

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।
विश्वमाभासि रोचनम् ॥९

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे ॥१०

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥११

उद् द्यामेषि रजः पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः
पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥१२

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥१३

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥१४॥ (५-६)

हे अग्ने ! तुम हमारे अन्नों की वृद्धि करते हो । अतः हमारे लिये अन्न-बल प्रेरित करो । श्वास के समान दुष्ट स्वभाव वाले राक्षसों को हमसे दूर करो । १ । अत्यन्त तेजस्वी सूर्य ने यजमान में बाधा रहित अन्न की स्थापना की, वह सूर्य सोमयुक्त मधुपान करें । सूर्य ही वायु द्वारा प्रेरित होकर अपनी रश्मियों से संसार का स्पर्श करते हैं और वर्षा आदि से प्रजाओं को तुष्ट करते हैं । २ । देवताओं के तेज, मित्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं के चक्षुरूप सूर्य उययाचल में पहुँचे । उहोंने द्यावा-

पृथिवी और अन्तरिक्ष को पूर्ण किया। वही स्थावर-जंगम के जीवात्मा हैं ॥३॥ गमनशील यह सूर्य उदयाचल का अतिक्रण कर पूर्व में सब प्राणियों की माता पृथिवी को, पिता स्वर्ग को और आन्तरिक्ष को प्राप्त होता है ।३। इन सूर्य की दीप्ति वायु को ऊपर ले जाकर अधोमुख करती हुई शरीर में प्राणरूप से रहती है। ऐसे तेज वाला सूर्य अन्तरिक्ष को प्रकाशित करता है ।५। दिन की तीस घड़ी तक सूर्य रश्मियों से दीप्त होता है, तब देववाणी सूर्य के निमित्त सब मुखों में धारण की जाती है ।६। सबके प्रकाशक सूर्यके उदित होने पर तारागण रात्रियोंके सहित चोरों के समान छिप जाते हैं। ७। अग्नियों के समान दीप्ति वाले सूर्य को दिखने वाली रश्मियाँ सब प्राणियों को क्रमपूर्वक देखती हैं। ८। हे सूर्य ! तुम उपासकों को तारते हुये सब प्राणियों को देखते हो। तुम चन्द्रमा आदि ज्योतियों को प्रकाश देते हो अतः हे सूर्य ! तुम संसार को प्रकाशित करते हुए सुशोभित होते हो। ९। हे सूर्य ! तुम देवताओं के अभिमुख होकर उदित होते हो तथा दर्शन के लिये हे पवित्र करने वाले वरुणात्मक सूर्य ! तुम सब प्राणियों को पुष्ट करते हुये जिस प्रकारसे इस लोक को प्रकाशित करते हो, हम तुम्हारे उस प्रकाश की स्तुति करते हैं ।१०-११। हे सूर्य ! तुम दिनों को, रात्रियों से नापते हुये और देहाधारियों को प्रकाशित करते हुये स्वर्ग और अन्तरिक्ष को भी व्याप्त करते हो। १२। सूर्य ने शुद्ध करने वाली रथ को

गिरने न देने वाली सप्त रश्मियो को अपने रथ में योजित किया उन रश्मियों द्वारा ही यह यज्ञ को प्राप्त होते हैं ॥१३॥ हे सूर्य यह सप्त रश्मियाँ तुम्हें वहन करती हैं। तुम रथारुढ़ का तेज ही केश के समान है ॥१४॥

॥ इति षष्ठः प्रपाठकः षष्ठोऽध्यायश्च समाप्तौ ॥

॥ सामवेद-संहितायां पूर्वार्चिकः समाप्तः ॥

—+—

अथ महानाम्न्यार्चिकः

विदा मघवन् विदा गातुमनुशंसिषो दिशः ।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवासो ॥१

आभिष्ट्वमभिष्टिभिः स्वा ३ऽन्नांशुः ।
प्रचेतन प्रचेतयेन्द्र द्युम्नाय न इषे ॥२

एवा हि शक्रो राये वाजाय वज्रिवः ।
शविष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे मँहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जस आ याहि
पिब मत्स्व ॥६

विदा राये सुवीर्यं भुवो वाजानां पतिर्वशाँ अनु ।
मंहिष्ठ वज्रिन्नृञ्जसे यः शविष्ठः शूराणाम् ॥४

यो मंहिष्ठो मघोनाम् जुर्न्न शोचिः ।
चिकित्वो अभि नो नयेन्द्रो विदे तमु स्तुहि ॥५

ईशे हि शक्रस् ममूतये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः क्रतुश्छन्द ऋतं बृहत् ॥६

इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे जेतारमपराजितम् ।
स नः स्वर्षदति द्विषः स नः स्वर्षदति द्विषः ॥७

पूर्वस्य यत्ते अद्रिवोंऽशुर्मदाय ।

सुम्न आ धेहि नो वसो पूर्तिः शविष्ट शस्यते ।

वशी हि शक्रो नूनं तन्नव्यं संन्यसे ।।८

प्रभो जनस्य वृत्रहन्त्समर्येषु ब्रबाव है ।

शूरो यो गोषु गच्छति सखा सुशेवो अद्वयुः ।।९

एवाह्येऽऽऽव । एवा ह्यग्ने । एवाहीन्द्र ।

एवा हि पूषन् । एवा हि देवाः ॐ एवाहि देवाः ।

हे इन्द्र! तुम सब कुछ जानते हो । अतः मार्ग-निदर्शन पर दिशाओं को बताओ । हे पूर्ण शक्तिशाली ! समस्त प्रजाओं में बसने-बसाने वाले, हमें उपदेश दो । १ । हे त्रैलोक्य-स्वामिन् ! हे चैतन्य ! परम आनन्द को प्रेरित करने वाली रश्मियों के समान स्तुतियों द्वारा अभीष्ट धन दो । २ । हे सामर्थ्यवान्, दाता और पूज्य ! तुम धन, ज्ञान, शक्ति, तेज बल तथा अन्न के लिये हमको समर्थ करो और स्वयं आनन्दमय बनो । ३ । हे त्रैलोक्य-नाथ ! श्रेष्ठ धन के लिए हमें समर्थ बनाओ । तुम ज्ञान और धन के स्वामी, पूज्य एवं समर्थ हो । ४ । सब ऐश्वर्यवानों में सबसे बड़ा दाता वह सूर्य के समान कान्तिवान् है । हे सर्वज्ञ ! ज्ञान और बल के लिए हमें बड़ा, मनुष्य उसी की स्तुति करते हैं । ५ । वह परमेश्वरी ही सर्व समर्थ है । उस सर्व विजयी को रक्षा के लिये स्मरण करते हैं । वह द्वेष-भावों का नाशक, ज्ञान कर्मशक्ति वाला सत्यस्वरूप और महान् है । ६ । उस अपराजित को ऐश्वर्य के लिए स्मरण करें । वह हमारे बैरियोंका नाश करने वाला है । ७ । हे अखण्ड ज्ञानरूप ! पहिले से तुम्हारी किरणें

परमानन्ददायनी हैं। सबको वास देने वाले ! हमें सुख दो। तुम्हारा पोषकरूप प्रशंसित है। हे समर्थ ! तुम सबको वशीभूत करते हो। हे स्तुत्य ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥८॥ हे विघ्नों के नाश करने वाले ! हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। हे वीर तुम हमारे आत्मा के मित्र और सेवा करने के योग्य, अद्वितीय हो ॥९॥ हे इन्द्र तुम इस प्रकार परमेश्वर हो। हे अग्ने ! तुम प्रकाश रूप हो हे सर्वेश्वर्ययुक्त ! तुम निश्चय ही ऐश्वर्यवान् हो। हे पूषन् ! तुम पोषक हो। हे सर्वदेव ! दिव्य गुण सम्पन्न पदार्थो ! तुम ईश्वरीय गुणों से युक्त, ऐसे ही हो ॥१०॥

॥ इति महानाम्न्यार्चिक: समाप्तः ॥

—*—

उत्तरार्चिक :

प्रथम प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि—असितः काश्यपो देवलो वाः काश्यपो मारीचः शर्त बैखानसाः, भरद्वाजः, विश्वामित्रो जमदग्निर्वा, इरिबिठिः विश्वामित्रो गाथिनः, अमहीयुराङ्गिरसः, सप्तर्षः, उशना काण्यः वसिष्ठ, वामदेवः नोधा गौतमः. कलिः, प्रगाथः, मधुच्छन्दा, गौरवीतिः, अग्निश्चाक्षुषः, अन्धीगुः, श्यावश्विः कविर्भार्गवः, शंयुर्वार्हस्पत्यः, सौभरिः नृमेंधः। देवता—पवमानः, सोमः अग्निः, मित्रावरुणौ इन्द्रः, इन्द्राग्निः छन्द—गायत्रीः, पादनिचृत्, प्रगाथः, त्रिष्टुप्, काकुभः, प्रगाथः, उष्णिक् प्रगाथः, आनुष्टुभ, जगती ।

उपास्मै गायता नरः ववमानायेन्ददे ।

अभि देवाँ इयक्षते ।।१

अभि ते मधुना पयोऽथर्वाणो अशिश्रयुः ।

देवं देवाय देवायु ।।२

स नः पवस्य शं गवे शं जलाय शमर्वते ।

शं राजन्नोषधीभ्यः ।।३।१।।

दविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा ।
सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥१
हिन्वानो हेतृभिर्हित आ वाजं वाज्यक्रमीत् ।
सीदन्तौ वनुषो यथा ॥२
ऋधक्सोम स्वस्तये संजग्मानो दिवा कवे ।
पवस्व सूर्यो दृशे ॥३॥२
पवमानस्य ते कवे वाजिन्त्सर्गा ।
अर्वन्तो न श्रवस्यवः ॥१
अच्छा कोशं मधुश्चुतमसृग्रं वारे अव्यये
आवावशंत धीतयः ॥२
अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः
अग्मन्नृतस्ययोनिमा ।३॥३ (१-१)

हे मनुष्यों ! देवताओ के लिए यज्ञ करो। शुद्ध होकर पात्र में गिरते हुये सोम की स्तुति गाओ ॥१॥ हे दिव्य गुण वाले देवताओं ! अपने इच्छित इस पोषक रस को साधक गौ दुग्ध के साथ मिश्रित कर पीते हैं ॥२॥ हे ज्योतिर्मान् परमेश्वर ! तू हमारे लिए गवादि पशु-धन, प्रजा-जन, अश्वादि सेना के अंगों व प्रताप के धारक पदार्थों और औषधियों को प्रफुल्लित करें ॥३॥ अत्यन्त तेजस्वी क्रान्ति से शब्दयुक्त धारा से स्वच्छ हुआ सोम गौ-दुग्ध से मिश्रित किया जाता है ॥४॥ साधकों द्वारा यत्न से प्राप्त शक्तिशाली सोम हितकारी हुआ प्राप्त होता है जैसे

संघर्ष के लिये शूरवीर युद्धभूमि में घुसते हैं ॥२॥ हे उज्ज्वल सोम ! तू उन्नत होता हुआ कल्याण के लिए अन्तरिक्ष से गिरता है ॥३॥ हे क्रान्तदर्शी सोम शुद्ध करते समय तेरी कामना करने वालों को सम्पन्न करने की इच्छुक तेरी धारायें अश्वों के घुड़-साल से निकलने के समान वेगवती होती हैं ॥१॥ मधुर रस टप-काये जाने वाले कलश में अँगुलिया सोम को पुन. पुनः शुद्ध करतो है ॥२॥ टपके हुये सोम रस-कलश में जाते हैं। जैसे दुदारु गाय अपने थान पर जाती है, वैसे ही यह सोम यज्ञ-स्थान को प्राप्त होते हैं ॥३॥ (३) ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१

तं त्वा समिद्‌भिरँगिरो घृतेन वर्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठय ॥२

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि ।
बृहदग्ने सुवीर्यम ॥३॥४

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्ययूतिमुक्षत्तम ।
मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१

उरुशँसा नमोवृधा मह्नादक्षस्य राजथः ।
द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥२

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्ल सीदतम् ।
पातं सोममृतावृधा ॥३॥५

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥१

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥२
ब्रह्माणस्त्वा युजा वयं सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥३॥६
इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥१
इन्द्राग्नी जरितुः सचः यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥२
इन्द्रमग्नि कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे ।
ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३७॥ (१-२)

हे अग्ने ! तुम अज्ञान आदि का भक्षण करने और ज्ञान का प्रकाश करने के लिये यज्ञ को प्राप्त होओ। दिव्य गुणों के प्रदाता बने तुम मेरे हृदयासन पर विराजो ॥१॥ हे सुन्दर अग्ने ! पूर्व कथित गुणों से युक्त तुम्हें समिधा और घी से प्रदीप्त करते हैं। हे तरुण ! तू अधिक प्रकाशित हो ।२। हे अग्ने तू महान् समर्थ हैं- हमको सुनने योग्य सुन्दर ज्ञान प्राप्त करने वाला हो ।३।(४)। हे मित्र वरुण ! हमारी इन्द्रियों के घर-रूप देह को प्रकाश-युक्त ज्ञान-रस से सींचो और उत्तम रस से सींचो और उत्तम रस से हमारे पारलौकिक स्थानों को भी सिंचित करो ।१। अत्यन्त पवित्र कर्म-वाले मित्र और वरुण ! तुम विविध प्रशंसा योग्य हवि रूप अन्न से महती स्तुतियों द्वारा अपने तेज से प्रकाशित हो ।२। दृढ़ संकल्प वाली अग्नि को अन्तःकरण में प्रज्वलित करने वाले ज्ञानियों से स्तुत्य तुम सत्य-स्थान में विराजो! हे

कर्म फल देने वाले मित्र, वरुण ! तुम हमारे द्वारा सिद्ध किये इस सोम का पान करो।३(५)। हे इन्द्र ! मेरे यज्ञ को प्राप्त हो। मैंने सोम सिद्ध किया हैं इसे पान करता हुआ हृदयासन पर विराज।१। हे इन्द्र ! मन्त्र रूप अश्व तुझे वहन करें और तू हमारे यज्ञ को प्राप्त हुआ स्तोत्रों पर ध्यान दे।२। हे इन्द्र ! हम ब्रह्मज्ञानी सोम रस को सिद्ध करके तुझ सोम पान करने वाले को स्तुति द्वारा बुलाते हैं।३।(६)। हे इन्द्र और अग्ने ! सिद्ध किये हुए सोम के लिये हतारी स्तुतियों से प्राप्त होओ और हमारे भक्ति-भाव से निवेदित इस सोम का पान करो।१। हे इन्द्र अग्ने ! तुम उपासक को मुक्ति प्राप्त करने में सहायक हो तुम्हें इन्द्रियों को जागृत रखने वाला यज्ञ साधक सोम प्राप्त होता है। हमारी स्तुतियों से आकर्षित हुए तुम इस शुद्ध सोम का पान करो।२। इस यज्ञ-साधक सोम से प्रेरित मैं अभीष्टदाता इन्द्र और अग्नि की पूजा करता हूँ। वे मेरे सोम योग से सन्तुष्ट हों ॥३ (७)।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सत्भूम्या ददे।
गग्रं शर्म महि श्रवः ॥१

स न इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः।
वरिवोवित् परि स्रव ॥२

एना विश्वान्यर्य आ द्युम्नानि मानुषाणाम्।
सिषासन्तो वनामहे ॥३॥८॥

पुनानः सोम धारयापो वसानो अर्षसि।
आ रत्नधा योनिमृतस्य सीदस्युत्सो देवो हिरण्ययः ॥१
दुहान ऊधर्दिव्यं मधु प्रियं प्रत्नं सधस्थमासदत्।

आपृच्छयं धरुणं वाज्यर्षसि नृभिर्धौतो विचक्षणः ॥२॥८

प्र तु दव परि कोशं नि षीद नृभिः पुनानो अभि वाजमर्ष ॥

अश्वं त त्वा वाजिनं मर्जयन्तोऽच्छा बर्ही रशनाभिर्नयन्ति ॥१

स्वायुधः पवते देव इन्दुरशस्तिहा वृजना रक्षमाणः ।

पिता देवानां जनिता सुदक्षो विष्टम्भो दिवो

धरुणः पृथिव्याः ॥२

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन ।

स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यां गुह्यं

नाम गोनाम् ।३।१०। (१—३)

हे सोम ! तू श्रेष्ठ रस का उत्पादक, आकाश में स्थित बलयुक्त आनन्द स्वरूप बहुत अन्नों से युक्त यजमानों द्वारा ग्राह्य है । १ । हे ऐश्वर्यदाता सोम ! तू हमारे लिये काम्य है । इन्द्र वरुण मरुद्गणके लिए स्रवित हो । २ । हे सोम ! मनुष्यों को प्राप्य इन सव यज्ञ-साधनों को सरलता से प्राप्त करते हुये हम तुम्हारी सेवा के लिए स्तवन करते हैं ।३(८)। हे शुद्ध किये जाते हुये सोम! तू अपनी तरलधारा से पात्र में जाता है । तू ऐश्वर्यदाता, तरल, स्वच्छ स्वर्ण के समान दमकता हुआ यज्ञ स्थान में स्थित हो । १ । हर्ष प्रदायक, आह्लादक, स्वर्गीय आनन्द-रस को टपकाता हुआ सोम हृदय रूप आन्तरिक्ष को प्राप्त होता है । फिर तू ऋत्विजों द्वारा धोया हुआ कर्मवान् यजमानों को अन्न प्राप्त

करता है ।२ (९) । हे सोम ! हमारे यज्ञ में शीघ्र आकर द्रोण कलश में विराजा होताओं द्वारा शोधित हविरूप अन्न को प्राप्त हो । स्नान से स्वच्छ हुये अश्व के समान अपनी लम्बी अँगुलियों से ऋत्विज तुम्हें शुद्ध करते हैं ।१। उत्तम अस्त्र युक्त, दानवोंका नाशक, विघ्नों से रक्षा करने वाला बलवान आकाश-पृथिवी का धारक, सोम सिद्ध किया जाता है । २ । बुद्धिमान् अनुष्ठानकर्त्ता परम ज्ञानी, साधक ऋषि ही इन इन्द्रियों में स्थित जो परमानन्द रूप दुग्ध है उसे यत्नापूर्वक प्राप्त करता है ।।३(१०)।।

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ।।१
न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते
अश्वायन्तो मेघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे
।२।११

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ।।१
कस्त्वा सत्यो मदानाँ मंहिष्टो मत्सदन्धसः ।
दृढ़ा चिदारुजे वसु ।।२
अभी षुणः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतये ।।३।।१२
तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ।।१
द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।

क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्त्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे

॥२॥१३॥

तरोभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सबाधाऊतये ।

बृहद्गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदेषु शिप्रमन्धसः ।

य आदृत्या शशमानाय सुवन्ते दाता

जरित्र उक्थ्यम् ॥२॥१४ (१–४)

हे वीर इन्द्र ! जैसे बिना दुही गायें बछड़ों की ओर रँभाती है, वैसे हम विश्व के स्वामी तुम सर्वज्ञ को पुनः पुनः प्रणाम करते है ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य कोई दिव्य लोक या पृथिवी लोक का वासी नहीं है, न कभी हुआ न होगा। अश्व-गवादि की कामना वाले हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ।२(११)। सतत वृद्धि को प्राप्त वीरेन्द्र, किस तृप्तकारक पदार्थ अथवा किस यत्न या अनुष्ठान से हमारे सखा होवें ।१। आनन्द-दायक पदार्थों में कौन सा पदार्थ श्रेष्ठ है ? इन्द्र को आनन्दमद में रमाने वाला सोम-रस शत्रु के ऐश्वर्य को नष्ट करने वाला हैं ।२। हे इन्द्र ! तू मित्र साधकों की रक्षा करने वाला हमें सैकड़ों को पुकारती हुई गौओं के समान हे ऋत्विज. यजमानों ! सूर्य के समान प्रकाशित शत्रुओं को भगाने वाले, सोम-पान से आनन्दित इन्द्र का यश-गान करो ।१। हम सूर्य लोक के निवासी उत्तम दानी, बलवान्, सोमादि से तृप्त, पालक इन्द्र से सन्तान और ऐश्वर्य, सैकड़ों गवादि अन्न-धन मांगते हैं ।२ (१३) । हे

ऋत्विजो ! तुम मोम-यज्ञ में वेग वाले अश्वों युक्त ऐश्वर्य देने वाले इन्द्र की, रक्षा के लिये उपासना करो। जैसे बालक अपने अभिभावक को पुकारता है वैसे ही मैं साधक अपना हित करने वाले इन्द्र को बुलाता हूँ ।१। सुन्दर चिबुक और नासिका वाले इन्द्र को युद्ध में दुष्ट प्राप्त नहीं कर सकते। वह इन्द्र सोम के आनन्द के लिये सोम-सिद्ध करने वाले साधक को ऐश्वर्य देता है, हम उस इन्द्र की स्तुति करते हैं ।२। (१४)।

स्वादिष्ठया पवस्य सोम धारया ।
इन्द्राय पातवे सुतः ॥१
रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥२
वरिवोधातमो भुवो मंहिष्ठो वृत्रहन्तमः ।
पर्षि राधो मघोनाम् ॥३॥१५
पवस्व मधुमत्तम इन्द्राय सोम क्रतुवित्तमो मदः ।
महि द्यु क्षतमो मदः ॥१
यस्व ते पीत्वा वृषभो वृषायतेऽस्य पीत्वा स्वर्विदः !
स सुप्रकेतो अभ्यक्रमीदिषोऽच्छा वाजं नैतशः ॥२॥१६
इन्द्रमच्छ सुता इमे वृषणं यन्तु हरयः ।
श्रुष्टे जातास इन्दवः स्वर्विदः ॥१
अयं भराय सानसिरिन्द्राय पवते सुतः ।
सोमो जैत्रस्य यथा विदे ॥२

अस्येदिन्द्रो मदेष्वा ग्राभं गृभ्णाति सानसिम् ।
वज्रं च वृषणं भरत् समप्सुजित ।।३।। १७
पुरोजिती वो अन्धसः सुताय मादयित्नवे ।
अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्व्यम् ।।१
यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ।।२
तं दुरोषमभी नरः सोमं विश्वाच्यां धिया ।
यज्ञाय सन्त्वद्रयः ।।३।।१८
अभि प्रियाणि पवते चनोहितो नामानि यह्वो
अधि येषु वर्धते ।
आ सूर्यस्य बृहतो बृहन्नधि रथं विष्वंचमरुहद्विचक्षणः।१
ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं वक्ता पतिर्धियो
अस्या अदाभ्यः ।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां नाम तृतीयमधि रोचनं दिवः
।।२

अव द्युतानः कलशाँ अचिक्रदन्नृभिर्येमाणः कोश आ
हिरण्यये । अभी ऋतस्य दोहना अनूषताधि त्रिपृष्ठ
उषसौ वि राजसि ।। ३ ।। १६ ।। (१–५)

हे सोम ! तू इन्द्र के लिये सिद्ध किया गया सुस्वादिष्ट आनन्द दायिनी धारा से टपक । १ । रोग व्याधि रूप राक्षसों का हननकर्त्ता सोम स्वर्ण कलश में शुद्ध किया रखा है । २ । हे इन्द्र ! तू अत्यधिक ऐश्वर्य एवं विभिन्न पदार्थों का देने वाला है,

शत्रुओं से हमको धन प्राप्त करो ॥३ (१५)॥ हे सोम ! अत्यन्त मधुर रस देने वाला तू पूज्य। उज्ज्वल और सुखवर्द्धक हैं। इन्द्र के लिए इस पात्र में स्थित हो। १। हे सोम ! अभीष्टवर्षक इन्द्र तुझे पीता हुआ बलवान हो जाता है। तेरे बल से वह शत्रुओं के धन को वश में कर लेता है। जैसे अश्व शीघ्रता से युद्ध भूमि को प्राप्त होता है। २ (१६)। शीघ्रता से निकल कर पात्रों में टपकता हुआ शुद्ध सोम-रस अभीष्टवर्षक इन्द्र को प्राप्त हो। १। बल के लिए सेव्य और संस्कारित यह सोम इन्द्र के लिये पात्रों में एकत्रित हुआ विजयेच्छुक इन्द्र को चेतना देता है, जैसे कि वह इन्द्र लोकों को चैतन्य करता है।२। इस सोम के आनन्द में रमा हुआ इन्द्र धनुष को ग्रहण करता हुआ जलवर्षक अभीष्ट देता है। (१७)। हे स्तुति करय वाले ! जिसके सेवने से विजय निश्चित होती है ऐसे सोम के हर्षित बना देने वाले सिद्ध रस से कुत्ते और उनके समान लोभियों को भगाओ। १। संस्कृत, कर्म -साधक सोम पाप-शोधक धाराओं से ऐसे प्रवाहित होता है जैसे वेग के साथ अश्व भागता है। २। हे मनुष्यो ! दोषों को जलाने वाले सोम का सर्व कार्यों को सिद्ध करने वाली वृद्धि से यज्ञ के लिये आदर करो। ३(१८)। हितकर सोम संसार को तृप्त करने वाले जलों को शुद्ध करने वाला है। यह अन्तरिक्ष में स्थित जलों से बढ़ता और सूर्य के रथ पर चढ़ा हुआ सबको देखता है। १। सत्य रूप यज्ञ के मुख्य प्रवक्ता के समान शब्द करने वाला सोम दिव्य अव्यक्त रूप को धारण करता है। २। दीपयुक्त सोम संस्कारित हुआ शब्द पूर्वक कलश में गिरता है, तब साधक उसकी स्तुति करते हैं। वह यज्ञ को प्रकाशित करता है ॥३ (१९)॥

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ।।१
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ।।२।।२१
एह्यूष ब्रवाणि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः ।
एभिर्वर्धास इन्दुभिः ।।१
यत्र क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् ।
तत्र योनिं कृणवसे ।।२
न हि पूर्तमक्षि पद्भुवन्नेमानां पते ।
अथा दुवो वनवसे ।।३।।२१
वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वज्रिञ्चित्रं हवामहे ।।१
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ।।२।।२२
अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा काम ईमहे ससृग्महे ।
उदेव ग्मन्त उदभिः ।।१
वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि ।
वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवेदिवे ।।२

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे वचोयुजा इन्द्रवाहा स्वर्विदा ॥३॥२३॥ (१-६)

हे स्तुति करने वालो ! तुम यज्ञ में प्रदीप्त हुये अग्नि की स्तुति करो। हम भी उन अविनाशी सर्वज्ञ अग्नि की मित्र के समान प्रशंसा करें ॥१॥ अन्न-बल के पुत्र अग्नि की स्तुति करें। यह अग्नि मनोरथ पूर्ण करने वाला, संग्राम रक्षक, वृद्धि करने वाला हमारी सन्तानों का रक्षक हो ।२। (२०)। हे अग्ने ! इन उत्तम प्रकार से उच्चारित स्तुतियों को सुनो तथा अन्य देवताओं की स्तुतियाँ सुनते हुये भी सोम-रस से पुष्ट होओ ।१। हे अग्ने ! तुम्हारा मन जिस यजमान के प्रति आकर्षित है, उसके यहाँ उत्तम अन्न, बल धारण कराते हो ।२। हे अग्ने ! तुम्हारे तेज से नेत्रों की ज्योति नष्ट न हो। तुम यजमानों के रक्षक हो अतः उनके द्वारा की हुई सेवाओं को ग्रहण करो ।३। (११)। हे वज्रिन् ! तुमको सोम से तुष्ट करते हुये हम रक्षा के लिये तुम्हें बुलाते हैं, उसी प्रकार जैसे ऐश्वर्य प्रदाता गुणवान को सब बुलाया करते हैं ।१। हे इन्द्र ! हम रक्षा के लिये तुम्हारे आश्रय में उपस्थित हैं। तुम शत्रु को पछाड़ने वाले युवा रूप से आकर उत्साह दो। तुम सबके रक्षक हो। हम मित्र रूप से तुम्हारे उपासक हैं ।२ (२२)। हे स्तुत्य इन्द्र ! तुमसे सभी अभीष्ट पदार्थ याचना करते हुये प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार जैसे अंजलि से जल उछालते हुये व्यक्ति निकट वालों को खेल-खेल में भिगों देते हैं ।१। हे वज्रिन् ! हे शूर वीर ! जैसे नदियों के जल से ही समुद्र महान् बनता है, वैसे ही स्तुति करने वाले अपने स्तोत्रों से ही तुम्हें बढ़ाते है ॥२॥ उस गतिमान इन्द्र के रथ में बचन मात्र से ही अश्व जुड़ जाते हैं। इन्द्र के स्थान को द्रुत गति से

द्रुत गति से जाते हुये अश्वों को स्तुति करने वाले अपने स्तोत्रों से उत्काहित करते है ॥३ (२३)॥

(द्वितोयोऽर्ध)

ऋषि: — श्रुतकक्ष: वसिष्ठ:, मेधातिथिप्रिमेधौ:, इरिम्बिठि:,
कुसीदी काण्व:, त्रिशोक:, काण्व:, विश्वामित्र:, मधुच्छन्दा:,
शुन: शेप: नारद,, अवत्सार: ,मेध्यातिथि:,असित:
काश्यपो, देवलो वा अमहीयुराङ्गिरस:,
त्रित आप्त्य:, भरद्वाजादय:, सप्त-
ऋषय:, श्यावाश्व:, अग्नि-
श्चाक्षुष:, प्रजापतिर्वैश्वा-
मित्रो वाच्यो वा । देवता—
इन्द्र:, अग्नि:, उषा:, अश्विनो:, पवमान:, सोम:
छन्द—अनुष्टुभ:, प्रगाथ:, गायत्री उष्णिक बृहती
प्रगाथ: अनुष्टुप् ।

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत ।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम् ॥१
पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यां सनश्रुतम् । इन्द्र इति ब्रवीतन ॥२
इन्द्र इन्नो महोनां दाता वाजनां नृतुः ।
महाँ अभिश्वा यमत् ॥३॥१
प्र व इन्द्रायं मादन हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमाव्ने ॥१
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्ष यथ नरः ।
चकृमा सत्यराधसे ॥२
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो
त्वं हिरण्ययुवसो ॥३॥२

अभु त्वा तदिदर्था इन्द्र त्वायन्तः सखायः ।
कुश्वा उक्थेभिर्जरन्ते ।।१

न घेमन्यदा पपन वज्रिन्नपसो नविष्टौ ।
तवेदु स्तोमैश्चिकेत ।।२

इच्छन्ति देवाः सुवन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ।।३।।३

इन्द्राय मद्वने सुतं परि ष्टोभन्तु नो गिरः ।
अर्कमर्चन्तु कारवः ।।१

यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः ।
इन्द्रं सुते हवामहे ।।२

त्रिकद्रु केषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिर ।।३।।४।। (२-१)

हे ऋत्विजो ! सोम-पान करते हुये इन्द्र की अनेक स्तुतियाँ करो। वह इन्द्र सब शत्रुओं का हनन कर्त्ता, शत-कर्मा, धनदाता होने से महान् हैं ।।१।। हे ऋत्विजो ! यज्ञ में अनेको द्वारा बुलाये गये, स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य उस सनातन देव का इन्द्र नाम से यश-गान करो ।।२। स्तोताओं को पशु-धन दाता इन्द्र हमें ऐश्वर्य-दाता हों। वह महान् इन्द्र साक्षात् ऐश्वर्य प्रदान करें ।।३ (१) ।। हे स्तुति करने वालो ! सोम-पान करने वाले इन्द्र के लिये आनन्द-दायक स्तोत्रों का गान करो ।। १ ।। हे साधक ! उत्तम दान और सत्य धन वाले इन्द्र के लिये सोम को

समर्पण करने वाला अन्य व्यक्ति स्तोत्रों का उच्चारण करता है, वैसे ही तू भी, हमारे साथ स्तोत्रों को गा ।।२।। हे इन्द्र ! तू हमको अन्न चाहने वाला होते पराक्रमी । गवादि धन और सुवर्ण आदि के लिये सिद्ध कर ।।३ (२) ।। हे इन्द्र ! तुम्हें अपना समझने वाले मित्र प्रयोजनीय विषयों से तुम्हारी स्तुति करते हैं । हमारी सन्तति भी तुम्हारा स्तवन करती है ।१। हे वज्रिन् ! तुम कर्मों के स्वामी के लिये नवीन यज्ञ में अन्य स्तोत्रों को नहीं कहता । केवल तुम्हारी ही स्तुति करता हूँ ।।२।। सोम शोधन करते हुये साधक रक्षा चाहते है । वह उसे स्वपनावस्था से निकाल कर जागृत करते हैं । इसीलिये निरालस्य देवगण सोम को शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं ।।३ (३)।। सोम-रस चाहने वाले इन्द्र के लिये संस्कृत सोम की हमारी वाणियां स्तुति करें । फिर स्तोतागण उस सोम की पूजा करें ।।१।। जिस अधिक काति वाले इन्द्र के लिये सात होता मन्त्रोच्चार करते हैं सोम के सिद्ध होने पर हम उनका आह्वान करते हैं ।।२।। दिव्य इन्द्रियों, दीप्ति और आयु-वर्द्धक यज्ञ का जिससे विस्तार होता है, उसी यज्ञ को हमारी स्तुतियाँ बढ़ावें ।।३ (४) ।।

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि ।

एहीमस्य द्रवा पिब ।।१

शाचिगो शापूचिनायं रणाय ते सुतः ।

आखंडल प्र हूयसे ।।२

यस्ते भृङ्गवृषो णपात् प्रणपात् कुण्डपाय्यः ।

न्यस्मिन् दध्र आ मनः ।।३।।५।।

आ तू न क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥१

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुवीमघम् ।
तुविमात्रमवोभिः ॥२

न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् ।
भीमं न गां वारयन्ते ॥३॥६॥

अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।
तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥१

मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।
मा की ब्रह्मद्विषं वनः ॥२

इह त्वा गोपरीणसं महे मन्दतु राधसे ।
सरो गौरो यथा पिब ॥३॥७॥

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥१

नृभिर्धौतः सुतो अश्नैरव्या वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३॥८॥(२२)

हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये यह सोम वेदी में बिछे कुशों पर शोधित किया है। तुम इस समय यहाँ आकर रस रूप सोम से जहाँ हवन होता है, वहाँ इसका पान करो ॥१॥ प्रसिद्ध

किरणों वाले, पूज्य इन्द्र ! तुम्हें आनन्दित करने के लिये यह सोम सिद्ध किया है। इसलिये हमारी उत्तम स्तुतियों से यहाँ आकर सोम-पान करो ।२। सर्वश्रेष्ठ सुख वर्यक, रक्षक और सर-लता से पीने योग्य सोम के प्रति इस यज्ञ में ध्यान लगाओ ।।३ (५) ।। हे इन्द्र ! महान् भुजाओं वाले तुम हमको अद्भुत धन को दाहिने हाथ से ग्रहण कराओ ।।१।। हे इन्द्र ! बहुत पराक्रमी देह, ऐश्वर्य वाले महान् रक्षण-साधन युक्त तुम्हें हम जानते हैं ।।२।। हे वीर तुम दानशील को देवता या मनुष्य कोई भी देने से रोकने वाला नहीं है। उसी प्रकार जैसे बैल को घास खाने में कोई नहीं रोकता ।।३ (६)।। हे अभीष्ट दाता इन्द्र ! सोम के शुद्ध होने पर तुम्हें उसके पीने के लिये बुलाता हूँ। उससे तुम तृप्ति को प्राप्त होओ ।।१।। हे इन्द्र ! पालन करने की इच्छा वाले मूर्ख तुम्हें कष्ट न दें। उपहास करने वाले ब्रह्म-द्वेषियों से तुम अपनी सेवा मत कराओ ।।२।। हे इन्द्र ! धन के निमित्त इस यज्ञ में तुम्हें गो-दुग्ध युक्त सोम-रस भेंट करके आनन्दित करें। तुम मृग द्वारा तालाब के जल को पीने के समान उस सोम का पान करो ।।३ (८)।। हे व्यापक इन्द्र ! इस शोधित सोम का पान करो जिससे तुम्हारा पेट भरे । किसी से न डरने वाले ! तुम्हे यह सोम अर्पित है ।।१।। ऋत्विजो ने तृण आदि दूर करके इसे सिद्ध किया है। यह पत्थरों से कूट कर निचोड़ा हुआ, छान कर जल भावना से शोधन किया गया हैं ।।२।। हे इन्द्र ! उस शोधित सोम को पुरोडाश के समान गो दुग्धादि से मिश्रित कर तुम्हारे लिये सुस्वादु बनाया हैं। अतः इसको पीने के लिये तुम्हें इस यज्ञ में बुलाता हूँ ।।३ (८)।।

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्वा स्य गिर्वणः ।।१

यस्ते अनु स्वधामसत् सुते नि यच्छ तन्वम् ।
स त्वा ममत्तु सोम्य ।।२
प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।
प्र बाहू शूर राधसा ।।३ ८
आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखाय स्तोमवाहसः ।।१
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इंद्र सोमे सचा सुते ।।२
स घा नो योग आ भुवत स राये स पुरन्ध्याम् ।
गमद् वाजेभिरा स नः ।।३।१०
योगयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे । सखाय इन्द्रमूतये ।।१
अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रति नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ।।२
आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ।३।११
इंद्र सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीष उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षस्य महां हि षः ।।१
स प्रथमे व्योमनि देवानाँ सदने वृधः ।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ।।२
तमु हुवे वाजसाताय इंद्र भराय शुष्मिणम् ।

भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३।१२॥ (२३)

हे ऐश्वर्य-स्वामी, स्तुत्य इन्द्र ! तुम बलवान हुए क्रम से संस्कारित इस सोम का शीघ्र प न करो ॥१॥ हे इन्द्र ! जो सोम तुम्हारे लिये पाषाणों से शुद्ध किया जाता है, उसके सिद्ध होने पर अपने शरीर को उसके लिए प्रेरित करो। उस सोम से तुम्हें आनन्द प्राप्त हो ।२। हे इन्द्र ! वह सोम तुम्हारे दोनों पार्श्वों में भले प्रकार रम जाय। तुम्हारे शिर आदि देह में व्याप्त हुआ सोम धन के निमित्त तुम्हारी भुजाओं को समर्थ करे ॥३ (९)॥ हे स्तोताओ ! मित्रो ! यहाँ आकर बैठो और इन्द्र के लिये सामगान द्वारा प्रशंसित करो ॥१॥ ऋत्विजो ! सोम के संस्कार में योग देते हुये शत्रु-नाशक इन्द्र को सब मिल कर मनाओ ।२। वह इन्द्र ज्ञान से समर्थ हुआ हमारे में पुरुषार्थ धारण करावे। वह धन प्राप्ति, बुद्धि वृद्धि में सहायक होता हुआ देय ऐश्वर्य के साथ प्रकट हो ॥ ३ (१०)॥ हम सभी मित्र प्रत्येक संघर्ष में विघ्नापहारक इन्द्र को अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं ।१। सनातन स्थान से अनेकों को प्राप्त होने वाले इन्द्र का आह्वान करता हूँ, हमारे पूर्वजों ने भी तुम्हारा आह्वान किया था ।२। यह इन्द्र यदि हमारी बुलाहट को सुनें तो स्वयं ही रक्षा साधनों एवं अन्नादि ऐश्वर्यों सहित हमारे पास आ जाँय ।३ (११)। हे इन्द्र ! संस्कारित सोम को पीने पर तुम बढ़ाने वाले बल की प्राप्ति के लिए साधक को शुद्ध करते हो। तुम निश्चय ही महान् हो ।१। वह इन्द्र रक्षक रूप से दिव्यताओं में स्थित हुआ साधकों को बढ़ाने वाला, कर्म फलदायक विजेता में, उसी का हम आह्वान करते हैं ।२। उसी इन्द्र का अन्नदायक यज्ञ में आह्वान करता हूँ। हे इन्द्र ! तुम आनन्द की इच्छा से हमारे पास आकर वृद्धि-कारक मित्र के समान बनो ॥३ (१२) ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥१३
प्रत्यु अदर्श्यायत्यूच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो मही वृणुते चक्षुषा तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचा उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२॥१४
इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥१५

(२–४)

हे ऋत्विजो ! तुम्हारे लिये इन स्तुतियों से बल के पुत्र, चेतन्य, श्रेष्ठ यज्ञ कर्मों में प्रयुक्त, दूत-रूप अग्नि का आह्वान करता हूँ ॥१॥ वह विश्व-पोषक, उत्तम अन्न वाला, यज्ञ योग्य श्रेष्ठ-कर्मा अग्नि देवताओं को आह्वान कराने वाला शीघ्र गमन करे। साधकों की हवियाँ अग्नि को प्राप्त हो ॥२ (१३) ॥ सूर्य लोककी पुत्री उषा को आकर अन्धकार मिटाते सबने देखा। वह अपने दर्शन से सी रात के अँधेरे को दूर कर देती है। प्राणियों को उत्तम प्रेरक उषा प्रकाश देने वाली है ॥१॥ सबका प्रेरक सूर्य किरणों को एक साथ आभिभूत करता । हे उषे ! तेरे और सूर्य के प्रकाश को पाकर हम अन्न से सम्पन्न हों ॥२ (४)।

हे अश्विनीकुमारो ! सूर्य के प्रकाश की इच्छुक यह प्रजायें तुम्हें बुलाती हैं। यह साधक भी रक्षा के निमित्त तुम्हारा आह्वान करता है। तुम सब स्तोताओ के निकट जाते हो ॥१॥ हे अश्विनोकुमारो ! तुम अद्भुत धन-धारक हो। उस धन को साधकों के निमित्त दो। इस कार्य को करते हुये सोम के मधुर रस का पान करो ॥२ (१५) ॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः ।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥१
अयं सूर्य इवोपदृगयं सरांसि धावति ।
सप्त प्रवत आ दिवम् ॥२
अयं विश्वानि तिष्ठति पुनानो भुवनोपरि ।
सोमो देवो न सूर्यः ॥३॥१६
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।
हरिः पवित्रे अर्षति ॥१
एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यस्परि । कविर्विप्रेण वावृधे।२
दुहानः प्रत्नमित्पयः पवित्रे परि षिच्यसे ।
क्रन्दं अजीजनः ॥३।१७
उप शिक्षातस्थुषो भियसमा धेहि शत्रु ।
पवमान् विदा रयिम् ॥१
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
इन्द्रं देवाँ अयासिषुः ॥२
उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे ।
अभि देवाँ इयक्षते ।३।१८ (२-५)

सोम के सनातन रूप का ध्यान कर सहस्रों मनोरथों को पूर्ण करने वाले पेय रस को ज्ञानी जन निचोड़ते हैं ।।१।। यह सोम के समान सब कर्मों को देखने वाला है। यह तीस अहो-रात्रों को प्राप्त हुआ आकशस्थ सात प्रव हों में व्याप्त होता है।२। शुद्ध किया जाता हुआ सोम सूर्य के समान सब भुवनों के ऊपर विराजता है ।।३ (१६) ।। यह दिव्य सोम सनातन रीति से संस्कार किया हुआ देवों के लिये प्रयुक्त हुआ दमकता है ।।१।। पूर्ववत् स्तोत्रों द्वारा साधित यह सोम दिव्य गुण वाला मेधाशक्ति युक्त हुआ साधक-द्वारा गुणों में बढ़ता है ।।२।। पूर्ववत् ही पात्रों को सोम-रस से पूर्ण करता हुआ शब्दमान् सोम इन्द्रादि को अपने निकट बुलाता है।। ३ (१७) ।। हे सोम हमारे अभीष्ट पदार्थों को हमारे पास लओ । हमारे शत्रुओं को भयभीत करो शत्रुओं के धन को हमें प्राप्त कराओ ।१। उत्तम प्रकार से उत्पन्न, गो दुग्ध आदि से संस्कारित सोम इन्द्रादि देवों को प्राप्त करता है ।२। हे मनुष्यों ! इन्द्रादि देवों की उपा-सना के इच्छुक यजमान के लिये इस शुद्ध किये जाते हुये सोम के गुणों का बखान करो ।।३ (१६) ।।

प्र सोमासो, विपश्चितोऽपो नयन्ता ऊर्मयः ।

वनानि महिषा इव ।।१

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया ।

वाजं गोमन्तमक्षरन् ।।२

सुता इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।

सोमा अर्षन्तु विष्णवे ।३।१९

प्र सोम देववीतये सिन्धुर्न पिप्ये अर्णसा ।
अंशोः पयसा मदिरो न जागृविरच्छा कोशं मधुश्चुतम् ॥१
आ हर्यतो अर्जुनो अत्के अव्यत प्रियः सूनुर्न मर्ज्यः ।
तमी हिन्वत्यपसो यथा रथं नदीष्वा गभस्त्योः ॥२।२०
प्र सोमासो मदच्युतः श्रवसे नो मघोनाम् ।
सुता विदथे अक्रमुः ॥१
आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् ।
अत्यो गोभिरज्यते ॥२
आदीं न त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।
इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥३।२१
अया पवस्य देवयु रेभन् पवित्रं पर्येषि विश्वतः ।
मधोधारा असृक्षत ॥१
पवते हर्यतो हरिः ॥२
प्र सुवानायान्धसोः ॥३॥२२। (२–६)

मेधावी, वृद्धि को प्राप्त सोम जलों को प्राप्त होते हैं, जैसे बड़े मृग घोर वन को प्राप्त होते हैं ॥१॥ धूमिल दीप्तिमान् सोम अमृत रूप धार से पात्रों में गिरता है ॥२। हे सोम ! तू इन्द्र, वायु, वरुण, विष्णु और मरुतों के लिए संस्कारित हो ।३ (१६)। हे सोम ! तू देवताओं के पीने को, सिधु के जल के पूर्ण होने के समान पूर्ण होता है। तू जागृत तत्वों से युक्त हुआ लता के

अंशों से मधुर रस प्रवाहित करता कलश में जा ॥१॥ चाहने योग्य शिशु के समान श्वेत वर्ण का सोम दिखाई पड़ने पर सिद्ध किया जाता है ॥२ (२०) ॥ आनन्द प्रवाहित करने वाले सोम शुद्ध होने पर हमारे अन्न और कीर्ति के लिये यज्ञ में प्राप्त होता है ॥१॥ यह सोम हंस के समूह में गति से प्रवेश करने के समान सब साधकों की बुद्धि को नियन्त्रित करता हैं। यह सोम गो-धृतादि से युक्त किया जाता है ॥२॥ और इस सोम को इन्द्र के पान करके योग्य होने को साधक की उँगलियाँ प्रेरित करती हैं। ।३ (२१) ॥ हे सोम ! दिव्य कामनाओं वाला तू इस धार से टपकता हुआ शब्दपूर्वक छनने के लिये प्रवृत्त हो। फिर तेरी धारायें तरंगित करने वाली हो जाती हैं ।१। इच्छा करने योग्य साधकों को सन्तान, यश प्राप्त कराने के लिये वेग से छनता हुआ निकलता हैं ।२। शुद्ध किये जाते हुये सोम के शब्द को कर्मों में बाधा देने वाला न सुने । हे उपासको ! कर्म-रहित लोभी कुत्ते को यज्ञ के पास मत फटकने दो ॥३ (२०) ॥

द्वितीय दशति

॥ प्रथमोऽर्धः ॥

ऋषि—जमदग्निः, हीयुः, कश्यपः, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्वाः, मेधातिथिः, काण्वः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, वसिष्ठः, उममन्युर्वासिष्ठः, शंयुर्बार्हस्पत्युः, प्रस्कण्वः, शाक्तः, नृमेधः, नहुषो मानवः, सिकतानिवावरी, पृश्नियोऽजाः, श्रुतककक्षः, श्रुतकक्षो वा जेता माधुच्छन्दसः, । देवता—पवमानः, सोम-, अग्निः, मित्रावरुणो, इन्द्रः, इन्द्राग्नी । छन्द—गायत्री; त्रिष्टुप् बृहत्यः (प्रगाथः) अनुष्टुप्, जगती ।

पवस्य वाचो अग्रियः सोम चित्राभिरूतिभिः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥
त्वं समुद्रिया अपोऽग्रियो वाच ईरयन् ।
पवस्व विश्वचर्षणे ॥२
तुभ्येमा भुवना कवे महिम्ने होम तस्थिरे ।
तुभ्यं धावन्ति धेनवः ॥३॥१
पवस्वेन्दो वृषा सुतः कृधो नो यशसो जने ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥१
यस्य ते सख्ये वयं सासह्याम पृतन्यतः ।
तवेन्दो द्युम्न उत्तमे ॥२
या ते भीमान्यायुधा तिग्मानि सन्ति धूर्वणे ।
रक्षा समस्य नो निदः ॥३॥२
वृषा सोम द्युमां असि वृषा देव वृषव्रतः ।
वृषा धर्माणि दध्रिषे ॥१
वृष्णस्ते वृष्ण्यं शवो वनं वृषा सुतः ।
स त्वं सृषन वृषेदसि ॥२
अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समवतः ।
वि नो राये दुरो वृधि ॥३॥३
वृषा ह्यसि भानुना द्युमन्तं त्वा हुवामहे ।
पवमान स्वर्द्दशम् ॥१

यद्‌द्भिः परिषिच्यसे मर्मृज्यान आयुभिः ।
द्रोणे सधस्थमश्नुषे ॥२
आ पवस्व सुवीर्यं मन्दमानः स्वायुध ।
इहो ष्विन्दवा गहि ॥३।४
पवमानस्य ते वयं पवित्रमभ्युन्दतः ।
सखित्वमा वृणीमहे ॥१
ये ते पवित्रमूर्मयोऽभिक्षरन्ति धारया ।
तेभिर्नः सोम मृडय ॥२
स नः पुनान आ भर रयिं वीरवतीमिषम् ।
ईशानः सोम विश्वतः ॥३॥५ (३–१)

हे सोम! विभिन्न रक्षा साधनों सहित हमारी स्तुतियों को सुनता हुआ उनके शब्दों पर ध्यान दे ।१। हे सर्वद्रष्टा सोम ! तू वाणी में प्रेरणा उत्पन्न करता हुआ हृदयस्थ आनन्द रस से मिल ।२। हे सोम ! तुम्हारी महिमा के निमित्त यह भुवन स्थित है । देवगण को तृप्त करने वाली गौयें तुम्हारे लिये ही उपस्थित होती हैं ।३ (१) । हे सोम ! सिद्ध किया हुआ तू अभीष्टवर्षक है । तू पवित्र हुआ हमें यशस्वी बना । सब शत्रुओं का नाश करो ।१। हे सोम ! तुम्हारे इस यज्ञ में मित्र-भाव की प्राप्ति के लिये हम साधक एकत्रित हुये हैं । संघर्ष के इच्छुक वैरियों को हम भगावें ॥ २ ॥ हे सोम ! अपने शत्रु-नाशक आयुधों से शत्रु की भर्त्सना करते हुये हमारी रक्षा करो ॥ ३ (२) ॥ हे सोम ! तू अभीष्टवर्षक और तेजस्वी है । हे सोम के स्वामी ! तुम मनोरथों को पूर्ण करते हुये मनुष्यों के हित में कार्य करते

हो ॥१॥ हे अभीष्टवर्षक सोम ! तुम्हारा बल और सुख वर्षा-सामर्थ्य से युक्त है। तुम सिद्ध किये हुये सुखो की वर्षा करो ।२। हे अभीष्टवर्षक ! तू अश्व के समान शब्द करता हुआ पशु-धन और ऐश्वर्य का देने वाला हैं ॥३ (३) ॥ हे सोम ! तू सत्य हो अभीष्ट फलों का वर्षक है। अतः हम सब देवों के दर्शन-श्रवण-योग्य तेज से तेजस्वी हुए तुझे यज्ञों में बुलाते हैं ॥१॥ हे ऋत्विजो के द्वारा सिद्ध किये जाते हुये सोम ! जब तुझे जलों से सींचते हैं तब तू हृदय कलश में विद्यमान होता है ॥२॥ हे उत्तम आयुध वाले सोम ! तू देवताओं को सुख देता हुआ हमें भी वीर पुत्रादि से युक्त कर, हमारे इस यज्ञ में आकर सुशोभित हो ॥३ (४) ॥ हे सोम हम साधक तुम्हारे टपकते हुये मित्र भाव के लिये प्रार्थना करते हैं ।१. सोम ! तेरी यह लहरें बहकर छानने के वस्त्र में उठती हैं, उनसे हमें आनन्दित कर ।२। हे सोम ! विश्व का अधिश्वर होता हुआ सिद्ध हुआ तू हमें धन, अन्न और वीरतायुक्त सन्तति प्रदान कर ॥३ (५) ॥

अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतम् ॥१
अग्निमग्नि हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।
हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥२
अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।
असि होता न ईड्यः ॥३॥६
मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
या जाता पूतदक्षसा ॥१
ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।

ता मित्रावरुणाहुवे ॥२
वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ।३।७
इन्द्रमिद्गाथिनो बृहन्द्रिमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥१
इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२
इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥३
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ः
वि गोभिरद्रिमैरयत् ।४।८
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत सुवृक्ति मेरयामहे ।
धिया धेना अवस्यवः ।.१
ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये ।
सबाधो वाजसातये ॥२
ता वाँ गीर्भिर्विपन्युवः प्रयस्वन्यो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ।३ ६। (३-२)

देवताओं की स्तुति करने वाले सर्व ऐश्वर्यवान् इस यज्ञ के कारणभूत उत्तमकर्मा हवि-वाहक अग्नि की उपासना करते हैं ।१। प्रजा-रक्षक, हवि को देवताओं को प्राप्त कराने वाले, प्रिय, विभिन्न रूप वाले अग्नि का साधक-गण सदा आह्वान करते हैं ।२। हे अग्ने ! अरणियों से प्रकट तुम कुश पर स्थित यजमान

पर कृपा करो इस यज्ञ में हवि लेने वाले देवों को बुलाओ । तुम हमारे लिये पूजा के योग्य हो । ३ । हम स्तोता सोम-पान करने को यज स्थान में प्रकट होने वाले मित्रऔर वरुण देव को बुलाते हैं । १ । साधक पर कृपा करने वाले सत्य वचन से प्राप्य कर्म-फल बढ़ाने वाले प्रकाश के पालन कर्त्ता उन मित्र और वरुण को बुलाता हूँ (२ । वरुण और मित्र सब रक्षा-साधनों से युक्त हुये हमारे रक्षक हों। वे दोनों बहुत-सा ऐश्वर्य दें ।।३ (७) गान-योग बृहत् साम से गायको ने इन्द्र का स्तवन किया । होताओं ने मन्त्रोच्चारण द्वारा तथा अध्वर्यु ओं ने वाणियों से इन्द्र को मनाया । १ । वज्र और सुवर्ण क्रान्ति से सुशोभित इन्द्र के वचन-मात्र से कर्म रूपी घोड़े ज्ञानेन्द्रिय से मिल जाते हैं । २ । हे इन्द्र ! प्रवल तेजस्वी रक्षा-साधनों से युक्त हुआ तू संघर्षो में हमारा रक्षक हो ।३। यह इन्द्र दर्शन के निमित्त सूर्य को, उसके मण्डल में प्रतिष्ठित करता है । उस सूर्य की रश्मियाँ मेघ को प्रेरित करती है ।४ (८) । रक्षा के लिये तत्पर इन्द्र अग्नि को बढ़ाने वाले हवि और सुन्दर स्तुति को प्रेरित कर कर्मशील वाणियों से स्तवन करते हैं । १ । उन इन्द्र और अग्नि की रक्षा प्राप्त करने को ज्ञानीजन स्तुति करते हैं और क्लेशों में फँसे हुये पुरुष अन्न के लिये उन्हें मनाते हैं । २ । धन की इच्छा से स्तुति करना चाहते हुये हम यज्ञ अनुष्ठान के लिये हे इन्द्र और अग्ने ! उन स्तुतियों द्वारा तुम्हें पुकारते हैं ।।३ ( ) ।।

वृषा पवस्प धारया । मरुत्वते च मत्सरः ।

विश्वा दधान ओजसा ।।१

तं त्वा धर्त्तारमोण्योः पवमानः स्वर्द्दशम् ।

हिन्वे वाजेषु वाजिनम् । २

अया चित्तो विपानया हरिः पवस्व धारया ।
युज वाजेष चोदय ।३।१०
वृषा शोणो अभिक्रनिक्रदद् गा नदयन्नेषि पृथिवीमुत
द्याम ।
इन्द्रस्येव वग्नुरा श्रण्व आजौ प्रचोदयन्नर्षसि
वाचमेमाम् ।।१
रसाय्यः पयसा पिन्वमान ईरयन्नेषि मधुमन्तमंशुम् ।
पवमान तन्तनिमेषि कृण्वन्निन्द्राय सोम परिषिच्यमानः
।।२
एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् बधस्नुम् ।
परि वर्ण भरमाणो रुशत गव्युर्नो अर्ष
परि सोम सितः ।३।११। (३–३)

हे सोम ! तुम साधकों अभीष्ट फल देते हुये द्रोण कलश में धार रूप से प्रविष्ट होओ । फिर सर्व-ऐश्वर्यदाता जिस इन्द्र के मरुत् सहायक हैं, उनको हम तुम्हें अर्पित करें तो आनन्द देने वाले बनो । १ । हे सिद्ध हुये सोम ! आकाश पृथिवी के धारक, सर्व-दर्शक बली तुम्हें प्रेरित करता हूँ, अन्नादि ऐश्वर्य प्रदान करो । २ । हे सोम मेरी अँगुलियों द्वारा सँस्कारित तू हरे रङ्ग की धार से कलश में जाता हुआ मित्र रूप इन्द्र को संघर्षों में आनन्द दे ।३ (१०) । गौओं को देखकर शब्द करने वाले बैल के समान स्तुतियों से लक्ष्य-प्राप्त होता है । १ । सुस्वादु गो दुग्धादि से मिलकर मधुर हुआ सोम रस भाव को प्राप्त होता है । जलों से सिंचित, शुद्ध, धार रूप में इन्द्र के लिए प्राप्य है ।

।२। हे हर्षयुक्त सोम ! टपकता हुआ, मेघको वर्षाके लिये प्रेरित करता हुआ कलश में जा और श्वेतवर्ण धारण करता हुआ गो-दुग्ध की इच्छा कर ॥३(११)॥

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥१

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे।२।१२

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति।।१

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः
॥२॥१३

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन् वज्रिन भूर्णयः ।
स इन्द्र स्तोमवाहस इह श्रुध्युप स्वसरमा गहि । १
मत्स्वा सुशिप्रित् हरिवस्तनोमहे त्वया भुषन्ति वेधसः
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्य सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ।२।१४।
(३-४)

हे इन्द्र ! हम स्तोता अन्न-प्राप्ति के लिए स्तुतियों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं। अन्य मनुष्य भी तुम्हें रक्षा के लिए बुलाते हुए संघर्ष उपस्थित होने पर पुकारते हैं। १। हे वज्रिन् ! शत्रुओं को ताड़ना देने वाले तेरा हम स्तवन करते हुए ऐश्वय माँगते हैं।२ (१२)। पशु आदि धनों से ऐश्वर्यवान् इन्द्र हम स्तोताओं को सहस्रों धन देता है। उस इन्द्र को जैसे तुमसे बने, वैसे उसकी उत्तम प्रकार से अर्चना करो ॥१॥ जैसे शक्तिमान्

पुरुष शत्रु सेना पर आक्रमण करता है, वैसे ही इन्द्र यजमान के नष्ट करने वाले पर आक्रमण करता हुआ उन्हें मारता है। परम ऐश्वर्यशाली इस इन्द्र के दिये धन यजमानों के पास स्थायी रहते हैं। २(१३)। हे वज्रिन ! तुहें हवि देने वाले यजमान सोम पान करते हैं। तुम मेरे स्तोत्र को इस यज्ञ में सुनो ॥१॥ सुन्दर चिबुक वाले ! स्तुत्य इन्द्र ! तुम्हारी सेवा करने वाले उपस्थित हैं। तुम सोम से तृप्त होओ। सोमों के शुद्ध होने पर अन्न प्राप्त हों ॥२ (१४)॥

यस्ते मदो वरेण्यस्तेना पवस्वान्धसा। देवावीरघशंसहा॥१

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे।
गोषातिरश्वसा असि ॥२

सम्मिश्लो अरुषो भुवः सूपस्थाभिर्न धेनुभिः।
सीदं च्छयेनो न योनिमा ।३।१५

अयं पूषा रयिर्भगः सोमः पुनानो अर्षति।
पतिर्विश्वस्य भूमनो व्यख्यद्रोदसी उभे ॥१

समु प्रिया अनूषत गावो मदाय घृष्वयः।
सोमासः कृण्वते पथः पवमानास इन्दवः ॥२

य ओजिष्ठस्तमा भर पवमान श्रवाय्यम्।
यः पञ्च चर्षणीरभि रयिं येन वनामहे ।३।१६

पूषा मतीनां पवते विचक्षणः सोमो आह्नां प्रतरीतोषसां दिवः। प्राणा सिन्धूनां कलशां अचिक्रददिन्द्रस्य हार्द्याविशन्मनीषिभिः ॥१

मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कविर्नृभिर्यतः परि कोशां असिष्यदत् । त्रितस्य नाम जनयन्मधु क्षरन्निन्द्रस्य वायुं सख्याय वर्धयन् ।।२

अयं पुनान उषसो अरोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृता अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ।३।१७ (३-५)

हे सोम ! देवताओं की कामना और राक्षसों का नाश करने वाला तुम्हारा हर्ष दायक रस है उसके सहित पात्र में प्रविष्ट होओ ।१। हे सोम ! तुम शत्रु-नाशक होते हुये संग्रामसेवी हो । साधक को गौ अश्वादि के दाता हो । २ । हे सोम ! तुम सुन्दर गौओं के दूध से मिश्रित, बाज के समान शीघ्र ही अपने स्थान (कलश) को प्राप्त हुये उज्ज्वल होते हो ।।३ (१५) ।। सर्व पोषक, आराध्य, धन-कारण सोम शुद्ध हुआ पात्र में स्थित हुआ प्राणियों का पालक और आकाश-पृथिवी को अपने तेज से प्रकाशित करता है । १ । परम प्रिय उत्कृष्ट स्पर्धा करती हुई वाणियों से प्रशंसित प्रसिद्ध शुद्ध सोम टपकता रहता है ।। २ ।। हे सोम ! इस शक्तिमान् रस की दुग्धादि से मिलाने के लिये हमें दो । जो रस चारों वर्णों को प्राप्य है उससे हम धन माँगते हैं ।।३ (१६) ।। स्तोताओं को अभीष्ट-दाता दिवस, उषा-काल, आकाश, जल अग्नि को बढ़ाने और चेतना देने वाला प्रशंसित सोम इन्द्र के हृदय में प्रविष्ट होने की इच्छा से कलशों से स्थित होता है । १ । सनातन मेधावी सोम पवित्र होकर कलशों में

जाने के लिए सब ओर प्रवाहित होता है। वह त्रिलोक्यव्याप्त जलों को उत्पन्न करता और मित्र भाव की वृद्धि करता और स्रवता है। २। वर्षक होने से लोकों का कर्त्ता, सोम शुद्ध होता हुआ उषा को प्रकाशित करता है और जलों से समृद्ध होता है। यह सोम हृदयस्थ होने को उत्सुक हुआ इन्द्रियों को दुहता हुआ मग्न करता है ॥३ (१७)॥

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥१
एवा रातिस्तुविमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः।
अधा चिदिन्द्र नः सचा ॥२
मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भवो वाजानां पते।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।३।१८
इदं विश्वा अवीवृधत्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥१
सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥२
पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः।
यदा वाजस्य गोमत स्तोतृभ्यो मंहते मघम्
।३।१९। (३-६)

हे इन्द्र! तू संघर्ष काल में शत्रुओं को नष्ट करने की इच्छा वाला होता है। क्योंकि तू वीर और धीर है, अतः स्तुतियों से प्रसन्न करने योग्य है ॥ १ ॥ ऐश्वर्यवान् इन्द्र! सर्व देवों को

अतः हम साधको को भी अनाधि देकर कर्मवान् बनाइये ।। २ ।। हे अन्न बल के स्वामी इन्द्र ! कर्म-रहित प्रमादी ब्राह्मण के समान तुम मत हो। इस शुद्ध गो-दुग्धादि भावित सोम-पात्र को प्राप्त कर सुखी कर सुखी हो ।।३ (१८) ।। हमारी सभी स्तुतियों ने समुद्र के समान व्यापक, श्रेष्ठ रथी, अन्नों के अधीश्वर, सत्पथ गामियों के रक्षक इन्द्र की पुष्टि की ।। १ ।। हे बल-रक्षक इन्द्र तुम्हारे सख्य-भाव में मग्न हम अन्न युक्त हों और शत्रुओं से भय न मानें। युद्ध विजेता, अपराजित, तुम्हें अभय प्राप्त करने के लिये मनाते हैं। २। इन्द्र तो अनादि काल से धन-दान करता आया है। इसलिये यह यजमान भी ऋत्विजों को गो-अन्नादि धन दक्षिणा में देता है, तब इन्द्र की रक्षक शक्ति बहुत-सा धन देकर भी कम नही होती ।।३।।१९।।

। द्वितीयोऽर्धः ।

ऋषि—जमदग्निः, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निभार्गवो वाः, कविभार्गवः, कश्यपः, मेधातिथिः काण्वः मधुच्छन्दाः वैश्वामित्रः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, सप्तर्षयः, पराशः, पुरुहन्माः, मेध्यातिथिः, काण्वः, वसिष्ठः, त्रितः ययातिर्नाहुष, पवित्रः, सोभरिः, काण्वः, गोपुक्त्यश्वसूक्तिनी काण्वायनो, तिरश्चीः । देवता—पवमानः, सोमः, अग्निः, मित्रावरुणौः मरुत इन्द्रश्च, इन्द्राग्नी, इन्द्रः । छन्द—गायत्री, प्रगाथः, त्रिष्टुप्, बृहती, अनुष्टुप्, जगती काकुभः प्रगाथः, उष्णिक् ।

एते असृग्रमिन्दवस्तिरः पवित्रमाशवः ।
विश्वान्यभि सौभगा ।।१
विघ्नन्तो दुरिता पुरु सुगा तोकाय वाजिनः
त्मना कृण्वन्तो अर्वतः ।।२

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् ।
इडामस्मभ्यं संयतम् ।३।१
राजा मेधाभिरीयते पवमानो मनावधि ।
अंतरिक्षेण यातवे ।।१
आ नः सोम सहो जुवो रूपं न वर्चसे भर ।
सुष्वाणो देववीतये ।।२
आ न इंद्रो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् ।
वहा भगत्तिमूतये ।३।२
तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु महो दिवः ।
चारुं सुकृत्ययेमहे ।।१
संवृक्तधृष्णमुक्थ्यं महामहिव्रतं मदम् ।
शतं पुरो रुरुक्षिणम् ।।२
अतस्त्वा रयिरभ्ययद्रांजानं सुक्रतो दिवः ।
सुपर्णो अव्यथो भरत् ।।३
अधा हिन्वान इन्द्रियं ज्यायो महित्वमानशे ।
अभिष्टिकृद्विचर्षणिः ।।४
विश्वस्मा इत्स्वर्द्दशे साधारणं रजस्तुरम् ।
गोपमृतस्य विर्भरत् ।५।३
इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः
इन्दो रुचाभि गा इहि ।।१

पुनानो वरिवस्कृध्यूर्जं जनाय गिर्वणः ।

हरे सृजान आशिरम् ॥२

पुनानो देववीतय इंद्रस्य याहि निष्कृतम् ।

द्युतानो वाजिभिर्हितः ।३।४। (४–१)

छन्ने की ओर वेग से जाता हुआ यह सोम सब सौभाग्यों के लिये ऋत्विजों द्वारा सुसिद्ध होता है ॥१॥ अन्न-बल का दाता सोम अनेक दोषों को दूर करता हुआ हमारी सन्तानों और पशुओं को सुख देता है । २ । हमारी गौओं के और हमारे लिये दृढ़ अन्न-धन प्रदाता हुये सोम हमारी सुन्दर प्रार्थनाओं को सुनते हैं ॥२ (१) ॥ मनुष्यो के यज्ञ कर्मों में तरल सोम स्तुतियों के साथ ही ऊपर से कलश में गिरते हैं । १ । हे सोम ! दिव्य गुण, पान करने के लिये शोधित किया गया, तू शत्रु को ताड़न करने वाले बल को हमें प्रदान कर। २ । हे सोम ! सैकड़ों गौओं और घोड़ों से युक्त ऐश्वय के हमको प्रदाता बनो ।३ (२) । हे सोम ! आकाशस्थ धनों को हमारे लिये धारण करते हुये तुझ कल्याण रूप को उत्तम कर्मों द्वारा चाहते हैं ॥१॥ उग्र रोगों का नाशक, प्रशंसनीय गुणों का करने वाला, हर्ष-दायक, सैकड़ों की उन्नत्ति करने वाला सोम हमको सुखी करे ॥२॥ हे श्रेष्ठकर्मा सोम ! ऐश्वर्य को प्राप्त होने वाले तुम्हें आकाश तत्वों से बाधा रहित बना कर पत्तो पर प्राप्त करते हैं । (३) । कर्म-द्रष्टा, अभीष्टदायक सोम फल को प्रेरित्त करता हुआ उत्तम महिमा वाला होता है ॥४॥ जल प्रेरक, यज्ञ-रक्षक, सब देवगण के लिये समान रूप से होने वाले सोम ! उत्तम पत्तो में प्राप्त हुये ।५। (३) । ऋत्विजों

द्वारा शोधित सोम ! तू हमारे लिये धार युक्त हुआ पात्र में गिर तथा पशुओं को भी प्राप्त हो । १ । वाणी द्वारा स्तुत्य हरित वर्ण वाले सोम ! दूध में डाल कर शुद्ध किया जाता हुआ तू साधकों को अन्न-धन प्राप्त कराने वाला बन । २ । हे सोम ! हवि धारक यजमानों से दीप्त यज्ञ के लिये शुद्ध हुआ हितकारी तू इन्द्र के स्थान को प्राप्त हो ॥३ (४) ॥

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा ।

हव्यवाड् जुह्वास्यः ॥१

तस्त्वाग्ने हविष्पतिर्दूतं देद सपर्यति ।

तस्य स्म प्राविता भव ॥२

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति ।

तश्मै पावक मृडय ।३।५

मित्रं हुदे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।

धियं घृताचीं साधन्ता ॥१

ऋतेन मित्रावरुणाघृता वृधवृतस्पृशा ।

क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥२

कवी नो मित्रावरुणा तुविजाता उरुक्षया ।

दक्षं दधाते अपसम् ।३।६

इंद्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा ।

मंदू समानवर्चसा ।।१

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञि-
यम् ।।२
वीडु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्त्रिया अनु ३।।
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् ।
इन्द्राग्नी न मर्धतः ।
उग्रा विघानिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे ।
ता नो मृडात ईदृशे ।।२
हथो वृत्राण्यार्या हथो दासानि सत्पती ।
हथो विश्वा अप द्विषः ।३। ८ (४–२)

मेधावी गृहस्थ का रक्षक युवा हविवाहक अग्नि आह्वानीय अग्नि से मिलकर उत्तम प्रकार से प्रज्वलित होता है ।। १ ।। हे अग्ने ! जो हविदाता देवताओं को हवि प्राप्त कराने वाले तुम्हारी उपासना करता है उसके तुम अवश्य रक्षक हो ।।२।। हे अग्ने ! जो देव-यजन करने वाला हवियुक्त यजमान तुम्हारे पास आकर उत्तम कर्म करता है, उसे सुखी बनाओ ।।३ (५) ।। बल वाले मित्र और हिंसकों के भक्षक वरुण का इस यज्ञ में हवि देने के लिए आह्वान करता हूँ। वे दोनों पृथिवी पर जल पहुँचाने वाले कर्म में सिद्धहस्त हैं ।।१।। हे मित्र और वरुण ! तुम सत्य और यज्ञ को पुष्ट करते हो। इस साँगोपाङ्ग सोम-याग को तुम सत्य से पूर्ण करते हो । २ । मेधावी, उपकार के लिए उत्पन्न यजमान के यहाँ स्थित, मित्र और वरुण हमारे कर्म और बलको दृढ़ करने वाले हैं ।। ३ (६) ।। सदा प्रसन्न तेजस्वी मरुद्गण

निडर इन्द्र के साथ सबको दर्शन दें ॥१॥ वर्षा-ऋतु के पश्चात् होने वाले अन्न जल के लिये यज्ञ धारक मरुद्गण मेघों को पुनः प्रेरित करते हैं । २ । हे इन्द्र अग्ने तुमने दृढ़ स्थान को भेदने वाले वाहक मरुद्गणों के साथ गुफा में गौओं को प्राप्त किया ।३ (७) । उन इन्द्र और अग्नि को बुलाता हूँ जिनका पूर्व काल में किया हुआ पराक्रम ऋषियो द्वारा स्तुत्य है । वे दोनों साधकों के हिंसक नहीं हैं, अतः हमारी रक्षा करें । १ । महाबली, शत्रु-नाशक इन्द्र और अग्नि को हम बुलाते हैं । वे इस संघर्ष में हमें देखें ॥ २ ॥ हे इन्द्र और अग्ने ! तुम कर्मवानों के सकट दूर करते हो । सत्पुरुषों के रक्षक तुम कर्महीनों के उपद्रवों को शत्रुओं सहित नष्ट करते हो ॥ ३ (८) ॥

अभि सोमास आयवः पवन्ते मद्यं मदम् ।

समुद्रस्याधि विष्टपे मनीषिणो मत्सरासो मदच्युतः ॥१

तरत्समुद्रं पवमान ऊर्मिणा राजा देव ऋतं बृहत् ।

अर्षा मित्रस्य वरुणस्य धर्मणा प्र हिन्वान ऋत बृहत् ॥२

नृभिर्येमाणो हर्यतो विचक्षणो राजा देवः समुद्रयः ।२।६

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम् ।

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः ॥१

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

सोमः सुत ऋच्यते पवमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥२

एवा नः सोम परिषिच्यमानः आ पवस्व पूयमानः स्वस्ति । इन्द्रमा विश बृहता महेन वर्धया वाचं- जनया पुरन्धिम् ।३ १० (४-३)

गतिमान् मन वाले, हर्ष प्रदायक, तरल सोम कलश के ऊपर छन्ने पर गिरकर रस निकालते हैं । १ । शुद्ध होता हुआ दिव्य सत्य रूप सोम धार बनकर कलश में जाता और प्रेरित हुआ वह मित्र और वरुण के लिये निकलता है । २ । ऋत्विजो द्वारा शोधित,इच्छा करने योग्य, विशेष इष्ट दिव्य अन्तरिक्षस्थ सोम इन्द्र के लिये शुद्ध किया जाता है ॥३ (९)॥ यजमान सोम रूप तीन वाणियों को बोलता हुआ यज्ञ-धारक सोम की कल्याण करने वाली वाणी बोलता है । गौयें बछड़ो को प्राप्त होने के स्थान पर सोम को दुग्ध-युक्त बनाने के लिये प्राप्त होती हैं, तब अभीष्ट वाले साधक स्तवन करते हैं ।१। तृप्तिकारक धेनु सोम की इच्छा करती है । स्तोता सोम की स्तुति करते हैं । सँस्कारित सोम को ऋत्विज शुद्ध करते हैं । हमारे द्वारा बोले गये मन्त्र को बढ़ाते हैं ॥ २ ॥ हे सोम ! पात्रों में सींचा जाने वाला तू हमारे कल्याण को हर्षप्रदायक रूप से इन्द्र के हृदय में प्रवेश करे ॥१॥ (१०) ॥

यद्याव इन्द ते शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१
आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्मां अव मघवन् गोमति व्रजे-
वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।२।११

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ।१
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गमदिन्द्र स्वब्दीव वंसगः ।२
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ।३।१२
तरणिरित्सिषासति वाजं पुरन्ध्या युजा ।
आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम् ।१
न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन् मघवं तुभ्यं मावते देष्णं-
यत्पार्ये दिवि ।।२।।१३ (४–४)

हे इन्द्र ! आकाश-पृथ्वी भी तुम्हारी समता नहीं कर सकते, हे वज्रिन् ! हजारों सूर्य भी तुम्हारे प्रकाश से समता नहीं कर सकते।१। हे अभीष्ट-पूरक इन्द्र ! तुम अपने बल से हमको पूर्ण करते हो। वज्रधर, हमारा पालन करो। २ (११)। हे इन्द्र ! जल के समान नम्र हुये तुम्हें प्राप्त करते हैं। हे व्यापक इन्द्र ! सिद्ध सोम की प्राप्ति पर स्तोता तुम्हारी स्तुति उच्चारण करते हैं। सोम के लिये तृषित हुआ तू हर्षयुक्त कब आवेगा ? ।१-२। हे चतुर साधकों को अन्न-धन देने वाले इन्द्र ! सुवर्ण धन ओर गवा द को हम माँगते हैं। ३ (१२)। शीघ्रकर्मा बुद्धिमान पुरुष कर्मों द्वारा अन्न प्राप्त करता है। अनेकों द्वारा स्तुत्य इन्द्र

को मैं उपयुक्त करता हूँ। १। धन दाताओं के लिए बुरे शब्द नहीं कहे जाते। धन देने वाले की प्रशंसा न करने वाले को धन नहीं मिलता। हे धनिक इन्द्र! सोम संस्कार के समय देय धन को सुन्दर स्तुति गाने वाला ही तुमसे प्राप्त करता है ।।२(१३)।।

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः।

हरिरेति कनिक्रदत् ।।१

अभि ब्रह्मीरनूषत यह्वीर्ऋतस्य मातरः

मर्जयन्तीर्दिवः शिशुम् ।।२

रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।

आ पवस्व सहस्रिणः ।३।१४

सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः।

पवित्रवन्तो अक्षरं देवान् गच्छन्तु वो मदाः ।।१

इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्।

वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसः ।।२

सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः।

सोमस्पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ।३।१५

पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः।

अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तः सं तदाशत ।।१

तपोष्पवित्रं विततं दिवस्पदेऽर्चन्तो अस्य तन्तवो व्यस्थिरन्

अवन्त्यस्य पवितारमाशवो दिवः पृष्ठमधि रोहति तेजसा२

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा मिमेति भुवनेषु वाजयुः। मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ।३।१६ (४-५)

ऋत्विजगण तीन वेद-वाणियों को बोलते हैं। दुधारू धेनु रँभाती हैं हरे रङ्ग का सोम शब्द को करता हुआ कलशों में जाता है ॥१॥ यज्ञों की निर्मांत्री स्तुतियाँ आकाश से शिशु-रूप सोम को रवित्र करती हुई लाती हैं ॥१॥ हे सोम ! धन वाले चारों पदार्थों को हमारे लिये दो तथा सहस्रों अभीष्टों को सिद्ध करो ॥३ (१४) ॥ अत्यन्त मधुर, हर्षयुक्त, सस्कारित सोम इन्द्र के लिये प्राप्त होते हैं। हे सोम ! तुम्हारे रस इन्द्रादि को प्राप्त हों ॥१॥ इन्द्र के लिये सोम कलशों में गिरता है। स्तोता कहते हैं कि स्तुति-पालक बलवान् विश्वेश्वर सोम स्तुतियों से पूजा जाता है ॥१॥ स्तुति-प्रेरक धनेश, इन्द्र का मित्र रूप रस सहस्रों धार वाला सोम कलश में जाता है ।४ (१५)। हे मंत्रेश ! तेरा शोधित अङ्ग विस्तृत है। तू शरीर को प्राप्त होता है। व्रतो से न तपा हुआ शरीर व्याप्त नहीं होता। परिपक्व होने पर ही वह तुझे चख पाता है। शत्रु-तापक सोम का शुद्ध अङ्ग उच्चता को प्राप्त है। इसकी दीप्ति अनेक प्रकार स्थित होती है। इसका शीघ्र प्रभावकारी रस यजमान का रक्षक होता है ॥१॥ उषा वाला सूर्य प्रकाशवान है। बल वर्षक सब लोकों में वर्षा करता हुआ अन्न चाहता है। रचियता इस सोम शक्ति से संसार को रचता हुआ मनुष्यों को द्रष्टा पालक पितरों द्वारा गर्भ धारथ कराता ॥२-३ (१६) ॥

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे उपस्तुतासो अग्नये ॥१

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः ।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्भवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत्
॥२॥१७

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृक्षु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ।
येन ज्योतींष्यायवे मानवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥२
तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥३॥१७
श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥१
यस्त इन्द्र नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥२
तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥३॥१८ (४-६)

हे स्तोताओ ! तुम परम दान देने वाले, यज्ञ-कारण, महान् तेजस्वी अग्नि की प्रार्थना करो ॥१॥ धन अन्न वाले यशस्वी प्रदीप्त अग्नि, पुत्र-युक्त अन्न को यजनकर्त्ता को देता है। इस अग्नि के द्वारा हम सुमति को प्राप्त करें ॥२ (१७)॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे अभीष्टपूरक, शत्रु-नाशक, लोक रचियता रूप ओर सोम-पीने से उत्पन्न आह्लाद की सब प्रशंसा करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! जिस शक्ति से तुमने आयु वाले वैवस्वत मनु के लिये

सूर्यादि के तत्वों को प्रकाशित्त किया, उसी शक्ति से हर्षित हुये तुम सुशोभित होते हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे प्रसिद्ध पराक्रम की मन्त्र-ज्ञाता ऋषि प्रशंसा करते हैं। तुम जलों के प्रति मेघ को वश में रखने वाले हो ॥३ (१६) ॥ तुमको हवि देकर उपासना करने वाले ऋषि के आह्वान को सुनी और हे इन्द्र ! हमको श्रेष्ठ पुत्र तथा गवादि पशु युक्त धन देकर पूर्ण बनाओ, क्योंकि तुम महान् हो ॥ १ ॥ जो पुनः पुनः अत्यन्त नूतनस्तुतियों को तुम्हारे लिये रचता है, उस स्तोता को सनातन सत्य से वृद्धि को प्राप्त हुई बुद्धि दो ॥ २ ॥ हम पूर्वोक्त इन्द्र का ही स्तवन करते हैं। जिस इन्द्र की बुद्धि का कारण हमारी स्तुतियाँ हैं, उसके अनेक पराक्रमों की प्रशंसा करतेहुये हम अर्चन करते हैं ॥३ (१८) ॥

तृतीय प्रपाठकः

ऋषिः—अकृष्टा भाषाः, अमहीयुः, मेध्यातिथि,, बृहन्मति,, भृगुवारेणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा, सुतंभर आत्रेयः गृत्समदो गौमतो राहुगणः, वसिष्ठः, दृढच्युत आगस्त्यः सप्तर्षतः, रेभः काश्यपः पुरुहन्माः, असितः काश्यपो देवलो वा, शक्तिः, उरुः, अग्निश्चाक्षुषः, प्रतर्दनो देवोदासिः, प्रयोगो भार्गव अग्निर्वा पावको बार्हस्पत्यः गृहपतियनिष्ठौ सहसः सुतौ तयोर्वान्यतरः भृगुः। देवता—पवमानः सोमः, अग्निः, मित्रावरुणौ, इन्द्रः, इन्द्राग्निः।

छन्द–जगती, गायत्री, प्रगाथः अनुष्टुप् जगती, बृहती, काकुभः, प्रगाथः उष्णिक्, त्रिष्टुप्

प्र त आश्विनीः पवमान धेनवो दिव्या असृग्रन्
पयसा धरीमणि ।
प्रान्तरिक्षात् स्थाविरीस्ते असृक्षत ये त्वा मृजन्त्यृषि-
षाण वेधसः ॥१
उभयतः पवमानस्य रश्मयो ध्रुवस्य सतः परि यन्ति
केतवः ।
यदी पवित्रे अधि मृज्यते हरिः सत्ता नि योनौ कलशेषु
सीदति ॥२
विश्वा धामानि विश्वचक्ष ऋभ्वसः प्रभोष्टे सतः परि-
यन्ति केतवः ।
व्यानसी पवसु सोम धर्मणा पतिर्विश्वस्य भुवनस्य
राजसि ॥३ ॥१
पवमानो अजीज नद्दिवश्चित्रं न तन्यतुम् ।
ज्योतिर्वैश्वानरं बृहत् ॥१
पवमान रसस्तव मदो राजन्नदुच्छुनः ।
वि वारमव्यमर्षति ॥२
पवमानस्य ते रसो दक्षो वि राजति द्युमान् ।
ज्योतिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥३॥२
प्रयद् गावो न भूर्णयस्त्वेषा अयासो अक्रमुः ।
घ्नन्तः कृष्णामप त्वचम् ॥१
सुविस्य वनामहेऽति सेतुं दुराय्यम् ।

साह्याम दस्युमव्रतम् ॥२

शृण्वे वृष्टेरिव स्वनः पवमानस्य शुष्मिणः ।
चरन्ति विद्युतो दिवि ॥३

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् ।
अश्ववत् सोम वीरवत् ॥४

पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण ।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः ॥५

परि णः शर्मयन्त्या धारया सोम विश्वतः ।
सरा रसेव विष्टपम् ॥६॥३। (५-१)

हे सोम तेरी तृप्तिदायक धारायें दूध से मिली कलश को प्राप्त होती हैं। ऋषियों द्वारा सेवित जिन्हें जो ऋत्विज शुद्ध हैं, वह तुम्हारी धाराओं को उपर से पात्रों में डालते हैं ॥१॥ संस्कारित सोम की किरणें सर्वत्र फैलती हैं। जब वह शुद्ध किया जाता हैं तब पात्रों में भरा जाता है ॥२॥ हे सर्वद्रष्टा सोम! तेरी शक्तिमान् किरणें सब देवताओं को प्रकाशित करती हैं। हे व्यापक स्वभाव वाले! तू रस निचुड़ने पर पवित्र होता है ॥३॥ (१) ॥ शुद्ध हुआ सोम वैश्वानर ज्योति को आकाश के समान प्रकट करने वाला है ॥१॥ हे उज्ज्वल तरल रूप सोम! तेरा रस दुष्टों को वर्जित है। वह शुद्ध हुआ पात्रों को पूर्ण करता है ॥२॥ हे सोम! शुद्ध किया जाता तू बलदायक उज्ज्वल रस से युक्त हैं और व्यापक तेज को देखने की शक्ति देने वाला होता है ॥३ (२) ॥ जलों के समान वेगवान्, उज्ज्वल, गतिमान् काले धब्बे वाली त्वचा को हटाते हुये जो सोम पात्रों में स्थित हुये उनका हम स्तवन करते हैं ॥ ॥ सुन्दर रूप से प्राप्त हुये सोम

को राक्षसों के बन्धन से बचने को प्राप्त होतेहैं। हम कर्म-रहित दुष्टों के दमन में समर्थ हों ।।२।। वर्षा के शब्द के समान संस्कृत सोम का शब्द रस गिरने के समय सुनाई देता है। उस बलशाली सोम का प्रकाश अन्तरिक्ष में घूमता हैं ।। ३ ।। हे पात्र स्थित सोम ! तुम गौ, अश्व, सन्तान और सुवर्ण बाले बहुत से धानों को प्रदान करने वाले होओं ।।४।। हे विश्वद्रष्टा सोम ! अपने रस से आकाश-पृथिवी को भर दो जैसे सूर्य दिन को अपनी रश्मियों से भर देता है ।।५।। हे सोम ! हमको सुखी बनाने वाले धार को पृथिवी के जलों में अविष्ट कर सर्वत्र प्रवाहित करो ।।६ (३) ।।

आशुरर्ष बृहन्मते परि प्रियेण धाम्ना ।

यत्रा देवा इति ब्रुवन् ।।१

परिष्कृण्वन्ननिष्कृतं जनाय यातयन्निषः ।

वृष्टिं दिवः परि स्रव ।।२

अयं स यो दिवस्परि रघुयामा पवित्र आ ।

सिन्धोरूर्मा व्यक्षरन् ।।३

सुत एति पवित्र आ त्विषिं दधान ओजसा ।

विचक्षाणो विरोचयन् ।।४

आविवासन् परावतो अथो अर्वावतः सुतः ।

इन्द्राय सिच्यते मधु ।।५

समीचीना अनूषत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥६॥४
हिन्वन्ति सूरमुस्रयः स्वसारो जामयस्पतिम् ।
महामिन्दुं महीयुवः ॥१
पवमान रुचारुचा देव देवेभ्यः सुतः ।
विश्वा वसून्य विश ॥२
आ पवमान सुष्टुतिं वृष्टिं देवेभ्यो दुवः ।
इषे पवस्व संयतम् ॥३॥५ (५-२)

हे महती बुद्धि वाले सोम ! देव-प्रिय धार रूप से इन्द्रादि के निकट शीघ्र प्राप्त होओ ॥ १ ॥ संस्कार-रहित यजमान को संस्कार करता हुआ उसे अन्न प्राप्त कराने वाली वर्षा का कारण भूत हो ॥२॥ दिव्य लोक में मन्द गति वाला सोम ऊपर से डाला जाकर शुद्ध होता हुआ जल रूप टपकता हैं ॥३॥ सिद्ध सोम उज्ज्वल हुआ सर्वदर्शक बनकर देवताओं को दीप्त करता हुआ बल सहित प्राप्त होता है ॥४॥ सिद्ध सोम दूर और पास के देवताओं को रस पान करता हुआ मधु के समान छाना जाता है ॥५॥ कर्म प्रेरणा वाली वन्धुभाव से मिली हुई अंगुलियाँ सोम को शुद्ध करने की इच्छा वाली हुईं सोम को पात्रों में भरती हैं ॥१॥ तेज से दमकते हुये सोम ! तू देवताओं के लिये शुद्ध किया गया हमको बहुत सा धन दिलाने वाला हो ॥ २ ॥ हे सोम ! उत्तम स्तुत्य वर्षा को देव.परिचर्या के लिये प्राप्त कराओ हमें अन्न प्राप्त कराने को ठीक प्रकार से वर्षा करो ॥३ (५) ॥

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे ।

घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्वि भाति भरतेभ्यः
शुचिः ॥१
त्वामग्ने अंगिरसो गुहा हितमन्वविन्दं च्छिश्रियाणं
वने वने ।
ह जायसे मथ्यमानः सहो महत्वामाहुः
सहसस्पुत्रमंगिरः ॥२
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितमग्नि नर स्त्रिषधस्थे
समिन्धते ।
इन्द्रेण देवैः सरथं स बर्हिषि सीदन नि होता यजथाय
सुक्रतुः ॥३॥६
अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।
ममेदिह श्रुतं हवम् ॥१
राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।
सहस्रस्थूण आशाते ॥२
ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।
सचेते अनवह्वरम् ॥३॥७
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः ।
जघान नवतीर्नव ॥१
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद्विदच्छर्यणावति ॥२
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् ।
इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥३॥८

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः ।
अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१
शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥२
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये ।
मा नो रीरधतं निदे ॥३।९। (५-३)

यजमान की रक्षा करने वाला, महाबली अग्नि, लोक-कल्याण के लिये प्रकट हुआ। फिर घृत से प्रदीप्त आकाशगामी तेज से युक्त ऋत्विजों के लिये प्रकाशवान हुआ ॥१॥ हे अग्ने ! ऋषिगण गुफाओं में वृक्षों द्वारा तुम्हें प्राप्त करते हैं। तुम मथे जाने पर प्रकट हुये को बल का पुत्र कहा जाता हैं ॥२॥ कर्मवान् ऋत्विज, यजमानों गारा आगे किये अग्नि को तीन स्थानों में ज्वलित करते हैं। फिर वह अग्नि देवताओं को आह्वान करने वाला यज्ञ के लिये प्रतिष्ठित किया जाता है ॥ ३ (६) ॥ सत्य को वृद्धि करने वाले मित्र और वरुण देवों के लिये यह सोम सिद्ध किया है, अतः वे इस यज्ञ में पधारें ॥१॥ ईश्वर के अनुगन मित्र और वरुण सहस्र स्तम्भ वाले उत्तम सभा-मंड़प में पधारें ॥२॥ सवके शासक, घृतभोजी, अदिति पुत्र, धनादिपति वह मित्र-वरुण हवि को यजमान के लिये सेवन करते हैं ॥३ (७) अनुकूल विचार वाले इन्द्र ने दधीचि की अस्थियों से नव्वे संघर्षों में आठ सौ दस राक्षसों को मारा ॥१॥ पर्वतों में स्थित दधि के सिर की कामना करते हुये इन्द्र ने उसे जाना और उससे राक्षसों को नष्ट किया ॥२॥ चन्द्र मंडल में सूर्य की किरणें हैं, वे अन्तर्हित हुईं रात्रि के समय प्रतिबिम्वित होती हैं, यह इन्द्र जानता है ॥३ (८) ॥ हे अग्ने और अग्ने ! तुम्हारे लिये मेघ के समान यह

मुख्य स्तुतियाँ, करने वालों ने रची ॥ १ ॥ हे इन्द्र और अग्ने ! स्तुति करने करने वालों की प्रार्थना पर ध्यान दो । तुम ईश्वर रूप होते हुये हमारे कर्मों का फल प्रदान करो ॥२॥ हे कर्म की प्रेरणा करने वाले इन्द्र और अग्ने ! हमें दीन मत बनाओ शत्रु द्वारा हिंसा के लिये और मेरी निन्दा के लिये मुझ पर अधिकार न करो ॥३ (६) ॥

पवस्व दक्षसाधनो देवेभ्यः पीतये हरे ।
मरुद्भ्यो वायवे मदः ॥१
सं देवैः शोभते वृषा कविर्योनावधि प्रियः ।
पवमानो अदाभ्यः ॥२
पवमान धिया हितोऽभि योनिं कनिक्रदत् ।
धर्मणा वायुमरुहः ॥३॥१०
तवाहं सोम रारण सख्य इन्दो दिवेदिवे ।
पुरूणि बभ्रो नि चरन्ति मामव परिधीं रति ताँइहि ।१
तवाहं नक्तमुत सोम ते दिवा दुहानो बभ्र ऊधनि ।
घृणा तपन्तमति सूर्यं परः शकुना इव पप्तिम ॥२॥११
पुनानो अक्रमीदभि विश्वा मृधो विचर्षणिः ।
शुम्भन्ति विप्रं धीतिभिः ॥१
आ योनिमरुणो रुहद्गमदिन्द्रो वृषा सुतम् ।
ध्रुवे सदसि सीदतु ॥२
नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।
आ पवस्व सहस्रिणम् ॥३॥१२॥ (५-४)

हे पाप-नाशक सोम ! तू बल और हर्ष को उत्पन्न करने वाला देवताओं के लिये पात्र में जा ॥१॥ कामनाओं का वर्षक उज्ज्वल स्वस्थान को तृप्त प्राप्त कर 'सिद्ध सोम देवताओं को तृप्तिदायक हुआ सुशोभित होता है ॥२॥ हे सोम ! हमारी अँगुलियों से सिद्ध हुआ तू शब्द सहित बायु वेग से पात्र में जा ॥३ (१०) ॥ हे स्रवित सोम ! तुम्हारे मित्र-भाव में लगा हुआ में यह चाहता हूँ कि तुम्हारे सख्य भाव को प्राप्त हुये अनेक दैत्य बाधक हो गये हैं उनका नाश करो ॥१॥ हे सोम ! मैं दिन-रात तुम्हारी मित्रता चाहता हुआ तुझ दीप्तिमान को प्राप्त करूँ ॥२ (११) ॥ संस्कार किया जाता सोम सोम हिंसकों को प्रबल होता है । हम उसकी स्तुति करते हैं ॥१॥ सोथ के कलश में स्थित होने पर अभीष्ट इन्द्र शोधित सोम को प्राप्त करता है ॥२॥ हे पात्र में प्रविष्ट होने वाले सोम ! शीघ्र ही बहुसंख्यक धन को प्रदान कर ॥३ (१२) ॥

पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा यं तु सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यस्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममन्तु ॥२
बोधा सु मे मघवन् वाचमेमां यां ।
ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥१३
विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः
सजूस्तयक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्र मौजिष्ठं तरसं तरस्विनम्।१

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरे ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥१
समु रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्व पतिर्यदी वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥३॥१४
यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठं यो वृत्रहा गृणे ॥१
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्त्तरि ।
हस्तेन वज्रः प्रति धायि दर्शतो ।
महान्देवो न सूर्यः ॥२॥१५ (५-३)

हे इन्द्र ! सोम-पान करो, वह तुम्हारे लिए आनन्ददायक हो । पाषाणों द्वारा निष्पन्न सोम तुम्हें आनन्दित करे ॥१॥ हे इन्द्र ! तेरे योग्य हर्ष हर्षप्रदायक सोम, जिसे पीकर राक्षसों को करते हो तुम्हारे लिये आनन्ददायक हो ॥२॥ हे इन्द्र ! उत्तम जितेन्द्रिय पुरुष तुम्हारी जिस स्तुति रूप वाणी को कहता है, उस वाणी को स्वीकार कर यज्ञशाला में अन्न रूप हवि ग्रहण करो ॥३॥ (१३) ॥ सभी संघर्षों को मिटाने वाले इन्द्र को साधकगण एकत्रित हुये, स्तुतियों द्वारा सूर्य रूप इन्द्र का हम आह्वान कर विघ्न और शत्रुओं के नाश के लिये उस महाबली इन्द्र का स्तवन करते हैं ॥१॥ हे स्तुति करने वालों ! किसी से भी बैर न करने वाले तेजस्वी तुम स्तुति और कर्म करने वाले हो, अतः इन्द्र की उत्तम प्रकार से स्तुति करो ॥२॥ सोम को पीने के लिये स्तोता इन्द्र की स्तुति करते हैं । जब वह वृद्धि करने की इच्छा करता है तब रक्षा-साधनों से पूर्ण होता है ॥३ (१४) ॥ मनुष्यों

के स्वामी इन्द्र की गति कोई नही रोक सकता । मैं उस शत्रु-नाशक का स्तवन करता हूँ ॥१॥ हे शत्रु-नाशक इन्द्र की उपासना करनेवाले यजमान ! रक्षा के लिये इन्द्र को हवि दे। वह शत्रु के प्रति तीक्ष्ण और तुझ पर अनुग्रह करने वाला महान् है ॥२ (१५) ॥

परि प्रिया दिवः कविर्वयांसि नप्त्योर्हितः ।
स्वानैर्याति कविक्रतु ।१

स सूनुर्मातरा शुचिर्जातो जाते अरोचयत् ।
महान्मही ऋतावृधा ॥२

प्रप्र क्षयाय पन्यसे जनाय जुष्टो अद्रुहः ।
वीत्यर्ष पनिष्टये ।३।१६

त्वं ह्यांग दैव्य पवमान जनिमानि द्युमत्तमः ।
अमृतत्वाय घोषयन् ।१

येना नवग्वा दध्यङ्ङ पोर्णुते येन विप्रास आपिरे ।
देवानां सुम्ने अमृतस्य चारुणो येन श्रवांस्याशत ।२ १७

सोमः पुनान ऊर्मिणाव्यं वारं वि धावति ।
अग्रे वाचः पवमानः कनिक्रदत् ।१

धीभिर्मृजन्ति वाजिनं वने क्रीडंतमत्यविम् ।
अभि त्रिपृष्ठं मतयः समस्वरन् ।२

असर्जि कलशां अभि मीढ्वान्तसप्तिर्न वाजयुः ।
पुनानो वाचं जनसन्नसिष्यदत् ।३।१८

सोमः पवते जनिता मतीनां जनीता
दिवो जनिता पृथिव्याः ।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्य्यस्य
जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥१
ब्रह्मः देवानाँ पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां
महिषो मृगाणाम् ।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः
पवित्रमत्येति रेभन् ॥२
प्रावीविपद्वाच ऊर्मि न सिन्धुर्गिर
स्तोमान पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यनवृजनेमावराण्ता
तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥३॥१८॥ (५-६)

कर्म साधक बुद्धि का दाता मेधावी सोम पाषाणों से निष्पन्न अध्वर्युओं द्वारा प्राप्तव्य है ॥१॥ सब हवियों में उत्तम वह सोम यज्ञ की वृद्धि करने वाला विश्व नियंता सूर्य मण्डल और पृथिवी को प्रकाशित करने वाला है ॥२॥ हे सोम। बैर-रहित उपासक द्वारा मनुष्य के सेवन के लिये पर्याप्त तू स्तुति के लिये यहाँ आ ॥३ (१६)॥ हे दिव्य सोम! तू शीघ्र शब्द-वान हुआ अमरत्व को प्राप्त कराने वाला हो ॥१॥ श्रेष्ठ ऋषि जिस सोम से यज्ञ के द्वार को खोलता है, ऋत्विज जिस सोम से इन्द्रादि को सुख देता है, वह सोम श्रेष्ठ जल-युक्त अन्न को-यजमान को प्राप्त करावे ॥२ (१७)॥ सिद्ध होता हुआ सोम

ऊन के छन्ने में अपने धार से जाता हुआ स्तोत्र को प्राप्त हुआ शब्द कराता है ॥१॥ ऋत्विजगण जल में क्रीड़ा करते हुये सोम को अँगुलियों से शुद्ध करते और कलश में जाते हुये सोम की स्तुतियों द्वारा प्रशंसा करते हैं ॥२॥ यजमानों को अन्न की इच्छा करने वाला सोम युद्ध में छोड़े जाने वाले अश्व के समान जोड़ा गया, शब्द करता हुआ पात्रों में स्थित होता है, ॥३ (१९) बुद्धि का जनक, आकाश का प्रकाशक, इन्द्र और विष्णु को भी प्रकट करने वाला सोम पात्रों में जाता है ॥१॥ ऋत्विज-श्रेष्ठ ब्रह्म परम मति से पद योजना करने वाले सोम को शब्द करते हुए छानते हैं ॥२॥ प्रवाहित नदी जैसे शब्द समूह को प्रेरित करती है, उनके समान सोम मन के प्रिय शब्दों से प्रेरणा देता है। वह विजय के ज्ञान वाला पराक्रम को प्राप्त कराता है ॥३ (१९) ॥

अग्निं वो वृधन्तमध्वराणां पुरूतमम् ।

अच्छा नप्त्रे सहस्वते ॥१

अयं यथा आभुवत् त्वष्टा रूपेण तक्ष्या ।

अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥२

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।

आ वाजैरुप नो गमत् ॥३॥ २०

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।

शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन् धारा ऋतस्य सादने ॥१

न किष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।

न किष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे ॥२

इन्द्राय नुनमर्चतोक्थानि च ब्रवीत ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सह ।३।२१
इन्द्र जुषस्व प्र वहा याहि शूर हरिह ।
पिबा सुतस्य मतिर्न मधोश्चकानश्चारुर्मदाय ।१
इन्द्र जठरं नव्यं ह पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वार्णोप त्वा मदाः सुवाचो अस्थु ।२
इन्द्र तुराषाण्मित्रो न जघान वृत्रं यतिर्न ।
बिभेद बलं भृगुर्न ससाहे शत्रू न्
मदे सोमस्य ॥३॥२२ (५-७)

हे ऋत्विजो ! बलवानों के मित्र लपटों से वृद्धि को प्राप्त हुये अग्नि को प्राप्त करो ॥१॥ बढ़ई जैसे अपने कार्यानुकूल काष्ठों को प्राप्त होता है वैसे यह अग्नि हमको प्राप्त हो और हम इस अग्नि के विज्ञाता हुये यशस्वी बनें ॥२॥ सब देवताओं में यह अग्नि ही मनुष्य के वैभव को प्राप्त होता है। वह अग्नि हमें अन्नों के साथ मिले ॥३ (२०)॥ हे इन्द्र ! आनन्ददायक प्रशंसनीय, जो अन्य मादक द्रव्यों के समान अहितकर नहीं है, ऐसे संस्कारित सोम का पान करो। यज्ञशाला में स्थित सोम की उज्ज्वल धारायें तुम्हें प्राप्त होने को झुकती है ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य कोई रथी नहीं है, तुम्हारे समान बलवान भी कोई नहीं है, उत्तम अश्व-पालक भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता ॥२॥ हे ऋत्विजो ! इन्द्र की शीघ्र पूजा करो उत्तम मन्त्रोच्चार द्वारा यह शुद्ध सोम इन्द्र के लिये आनन्द देने वाले बनें फिर इस अत्यन्त प्रशंसित इन्द्र को प्रणाम करो ॥३ (२१)॥ हे वीर्यवान् इन्द्र ! मेरे द्वारा दी गई हवियों को आकर ग्रहण करो।तुम आनन्दित प्राप्ति की इच्छा करते हुये इस

संस्कारित, चेतनाप्रद सोम का पान करो। १। हे इन्द्र ! इस संस्कारित मधुर सोम के स्तुत्य दिव्य गुण और आह्लाद तुम्हारे समीप उपस्थित हैं। तुम स्वर्ग तुल्य अपने उदर को इससे भर लो। २। हे युद्ध में धीर इन्द्र ! मित्र के समान शत्रु का संहार करते हुये, दुष्टों के बल को हटाते हुये, सोम की तरङ्ग में साहसी कर्म करने वाले हो ॥३ (२२) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋषि—अकृष्टा भाषाः, निवावरी पूश्तयोऽजास्त्रयः ऋणिगणाः कश्यपः, असितः काश्यपो देवलो वा, अवत्सारः, जमदग्नि अरुणो वैतहव्याः उरुचक्रिरात्रेयः कुरुसुतिः काण्वः, भरद्वाजो बार्हस्त्यः, भृगुर्वारुणिजमदाग्नि-भार्गवो वाः सप्तर्षयः, गोतमो राहूगणः, ऊर्ध्वसद्‌मा, कृतयशः, त्रितः, रेभसूनू काश्यपौ, मन्युर्वासिष्ठः वसुश्रुत आत्रेयः, नृमेधः। देवता—पवमानः सोमः, अग्निः, मित्रावरुणौ, इन्द्रः, इन्द्राग्नी। छन्द—जगती, गायत्री, बृहती, षङ्क्ति काकुभः प्रगाथः, उष्णिक्, अनुष्टुप्, त्रिष्टुम्।)

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इंदो भुवनेष्वर्पितः।

त्वं सुत्वोरो असि सोम विश्ववित्तं

त्वा नर उप गिरेम आसते ॥१

त्वं नृचक्षा असि सोम विश्वतः पवमान वृषभ ता वि धावसि।

स नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवद्वयं स्याम भुवनेषू जीवसे ॥२

ईशान इमा भुवनानि ईयते युजान इन्दो हनितः सुपर्ण्यः।

तास्ते क्षरन्तु मधुमद् घृतं ।
पयस्तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टप्रः ।३।१
पवमानस्य विश्ववित् प्र ते सर्गा असृक्षत ।
सूर्यस्येव न रश्मयः ।१
केतुं कृण्वन्दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि ।
समुद्रः सोम पिन्वसे ।२
अज्ञातो वाचमिष्यसि पवमान विधर्मणि ।
क्रन्दं देवो न सूर्यः ।३।२
प्र सोमासो अधन्विषुः पवमानास इन्दवः ।
श्रीणाना मप्सु वृञ्जते ।१
अभि गावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः ।
पुनाना इन्द्रमाशत ।२
प्र पवमान धन्वसि सोमेन्द्राय मादनः ।
नृभिर्यतो वि नीयसे ।।३
इन्द्रो यदद्रिभिः सुतः पवित्रं परिदीयसे ।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ।४
त्वं सोम नृमादनः पवस्व चर्षणीधृतिः । सनस्यो
अनुमाद्यः ।।५
पवस्व वृत्रहन्तम उक्थेभिरनुमाद्यः । शुचिः पावको
अद्भुतः ।।६
शुचिः पावक उच्यते सोमः सुतः स मधुमान् ।
देवावीरघशंसहा ।७।३।(६।१)

हे सोम ! तू गो-धन, सुवर्ण प्राप्त करने वाला, धारक, जलों में स्थित, पात्र, में प्रविष्ट हो। तुम वीर, विश्व ज्ञाता की यह ऋत्विज वाणी से पूजा करते हैं ।१। हे सिद्ध होते हुए अभीष्ट वर्षक सोम तू सब लोकों में मनुष्य का साक्षी रूप सर्वत्र व्याप्त है हमारे लिये टपक। हम ऐश्वर्य युक्त हुए जीवन-धारण में समर्थ हों। २। हे सोम ! तू सबका स्वामो हुआ सब भुवनों को प्राप्त होता है। तेरे मधुर दीप्त जल को प्राप्त कर तेरे कर्म में स्थिति हों ॥ (१)।। हे विश्व-द्रष्टा सोम ! शोधित हुए तेरी धारायें सूर्य-रश्मियों जैसी चमकती हैं ॥ १ ॥ हे सोम ! रस-वाहक तू चेतनाप्रद हम रे सब रूपों को शुद्ध करता हुआ विभिन्न धनों को देने वाला है। २। हे सोम ! प्रकाशित सूर्य के समान उत्पन्न तू पवित्रे मैं जाकर ध्वनि को प्रेरित करता है ॥३(२)॥ हे दीप्त तरल सम ! सोम ! प्राप्त हुआ गोदुग्धादि से मिलकर जलों में भावित होता है ।१। नीचे को जाते हुये गतिमान सोम जलों के समान छन्ने को प्राप्त हो शुद्ध होकर इन्द्र को तृप्त करते हैं ।२। हे संस्कारित सोम ! तू इन्द्र के लिये आह्लादक हुआ पवित्रे में पहुँचता और ऋत्विजों द्वारा ग्रहण किया जाता है। ३। हे सोम तू पाषाणों से निष्पन्न हुआ छन्ने में जाता है तब इन्द्र के उदर को भरने वाला होता है ॥४॥ हे सोम ! मनुष्यों को आनन्द दायक तू संकारित होकर स्तवन के योग्य बन। ५। हे सोम ! मन्त्रों द्वारा स्तुत्य पवित्रताप्रद और महान् है। शत्रु के नाश में भी सुप्रसिद्ध है। ६। सुप्रसिद्ध मधुर, सोम स्वयं शुद्ध और अन्यों का भी शोधक है। देवताओं को तृप्त करने वाला वह पाप और राक्षसों के नाश करने वाला बताया जाता है ॥७ (३)

प्र कविर्देववीतयेऽव्या वारेभिरव्यत ।

साह्वान्विश्वा अभि स्पृधः ॥1

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमंतमिन्विति ।
पवमानः सहिस्त्रणम् ॥२

परि विश्वानि चेतसा मृज्यसे पवसे मती ।
स नः सोम श्रवो विदः ॥३

अभ्यर्ष बृहत्तशो मघवद्भ्यो ध्रुवं रयिम् ।
इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४

त्वं राजेव सुव्रतो गिरः सोमा विवेशिथ ।
पुनानो वह्ने अद्भुत ॥५

स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्योः ।
सोमश्चमूषु सीदति ॥६

क्रीडुर्मखो न मंहयुः पवित्रं सोम गच्छसि ।
दधत् स्तोत्रे सुवीर्यम् ।७।४

यवंयवं नो अंधसा पुष्टंपुष्टं परि स्रव ।
विश्वा च सोम सौभगा ॥१

इन्दो यथा तव स्तवो यथा ने जातमन्धसः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदः ॥२

उत नो गोविदश्वविते पवस्व सोमान्धसः ।
मक्षूतमेभिरहभिः ॥३

यो जिनाति न जीयते हन्ति शत्रुमभीत्य ।
स पवस्व सहस्रजित् ।४।५

यास्ते धारा मधुश्चुतोऽसृग्रमिन्द ऊतये ।

ताभिः पवित्रमासदः ।।१

सो अर्षेन्द्राय पीतये तिरो वारण्यव्यया ।

सीदन्नृतस्य योनिमा ।।२

त्वं सोम परि स्रव स्वादिष्ठो अंगिरोभ्यः ।

वरिवोविद् घृतं पयः ।३।६ (६-२)

देवताओं के पान करने योग्य सोम छन्ने को प्राप्त हुआ शत्रुओ को सहने वाला संघर्षों और हिसा करने वालों का प्रतीकार करता है। १। संकारित सोम स्तोताओं को गौ-अन्नों आदि का देने वाला हैं। २। हे सोम ! हमारी प्रार्थना से शोधा गया तू हमें मन करके सब धन और अन्न का दाता हो। ३। हे सोम ! हवि देने वाले हम साधकों को यज्ञ, धन और अन्न प्रदान कर।४। यश-निर्वाहक, संस्कारित, महान् सुकर्मा सोम ईश्वर के समान हमारी प्रार्थनाओं को सुनता है।५। यज्ञ-निर्वाहक वह सोम जल-भावना से संस्कार किया गया पात्रों में रक्खा जाता है। ६। है सोम ! यज्ञ के समान दान का इच्छुक तू स्तोताओ को वीरता प्रदान करता हुआ छन्ने पर गिरता है।७(४)। हे सोम ! हमें बार-बार सिद्ध हुई रस धार से युक्त कर और सब सौभाग्यों का प्रदाता बन। १। हे सोम ! तेरा अन्न रूप स्तवत तेरे लिए ही उत्पन्न हुआ है, तू हमारे यज्ञ में तृप्त करने वाला हो। २। हे सोम ! हमको गाय-अश्व दिलाने वाला तू अत्यन्त शीघ्र अन्न रूप द्वारा नहीं जीता जाता, वह तू धारा युक्त वर्षा कर।३-४ (५)। हे सोम ! तेरी मधुर रस वाली धारायें रक्षा के निमित्त उत्पन्न

की जाती हैं उन धारों से छन्ने में जा। १। हे सोम तू गिरता हुआ छन्ने में जाता है, अतः इन्द्र के लिये पेय बन। २। हे परम स्वादिष्ट सोम! हमको अभीष्ट धन देने वाला तू अंग-अंग को दिव्य बनाने के लिये दूध के समान सार रूप से बरस॥ ३(६)॥

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतोऽग्नेश्चिकित्र उषसामिवेतयः।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्न-
मासनि।१

वातोपजूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे
आ ते यतन्ते रथ्योऽयथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजरस्य
धक्षतः।२

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतरं
मतिम्। त्वामर्भस्य हविषः समानमित् त्वां महो—
वृणते नान्यं त्वत्।३।७

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण।
मित्र वंसि वां सुमतिम्।१

ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धाम च।
वयं वां मित्रा स्याम।२

पातं नो मित्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा
साह्याम दस्यून तनूभिः।३।८

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वा शिप्रे अवेपयः।

सोममिन्द्र चमू सुतम् ।१
अनु त्वा रोदसी उभे स्पर्धमानमददेताम् ।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ।२

वाचमष्टापदीमहं नवस्त्रक्तिमृतावृधम् ।
इन्द्रात् परि तन्वं ममे ।३।९

इन्द्राग्नी युवामिमेऽभि स्तोमा अनूषत ।
पिबतं शम्भुवा सुतम् ।५

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ।२

ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी सोमपीतये ।३।१०। (-३)

हे अग्ने ! जब तुम धान जौ आदि अन्न और काष्ठादि को अपने मुख में भक्षणार्थ ग्रहण करते हो तब तुम्हारी दिव्यतायें वर्षक मेघों के समान और उषा के प्रकाश के समान लगती हैं । १ । हे अग्ने ! वायु के योग से कम्पित हुआ तू जब वनस्पतियों में व्यापता है तब भस्म करने वाले गुक्त से युण तेरा तेज रथियों के समान विचित्र सा लगता है ॥ २ ॥ बुद्धिकर्त्ता, यज्ञ-साधन, देवदूत शत्रु ताड़क, प्रेरक अग्नि का हम स्तवन करते हैं। वह तुम्हें थोड़े या अधिक हवि के भक्षण करने को मनाते हैं। (इस कार्य के लिये अन्य देवता की प्रार्थना नहीं करते) ॥ ३ (७) ॥ हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों ही रक्षा करने वाले हो। मैं तुम्हारी कृपापूर्वक बुद्धि को उपयुक्त करूँ ॥ १ ॥ हम स्तुति

करने वाले तुम दोनों द्वेष न करने वालों का स्तवन करें। हम तुम्हारी मित्रता प्राप्त करें और उत्तम अन्न तथा निवास वाले हों। २। हे मित्र और वरुण ! तुम हमारी रक्षा करो और श्रेष्ठ पदार्थों से पोषण करो। हम पुत्रादि से युक्त हुये शत्रुओं को वश में करें। ३ (८) इन्द्र ! तू पात्र में सुरक्षित सोम को पीकर बल से उन्नत हुआ, चिबुक को कम्पित कर। १। स्पर्धायुक्त इन्द्र ! शत्रु नाश में तुम्हें तत्पर जानकर आकाश और पृथिवी दोनोंनों तुमसे प्रसन्न होते हैं। २। चार दिशा चार कोण और आकाश इन नौओं स्थानों में व्यापक होने वाले को ढ़ाने वाली प्रार्थना आदि न्यून हो तो उसे में पूर्ण करता हूँ। (९)। हें इन्द्र और अग्ने ! यह स्तोता तुम्हारे प्रशंसक हैं। हे सुख दाताओ, इस सिद्ध किये गये सोम का पान करो॥ १॥ प्रेरणा वाले इन्द्र और अग्ने ! तुम हवि देने वाले यजमान के लिये प्रकट हुये हो। उसके हवि रूप अश्वों पर चढ़ कर यज्ञ स्थान मैं पधारो। २। हे प्रेरणा वाले इन्द्र और अग्ने ! इस सिद्ध सोम का पान करने को उन अश्वों पर चढ़े हुये जाओ॥३ (१०)॥

अर्षा सोम द्युमत्तमोऽभि द्रोणानि रोरुवत्।

सीदन्योनौ वनेष्वा॥१

अप्सा इन्द्राय वायवे वरुणाय मरुद्भ्यः।

सोमा अर्षन्तु विष्णवे॥२

इषं तोकाय नो दधदस्मभ्यं सोम विश्वतः।

आ पवस्व सहस्रिणम्॥३॥११

सोम उ ष्वाणः सोतृभिरधि ष्णुभिरवीनाम् ।

अश्वयेव हरिता याति धारया मन्द्रया याति धारया ।१

अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।

समुद्रं न संवरणान्यग्मत् मन्दी मदाय तोशते ।२।१२

यत्सोम चित्रमुक्थ्यं दिव्यं पार्थिवं वसु ।

तन्नः पुनान आ भर ॥१

वृषा पुनान आयूंषि स्तनयन्नधि बर्हिषि ।

हरिः सन्योनिमासदः ॥२

युवं हि स्थः स्वःपती इन्द्रश्च सोम गोपती ।

ईशाना पिप्यतं धियः ।३।१३। (६-४)

हे सोम ! अत्यन्त तेजवान् तू अपने ही लिये पर्वतों पर उत्पन्न होता है। तू शब्द करता हुआ कलशों की ओर जा। १। जलों में प्राप्य सोम इन्द्र, वायु, वरुण मरुद्गण और विश्वव्यापी विष्णु के लिये पात्र को प्राप्त हो ।२। हे सोम ! तू हमारे पुत्र को और हमें अन्न, धन, आदि का प्रदाता बने ॥३ (११) ॥ सिद्ध कर्त्ता ऋत्विजों द्वारा निष्पन्न होता हुआ सोम कलश में टपकता हुआ प्राप्त होता है। यह सोम शक्ति और हर्ष के लिये निष्पन्न होता है ।२ (१२)। हे सोम ! सब प्रकार प्रशंसित पार्थिव और दिव्य धन हैं उसे पवित्र करता हुआ हमें दे ॥१॥ प्रजाओं की आयु को शुद्ध करता हुआ, सभीष्टवर्षक, शब्दवान हुआ सोम

कुशों पर अपने स्थान को प्राप्त हो। २। हे सोम ! हे इन्द्र ! तुम दोनों ही सबके अधीश्वर, गौ-पालक और ऐश्वर्य के स्वामी हुये कर्मों के पोषक हों ॥ ३ (१३) ॥

इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ।१

असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादविः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ।२

यदुदीरत आजयो ।३।१४

स्वादोरित्था विषूवतो ।१
ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं-वस्वीरनु स्वराज्यम् ।२
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु-स्वराज्यम् ।३।१५। (६-५)

हे शत्रुनाशक इन्द्र ! हर्ष और बल के लिये स्तोताओं द्वारा अधिक पुष्ट किये गये तुझे छोटे बड़े संघर्षों में अपनी रक्षा के लिये बुलाते हैं ।१। हे रण-कुशल इन्द्र ! तू अकेला ही असंख्य

सेना के समान है, अतः शत्रुओं के धन का अपहारक है। स्तोता के धन को बढ़ाने वाला सोम निष्पन्नकर्त्ता का धन-दाता है।२। संघर्ष उपस्थित होने पर, हे इन्द्र ! तुम अपने मदमत्त अश्व को जोड़ कर अपने विद्वेषी को नष्ट करो। अपने उपासक को धन में स्थित कराओ।३ (१४)। सुस्वादु मधुर सोम रस को श्वेत गौएँ पीकर इन्द्र के साथ शोभित होता है। अभीष्ट वर्षक इन्द्र के साथ प्रसन्नता से अनुगत हुई इन्द्र के आश्रय में रहती हैं।१। इन्द्र की संगति वाली गौएँ इन्द्र के पेय सोम में अपना दूध मिलाती है। इनसे पुष्ट और।शक्ति सम्पन्न हुआ इन्द्र शत्रुओं पर वज्र चलाने में समर्थ होता है।२। उत्तम गौएँ इन्द्र के पराक्रम को अपने दूध से पुष्ट करता है। युद्ध में शत्रुओं को इन्द्र वीरता बताने के वीर कर्म का ज्ञान प्रेरित करते हैं ॥३ (१५)॥

असाव्यंशुर्मदायाप्सु दक्षो गिरिष्ठाः।

श्येनो न योनिमा सदत् ।१

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धौतं नृभिः सुतम्।

स्वदन्ति गावः पयोभिः ।२

आदीमश्वं न हेतारकशूशुभन्नमृताय।

मधो रसं सधमादे ।३।१६

अभि द्युम्नं बृहद्यश इषस्पते दिदीहि देव देवयुम्।

वि कोशं मध्यमं युव ।१

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पति ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपो जिन्वन् गविष्टये धियः
।२।१७

प्राणा शिशुर्महीनां हिन्वन्नृतस्य दीधितिम् ।
विश्वा परि प्रिया भुवदध द्विता ॥१
उप त्रितस्य पाष्योऽरभक्त यद् गुहा पदम् ।
यज्ञस्य सप्त धामभिरध प्रियम् ॥२
त्रीणि त्रितस्य धारया पृष्ठेष्वेरयद्रयिम् ।
मिमीते अस्य योजना वि सुक्रतुः ।३।१८

पवस्व वाजसातये पवित्रे धारया सुतः ।
इन्द्राय सोम विष्णवे देवेभ्यो मधुमत्तरः ॥१
त्वां रिहन्ति धीतयो हरिं पवित्रे अद्रुहः ।
वत्सं जातं न मातरः पवमान विधर्मणि ॥२
त्वां द्यां च महिव्रत पृथिवीं चाति जभ्रिषे ।
प्रति द्रापिममुञ्चथाः पवमान महित्वना ।३।१९

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योघा इन्द्रे सोमः सह इन्वन्मदाय ।
हन्ति रक्षो बाधते पर्यरातिं वरिवस्कृण्वन् वृजनस्य
राजा ॥१
अध धारया मध्वा पृचानस्तिरो रोम पवते अद्रिदुग्धः ।
इंदुरिन्द्रस्य सख्यं जुषाणो देवो देवस्य मत्सरो मदाय ।२

**अभि व्रतानि पवते पुनानो देवो देवान्त्स्वेन रसेन पृंचन्
इन्दुर्धर्माण्यृतुथा वसानो दश क्षिपो अव्यत
सानो अव्ये ॥३॥२०॥ (६–६)**

पर्वतोत्पन्न सोम शक्ति और हर्ष के लिये शुद्ध किया जाता है और बाज के वेग के समान अपने स्थान को प्राप्त करता है ।१। देवताओं से स्तुत्य सुन्दर, अन्न रूप शुद्ध जलों में धोये हुये सोम को वे गौएँ सुस्वादु बनाती है । २ । फिर इस सोम-रस को अमरत्व प्राप्त कराने के लिए ऋत्विज उपयुक्त करते हैं । उसी प्रकार, जैसे रण क्षेत्र को अश्व सुशौभित करते हैं । ३ (१६) ॥ हे स्तुत्य सोम ! देवताओं के काम्य हवि रूप अपने रस को नीचे गिरा और अन्तरिक्ष से मेघों को वर्षा करने को प्रेरित कर ।१। हे बली सोम ! पात्रों मैं छाना हुआ तु प्रजा धारक गुण वाला यजमान के लिए कर्मों की प्रेरणा कर और अन्तरिक्ष से मेघ-वर्षा कर ॥ २(१४) ॥ सचेष्ट सोम अपने धारक रस को प्रेरित करता हुआ प्रिय हवियों में व्याप्त आकाश और भू-मण्डलों मैं स्थित होता है । १ । जब पाषाण के समान दृढ़ फलकों में सोम को प्राप्त किया तब गायत्री आदि सात छन्दों द्वारा ऋत्विज उनकी स्तुति करते हैं । २ । सोम अपनी धार से सोम गानों में धनदाता इन्द्र को प्रेरित करे। उत्तम कर्म वाला याज्ञिक इन्द्र का स्तवन करता है ॥३ (१८) । हे सोम ! शुद्ध हुआ तू इन्द्र विष्णु तथा अन्य देवगण के लिये अत्यन्त मधुर हुआ, पुष्टि के लिए टपक । १ । हे तरल सोम ! तुझे वस्त्र में छानने के निमित्त अंगुलियां उसी प्रकार छूती हैं जैसे नव-जात वत्स को धनु चाटती हैं । २। हे साधक सोम ! तू पृथिवी और आकाश का धारक है शुद्ध होता हुआ कवच रूप हो ॥३ (१९) । द्युतिमान रस सम

सोम इन्द्र को वल की प्रेरणा करता हुआ सुख पूर्वक स्रवित होता है। क्लेश सोम याज्ञिकों को धन देता हुआ शत्रुओं को नष्ट करता है। १। पाषाणों से निष्पन्न किया जाता सोम हर्ष प्रदायक धार से निकलता है। इन्द्र के प्रति सख्य-भाव वाला इन्द्र के लिये ही बरसता है। २। धारक, व्रती, तरल सोम कलश में गिरता और इन्द्रादि देवों को पुष्ट करता है ॥१ (२०)॥

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं
स्तोतृभ्य आ भर ।१

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते ।
सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हुयत
इषं स्तोतृभ्य आ भर ।२

औभे सुश्चन्द्र विश्पते दर्वी श्रणीप आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेयु शवसस्पत इषं
स्तोतृभ्य आ भर ।३।२१

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ।
ब्रह्मकृते विपश्चिते पनस्यवे ।१

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।
विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ।२

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व३रगच्छो रोचनं दिवः ।

देवास्त इंद्र सख्याय येमिरे ।३।२२

असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ।१
आ तिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ।२
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रति धृष्टशवसम् ।
ऋषीणां सुष्टुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ।।३।।२३(६-७)

हे अग्ने ! तुम अजर को हम प्रदीप्त करते हैं, जब तुम्हारी दीप्त आकाश में व्याप्त होती है तब तुम हमको अन्न देने वाले होते हो । १ । हे उत्तम सुखदायक, शत्रुओं का दमन करने वाले, जगत् पालक, हवि-वाहक अग्नि के निमित्त हवि को होमते हैं । हे अग्ने ! हम स्तुति करने वालों को अन्न प्रदान करो । २ । बलेश, पालक इन्द्र ! हवि-युक्त दीनओं को पचा लेने वाले तुम यज्ञों में हमें फलों से पूर्ण करते हो हमको अन्न-प्रदान करो । ३ (२१) । हे स्तोताओं ! वर्षा द्वारा अन्न के कर्ता और स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले इन्द्र की साम-गान द्वारा प्रार्थना करो ।। १ ।। हे इन्द्र ! हे शत्रुओं के तिरस्कारक ! हे सूर्य को अपने तेजों से तेजस्वी बनाने वाले ! तुमविश्व रूप, दिव्य रूप वाले और महानों में भी महान् हो । २ । हे इन्द्र तुम अपने तेज से सूर्य को प्रकाशित करते हो, तुम्हारे तेज से ही दिव्य लोक भी प्रकाशित है । सभी देवगण तुम्हारे मित्र भाव की कामना करते हैं । ३ (२२) । हे इन्द्र ! तुम्हारे लिये यह सोम शुद्ध किया रखा है । हे पराक्रम वाले ! तुम शत्रु को वश करने वाले इस यज्ञशाला में पधारो । सूर्य द्वारा अन्तरिक्ष को पूर्ण

करने के समान तुम्हें सोम-पान द्वारा उत्पन्न सामर्थ्य पूर्ण करें । १ । हे इन्द्र ! हमारे मन्त्रों से जुड़े हुये अश्वों वाले इस रथ पर चढ़ । सोम निष्पन्न करने वाला पाषाण अपने आकर्षण शब्द से तेरे मन को हमारी ओर प्रेरित करे ॥ २ ॥ जो किसी के द्वारा तिरस्कृत न हो सके, ऐसे इन्द्र को ऋषियों की स्तुतियों यज्ञ-स्थान में पहुँचाती हैं ॥३ (२३) ॥

॥ षष्ठोऽध्यायः समाप्त ॥

—*—

चतुर्थ प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

(ऋषि—अकृष्टा भाषा, कश्यपः, मेधातिथिः, हिरण्यस्तूपः, अवत्सारः, जमदग्निः, कुत्स आगिरसः वसिष्ठः, त्रिलोकः, काण्वः, श्यावाश्वः सप्तर्षयः अमहीयुः, शुनः शेप आजीगर्तिः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, मान्धाता यौवनाश्वः गोधाः, असितः काश्यपो देवलो वाः, ऋणञ्चयः, शक्तिः, पर्वतनारदौः, मनुः, सांवरणाः, बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्बिप्रबन्धुश्च गोपायना, लोपायना वा भुवन आपत्यः, साधनो वा भौवन, वामदेवः । देवता—पवमानः सोमः, अग्निः, आदित्यः, इन्द्रः, इन्द्राग्नी विश्वेदेवाः । छन्द—जगती, गायत्री, बार्हत, प्रगाथः, पंक्तिः उष्णिक्, अनुष्टुप् ।)

ज्योतिर्यज्ञस्य पवते मधु प्रियं पिता देवानां जनिता विभूवसुः ।
दधाति रत्नं स्वधयोरपीच्यं मन्दितमो मत्सर इन्द्रियो रसः ॥१

अभिक्रंदन् कलशं वाज्यर्षति पतिर्दिवः शतधारो विचक्षणः ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानोऽविभिः सिन्धुभिर्वृषा ॥२

अग्रे सिन्धूनां पवमानो अर्षस्यग्रे वाचो अग्रियो गोषु गच्छसि ।

अग्रे वाजस्य भजसे महद् धनं स्वायुधः सोतृभिः सोम सूयसे ॥३॥१

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया ।
शुक्रासो वीरयाशवः ॥१
शुम्भमाना ऋतायुभिर्मृज्यमाना गभस्त्योः ।
पवन्ते वारे अव्यये ॥३

ते विश्वा दाशुषे वसु सोमा दिव्यानि पार्थिवा ।
पवन्तामान्तरिक्ष्या ॥३॥२
पवस्व देववीरति पवित्रं सोम रंह्या ।
इन्द्रमिन्दो वृषा विश ॥१

आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः ।

आ योनिं धर्णसिः सदः ।२

अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः ।
अपो वसिष्ट सुक्रतुः ।३

महान्तं त्वा महान्वापो अर्षन्ति सिन्धवः ।
यद्गोभिर्वासयिष्यसे ।४

समुद्रो अप्सु मामृजे विष्टम्भो धरुणो दिवः ।
सोमः पवित्रे अस्मयुः ।५

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः ।
सं सूर्येण दिद्युते ।६

गिरस्त इन्द ओजसा मर्मृज्यन्ते अपस्युवः ।
याभिर्मदाय शुम्भसे ।७

तं त्वा मदाय धृष्वय उ लोककृत्नुमीमहे ।
तव प्रशस्तये महे ।८

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत ।
आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ।९

अस्मभ्यमिन्दविन्द्रियं मधोः पवस्व धारया ।
पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव ।१०।३ (७–१)

यज्ञ-प्रकाशक सोम दिव्य रस का वर्षक, पालक, फलोत्पादक, ऐश्वर्यवान्, हर्षप्रदायक और इन्द्र द्वारा सेवन किया गया है। उसका रस आकाश-पृथिवी में छिपे धन को यजमानों

के लिये प्रकट करता है। दिव्य गुणों का स्वामी, शतधार, बुद्धि बढ़ाने वाला, बली, हरित सोम-रस शब्द करता हुआ कलश में आता है। वह अभीष्ट पूरक मित्र के समान हितैषी होता है।१-२। हे सोम ! तू जलों से पूर्व संस्कारित हुआ आहुतियों से अन्तरिक्ष में जाता है शत्रुओं का अन्न प्राप्त करने के लिये उत्तम अश्वों वालों द्वारा निष्पन्न होता है ॥ (१)॥ बली दमकते हुए एवं गतिमान सोम का यजमान, गवादि पशु एवं सन्तान प्राप्ति की इच्छा से रस निचोड़ते हैं। १। यज्ञेच्छा वालों द्वारा अपने हाथों से शोध कर सुशोभित किये गये सोम छन्ने में पवित्र होते हैं। २। वह सोम हवि देने वाले यजमाम को दिव्य और पार्थिव धनों की वर्षा करे ॥३ (२)॥ हे देवताओं द्वारा इच्छित ! तू वेगवान् हुआ अभीष्ट वर्षक हो और इन्द्र को प्राप्त हो। १। हे सोम ! उपासक को अभीष्ट फलदाता एवं धारक हुआ तू हमको असंख्य अन्न-धन दिलाता हुआ स्थित हो। २। निचोड़ी हुई सोम-धार आह्लादक अमरत्व से युक्त हुई पात्र को पूर्ण करती है। ३। हे सोम ! तू गो-दुग्धादि से मिश्रत होने पर गुणयुक्त बहुत से जलों के सार रूपों को ग्रहण करता है। ४। दिव्य रसों को प्रवाहित करने वाला काम्य सोम जल-योग से पुनः पुनः शुद्ध किया जाता है। ५। अभीष्टपूरक, हरित, महान्, मित्र के समान दिखाई देने वाला सोम शब्द करता हुआ सूर्य की सी दीप्ति वाला है। ६। हे सोम ! तेरे बल से ही कर्म की प्रेरणा देने वाली स्तुतियाँ रची जाती है। स्तुतियों की उन वाणियों के लिये तुमको सिद्ध किया जाता है। ७। हे सोम ! तुझे महान् प्रशंसित बनाने के निमित्त हम तुझे लोक नियता से पीने का निवेदन करते हैं।८। हे सोम ! यज्ञ का सनातन आत्मा, तू हमें गवादि देने वाला तथा अन्नों का देने वाला है ॥९॥ हे

सोम वर्षक मेघ के समान हमारे लिये इन्द्र के सेव्य, पुरुषार्थ बढ़ाने वाले रस की अमृत रूप से वर्षा कर ॥१० (३) ॥

सना च सोम जेषि च पवमान महि श्रवः ।
अथा नो वस्यसकृधि ॥१

सना ज्योतिः सना स्वर्विश्वा च सोम सौभगा ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥२

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥३

पवोतारः पुनीतन सोममिन्द्राय पातवे ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥४

त्वं सूर्ये न आ भज तव क्रत्वा तवोतिभिः ।
अथा तो वस्यसस्कृधि ॥५

तव क्रत्वा तवोतिभिर्ज्योक् पच्येत सूर्यम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥६

अभ्यर्ष स्वायुध सोम द्विबर्हसं रयिम् ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥७

अभ्यर्षानपच्युतो वाजिन्त्समत्सुसासहिः ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥८

त्वां यज्ञैरवीवृधन् पवमान विधर्मणि ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ॥९

रयिं नश्चित्र मश्विनमिन्दो विश्वायुमा भर ।
अथा नो वस्यसस्कृधि ।१०।४
तरत्स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः ।
तरत्स मन्दी धावति ।।१
उस्रा वेद वसूना मर्त्तस्य वेव्यवसः ।
तरत्स मन्दी धावति ।।२
ध्वस्रयोः पुरुषन्त्योरा सहस्राणि दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ।।३
आ ययोस्त्रिशतं तना सहस्राणि च दद्महे ।
तरत्स मन्दी धावति ।४।५
एते सोमा असृक्षत गृणानाः शवसे महे ।
मन्दितमस्य धारया ।।१
अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि ।
सनद्वाजः परि स्रव ।।२
उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः ।
गृणानो जमदग्निना ।३।६

हे सँस्कारित सोम ! हमारे यज्ञ में पूज्य देवगण का सेवनीय हो और विघ्नकारियों को हरो ।। १ ।। हे सोम ! हमको तेजस्वी बना। सभी स्वर्गीय सुखो को हमें प्रदान करता हुआ कल्याण को बढ़ा। २। हे सोम ! हमको हमारे यज्ञ का फल दे, शत्रुओं का नाश कर। हमको कल्याणमय बना।३। हे सोम को संस्कारित करने वाले ! इन्द्र के पीने को सोम को पवित्र करो,

फिर हमको कल्याणमय बनाओ । ४ । हे सोम तू अपनी रक्षाओं से हमको सूर्य की उपासना को प्रेरित कर और हमें कल्याणमय बना । ५ । हे सोम ! तेरे द्वारा प्रदत्त ज्ञान से तेरे आश्रित हुए हम चिरकाल तक सूर्य को देखने वाले हों । तू हमें कल्याण का भागी बना । ६ । हे श्रेष्ठ साधक साधना सम्पन्न सोम ! आकाश पृथिवी के ऐश्वर्य को हमें प्रदान करता हुआ सुख का भागी बना । ७ । हे बली सोम ! युद्ध में शत्रुओं को जीतने वाला तू कलश में रह । फिर हमें सुख का भागी बना । ८ । हे शुद्ध होते हुए सोम ! अनेक फल वाले यज्ञों के साधन रूप स्तोत्रों से यजमान द्वारा बढ़े हुए तुम हमको सुख के भागी बनाओ ॥ ९ ॥ हे सोम ! हमारे लिए विविध ऐश्वर्यों का दाता हो और हमें सुख का भागी बना । १० (४) । देवताओं को प्रसन्न करने वाला सोम छन्ने से धार रूप में गिरता है तथा तुस्तुति करने वालों को मुक्त करने वाला होता है । १ । सर्व ऐश्वर्यदायिनी सोम धारायें यजमान की रक्षक, देवगण को आनन्द देने वाली, स्तोताओं को पाप से बचाने वाली छन्ने में से गिरती हैं । २ । सहस्रों धनों को हम ग्रहण करें, वह धन हमको शुभ हो । दिव्यानन्द वाला सोम हमारा रक्षक हो । ३ । हे सोम हमको वस्त्रादि शुभ हों । दिव्यानन्द वाला सोम पापों से बचावे । ४ (५) । दिव्यानन्द दायक रसों से युक्त यह सोम स्तुतियों से पुष्टबल के लिये पात्र में स्थित होते हैं । १ । हे सोम ! देवताओं के सेवनार्थ गोदुग्धादि को पवित्र करता हुआ तू पात्रों में जाता और सुख-वर्षक होता है ।२। हे सोम ! ऋषि

द्वारा स्तुत्य तू हमको गवादि से युक्त करने वाला और सब अन्नो का प्रदाता है ॥ ३ (६) ॥

इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा
रिषामा वयं तव ।१

भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणा पर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरां साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।२

शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान् ह्यूऽऽश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।३।७ (८—२)

प्रति वाँ सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम् ।
अर्यमणं रिशादसम् ।१

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे ।
इयं विप्रा मेध सातये ।२

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह ।
इषं स्वश्च धीमहि ।३।८

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।

बसु स्पार्हं तदा भर ।।१

यस्य ते विश्वमानुषग्भूरेर्दत्तस्य वेदति ।

वसु स्पार्हं तदा भर ।।२

यद्वीडाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् ।

वसु स्पार्हं तदा भर ।३।९

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नो वाजेषु कर्मसु ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।।१

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।।२

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नाद्रभिर्नरः ।

इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ।३।१०। (७–३)

पूज्य अग्नि के प्रति अपनी बुद्धि में स्तोत्र-पाठ करते हैं। इस अग्नि की भले प्रकार प्रार्थना करने में हमारी बुद्धि कल्याणरूपिणी है। हे अग्ने ! तुम्हारे मित्र हुये हम किसीके द्वारा हिंसित न हों ॥१॥ हे अग्ने ! तुम्हारे यज्ञ की समिधाओं को एकत्रित करते हैं। तुम्हारे लिये हवियाँ देते हैं। तुम हमारे यज्ञादि कर्मों के साधक बनो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त होने पर हमें कोई मार न सके ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम्हें यह उत्तम प्रकार से प्रदीप्त करें। तुम हमारे कर्मों के साधक होओ। तुम सब देवताओं को यज्ञ स्थान में लाओ। उनका इस समय हम आह्वान करते हैं ॥ ३ (७) ॥ हे मित्र वरुण और ! सूर्योदय काल में तुम

शत्रु-भक्षको की प्रार्थना करता हूँ ॥ १ ॥ हमारी यह स्तुति अखण्ड बल दिलाने वाली हो। हे विप्रो ! इन स्तुतियों को यज्ञ-प्राप्ति के निमित्त करो ॥ २ ॥ हे वरुण ! हे मित्र ! हम स्तोता ऋत्विजों सहित ऐश्वर्यवान् हों। अन्न-धन और स्वर्गीय सुख को प्राप्त करें ॥ ३ (८) ॥ हे इन्द्र ! शत्रुओं को मारो। शत्रुओं को ललचाने वाले धन को हमें दो। १। हे इन्द्र ! जिन असंख्य धनों को मनुष्य बहुत समय से जानता है उन इच्छित धनों को प्रदान करो। २। हे इन्द्र! विचलित, अचल, विचारवान मनुष्यों को जो धन तुम देते आये हो वह इच्छित धन हमें प्रदान करो ॥१ (९) ॥ हे इन्द्राग्ने तुम दोनों यज्ञ में यजन करने योग्य हो। यज्ञ कर्मों में पवित्र हुये तुम हमारी स्तुतियों पर ध्यान दो।१। शत्रु नाशक, कभी परास्त न होने वाले इन्द्र और अग्ने ! मेरी स्तुतियों को सुनो। २। हे इन्द्र ओर अग्ने ! ऋत्विजों ने तुम्हारे निमित्त अमृत रूप सोम को निचोड़ कर पात्रों में रखा है, उसके लिये मेरी स्तुति पर ध्यान दो ॥३ (१०) ॥

इन्द्रायेन्दो मरुत्वते पवस्व मधुमत्तमः ।

अर्कस्य योनिमासदम् ॥१

तं त्वा विप्रा वचोविद. परिकृण्वन्ति धर्णसिम् ।

सं त्वा मृजन्त्यायव ॥२

रसं ते मित्रो अर्यमा पिबन्तु वरुणः कवे ।

पवमानस्य मरुतः ।३।११

मृज्यमानः सुहस्त्या समुद्रे वाचमिन्वसि ।
रयिं पिशंगं बहुलं पुरुस्पृहं पवमानाभ्यर्षसि ।१
पुनानो वारे पवमानो अव्यये वृषो अचिक्रदद्वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो
अर्षसि ।२।१२

एतमु त्यं दश क्षिपो मृजन्ति सिन्धुमातरम् ।
समादित्येभिरख्यत ।।१
समिन्द्रेणोत वायुना सुत एति पवित्र आ ।
सं सूर्यस्य रश्मिभिः ।२
स नो भगाय वायवे पूष्णे पवस्व मधुमान् ।
चारुर्मित्रे वरुणे च ।३।१३।(७–४)

हे सोम ! अत्यन्त मधुर पूज्य यज्ञ के लिये मरुद्गणों के साथी इन्द्र के लिये वर्षणशील हो । १ । हे सोम तुझ धारक को विद्वान साधक शोधक कर्म द्वारा सुशोभित करते हैं ।२। हे ज्ञानी सोम ! तेरे संस्कारित रसको मित्र, अर्यमा, वरुण मरुद्गण पान करें ।३ (११) । हे सुन्दर हाथों से सिद्ध किये सोम ! तू शब्द करता हुआ पात्र में जाँता है। तुम साधकों को बहुत-सा स्वर्णादि ऐश्वर्य देने वाले हो । १ । अभीष्ट देने वाला संस्कारित सोम सबका शोधक है । गो दुग्ध और घृतादि से युक्त हुआ दिव्य गुण वाला होता है।२(१२)।जिस सोम की जननी समुद्र है उसका देश

अँगुलियाँ शोधन करती हैं। यह सूर्य तेज से संगठित करता है।१। निष्पन्न सोम कलश के साथ इन्द्र को प्राप्त होता है तथा वायु से मिलकर सूर्य किरणों में व्याप्त होता है। २। हे सोम ! तू मधुमय मंगलदायक हमारे यज्ञ में भग, वायु, पूसा, मित्र और वरुण के निमित्त वर्षणशील हो ॥ ३ (१३) ॥

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ।१

आ घ त्वावान् त्मना युक्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवीयानः ।
ऋणोरक्षं न चक्रयोः ।२

आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ।३।१४

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि।१
उप नः इन्द्रे वतो मदः ।२

अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् ।
मा नो अति ख्य आ गहि ।३।१५

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राज चर्षणीनाम् ।
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।१

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।

पूर्वेण मघवन् पदा वयामजो यथा यमः

देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ।।२

अव स्म दुहृणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।

अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्मां अभिदासति ।

देवी जनिञ्यजाजनद्भद्रा

जनित्र्यजीजनत् ।३।१६। (७-५)

जिन गौओं को पाकर हम अन्न वाले सुख भोगते हैं। हमारी वे गौऐं इन्द्र। के प्रसन्न होने पर घृत-दूध वाली और पुष्ट हों। १। हे धारक इन्द्र तू हम पर कृपा-बुद्धि से हमारा अभीष्ट अवश्य ही हमको दिलावे। २। हे इन्द्र ! स्तोताओं द्वारा काम्य धन, उन पर कृपा करने के निमित्त लाकर दो।। ३।। (१४)।। उत्तम कर्मों के कर्त्ता इन्द्र को हम अपनी रक्षा के निमित्त नित्य बुलाते हैं। उसके निमित्त दोहन को सुन्दर गौओं को नित्य टेरते हैं। १। हे सोम पायी इन्द्र ! सोम पान के लिये यहाँ आओ तुम्हारी प्रसन्नता से ही गौएँ प्राप्त होती हैं।। २।। हे इन्द्र ! हम उत्तम बुद्धि वाले होकर तुम्हें जानें। तुम हमसे अन्य किसी पर अपना रूप प्रकट न करो।। ३ (१५)।। हे इन्द्र ! आकाश पृथिवी दोनों को तू पूर्ण करने वाला है, इससे वह उत्तम माता कहलाती है।। १।। ज्ञानी इन्द्र ! तुम शक्तिमान और ऐश्वर्यशाली हो। तुम्हें उत्पन्न करने वाली माता अदिति महान् है।।२।। हे इन्द्र ! मनुष्यों के शत्रुओं का बल मिटाओ। हमारी हिंसा करने वाले को धराशायी करो। तुम अदिति पुत्र हो, इसलिये तुम्हारी वह माता महान् है।३(१६)।।

परि स्वानो गिरिष्ठाः पवित्रे सोमो अक्षरत् ।
मदेषु सर्वधा असि ॥१
त्वं विप्रस्त्वं कविर्मधु प्र जातमन्धसः ।
मदेषु सर्वधा असि ॥२
त्वे विश्वे सजोषसो देवासः पीतिमाशत
मदेषु सर्वधा असि ।३।१७
स सुन्वे यो वसूनां यो रायामानेता य इडानाम् ।
सोमो यः सुक्षितीनाम् ॥१
यस्य त इन्द्रः पिबाद्यस्य मरुतो यस्य वार्यमणा भगः ।
आ येन मित्रावरुणा करामह एन्द्रमवसे महे ।२।१८
तं वः सखायो मदाय पुनानमभि गायत ।
शिशुं न हव्यैः स्वदयन्त गूर्त्तिभिः ॥१
सं वत्स इव मातृभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते ।
देवावीर्मदो मतिभिः परिष्कृतः ॥२
अयं दक्षाय साधनोऽयं शर्धाय वीतये ।
अयं देवेभ्यो मधुमत्तरः सुतः ।३।१९
सोमाः पवन्तः इन्दवोऽस्मभ्यं गातुवित्तमाः ।
मित्राः स्वाना अरेपसः स्वाध्यः स्वर्विदः ॥१
ते पूतासो विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः ।
सूरासो न दर्शतासो जिगत्नवो ध्रुवा घृते ॥२

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि ।
इष मस्मभ्यमभितः समस्वरन् वसुविदः ।३।२०

अया पवा पवस्वैना वसूनि माँश्चत्व इन्दो सरसि प्र
धन्व ।
ब्रध्नश्चिद्यस्य वातो न जूतिं पुरुमेधाश्चित्तकवे नरं धात्
॥१

उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्षं न पक्वं धूनवद्रणाय ।२
महीमे अस्य वृष नाम शूषे माँश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे
अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्चापामित्राँ अपाचितो
अचेतः ।३।२१। (७-६)

पाषाओं से शब्द करता हुआ सोम छन्ने टपकता है । वह हर्ष-प्रदायक सबका पोषक है । १ । हे सोम ! तू तृप्तिदायक बुद्धिवर्धक और अन्नज रस को देने वाला तथा शक्ति प्रदायक पदार्थों में धारक है । २ । हे सोम ! सब देवता परस्पर प्रीति रखते हुए तुझे पीते हैं । तू शक्तियुक्त पदार्थों का धारक और अभीष्ट दायक है ।३ (१७)। जो सोम धनों, दुधारू गायों, अन्नों उत्तम सन्तान और वैभव को देने वाला है, उसे ऋत्विज शोधते हैं ।१। हे सोम ! तेरे जिस रस को इन्द्र, मरुद्गण, अर्यमा, भग-देवता पान करते हैं, उसके द्वारा रक्षार्थ मित्र, वरुण और इन्द्र को उपयुक्त करते हैं। २ (१८)। मित्रो ! तुम देवताओं के हर्ष

के लिये रसयुक्त सोम का स्तवन करो। १। रक्षक, आनन्दप्रद, स्तुत्य सोम जलों से सिंचित होता है, जैसे गोवत्स गौओं द्वारा सींचा जाता है। २। यह सोम बल-बुद्धि का साधन है। यह देवताओं के सेवनार्थ शुद्ध किया गया मधुर गुणों से युक्त है॥ ३ (१९)॥ देवताओं को मित्र समान शोधित सोम स्वर्गीय आनन्द वाला हमारे कलश में आवे। १। शुद्ध बुद्धिवर्द्धक दधि-घृत युक्त सोम सूर्य के समान, पात्रों में दर्शनीय होता है। २। गो-दुग्ध में दर्शनीय, पाषाणों से निष्पन्न धन दायक यह सोम तुमको अन्न देता है। ३ (२०)। हे सोम! इस शुद्ध करने वाली धार से धन को वर्षा कर। इस सोम के शुद्ध होने पर सूर्य भी वायु-वेग वाला हुआ। अति बुद्धिमान् इन्द्र मुझ सोम प्राप्त करने वाले को कर्मवान् पुत्र प्राप्त करावे। १। हे सोम! सबके श्रवण योग्य तू हमारे पवित्र यज्ञ में आ। सहस्रों धनों को हमें देने वाला हो। २। बाण वर्षा और शत्रु का पतन करना यह दोनों कर्म सोम द्वारा सिद्ध होते हैं। हे सोम! शत्रुओं को मिटाकर याज्ञिकों को अभय दे॥ ३ (२१)॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भुवो वरूथ्यः ।१
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमो रयिं दाः ।२
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे ।
सखिभ्यः ।३।२२

इमा नु कं भुवना सीषधेमेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधातु।२

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेजसा करत् ।।३ ।।२३

प्र दोऽर्चोप ।।१।।२४।। (७–७)

हे अग्ने ! यजन योग्य तुम हमारे निमित्त-रक्षक और सुख देने वाले हो ।। १ ।। व्यापक, अन्न युक्त सबका अग्रगण्य अग्नि दीप्तिमान हुआ हमको धनदायक हो ।।२।। हे तेजवान प्रकाशित अग्ने ! सुख ओर पुत्रादि के निमित्त तुमसे प्रार्थना करते हैं ।। ३ (२२) ।। सब भुवन हमको शीघ्र सुखकारी हों। इन्द्र और विश्वेदेवा मेरे अभीष्ट पूर्ण करें ।। १ ।। अन्य देवताओं के साथ इन्द्र हमारे यश, देह और सन्तान को सिद्ध मनोरथ बनावें । २ । अदिति पुत्र मित्रादि, मरुद्गण सहित इन्द्र हमारे निमित्त गुण वाली औषधियों को सम्पन्न करें ।। (२३) ।। हे यजमानो ! तुम निकट से इन्द्र की उत्तम प्रकार से पूजा करो ।।३(२४)।।

। द्वितीयोऽर्धः ।

ऋषि—वृषगणो वासिष्ठः, असितः काश्यपो देवलो वा, भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, यजत आत्रेयः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, सिकता निवावरी, पुरुहन्मा, पर्वतानारदौ शिखण्डिन्यावत्सौ काश्तपौ वा, अग्नयो घिष्ण्यः, ऐश्वराः, वत्सः काण्वः, नृमेधाः, अत्रिः । देवता—पवमानः सोमः, वैश्वानरः, मित्रावरुणौ, इन्द्रः इन्द्राग्नी, अग्निः । छन्द—त्रिष्टुम्, गायत्री, जगती बार्हतः प्रगाथः उष्णिक् द्विपदा विराट, अनुष्टुप्, ककुप् पुर उष्णिक् ।

प्र काव्यमृशनेय ब्रुवाणो देवो देवानाँ जनिमा विवक्ति
महिव्रतः शुचिबन्धु पावकः पदा वराहो अस्येसि रेभत् १
प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयायुः ।
अंगोषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्रवदन्ति
साकम ॥२
स वोजत उरुगायस्य जूतिं वृथा कीडन्तं मिमते नगावः ।
परीणसं कृणुते तिग्मश्रृगो दिवा हरिर्ददृशे नक्तमृजः ।
प्र स्वा नासो रथा इवावन्तो न श्रवस्यवः ।
सोमासो राये अक्रमुः ॥४
हिन्वानासो रथा इव दधन्विरे गभस्त्योः ।
भरामः कारिणामिव ॥५
राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरंजते ।
यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥६
परि स्वानाम इन्दो वो मदाय बर्हणा गिरा ।
मधो अर्षन्ति धारया ॥७
आपानासो विवस्वतो जिवन्त उषसो भयम् ।
सूरा अण्वं वि तन्वते ॥८
अप गारा मतीनां प्रत्ना ऋणवन्वि कारवः ।
वृष्णो हरस आयवः ॥९

समीचीनास आशत होता नरः सप्तजानयः ।

पदमेकस्य पिप्रतः ।.१०

नाभा नाभिं न आ ददे चक्षुषा सूर्यं दृशे ।

कवेरपत्यता दुहे ॥११

अभि प्रियं दिवस्पदमध्वर्युभिर्गुहा हितम् ।

सूरः पश्यति चक्षसा ।१२।१। (८—१)

ऋषि-समान स्तुति करने वाला स्तोता इन्द्रादि देवताओं से प्रकट होने का निवेदन करता है। बिविध बल वाला सोम संस्कार होने पर शब्दयुक्त हुआ पात्रों को प्राप्त होता है ॥१॥ शत्रुओं के सताये हुए ऋषिगण अभिषव शब्द पर ध्यान देते हुए यज्ञ-शाला में गये। मित्र स्तोंताओं ने शत्रुओं को न सहन होने वाले सोम के निमित्त वाण सज ये ॥२॥ वह सोम अपनी गति को अन्तरिक्ष में प्रेरित करता है उसकी गति का अनुमान कठिन है वह अपने तेज को फैलाता हुआ दिन में हरित और रात्रि उज्ज्वल दिखाई देता है। रथों के समान शब्द करता हुआ यजमानों के लिये पराक्रमों का देने वाला होता है ॥४॥ युद्ध को जीतते हुये रथों जैसा यज्ञगामी सोम ऋत्विजों के बाहुओं में स्थित होता है ॥५॥ स्तुतियों के राजा के समान ऋत्विज से यज्ञ के समान सोंम का गो धृतादि से संस्कार होता है ।६। स्वच्छ किया जाता सोम वाणी युक्त हुआ मधुर रसयुक्त धार विस्तार वर्षण-शील होते हैं ॥७॥ इन्द्र के पीने को सोम उषा का करते हुये शोधन काल में शब्द करते हैं ॥ ८ ॥ सोम को प्राप्त करने

वाले स्तोता, सोम के यज्ञद्वारों का उद्घाटन करते हैं ।६। उत्तम जाति के सोम को पूर्ण करते हुए स्तोता कर्मानुष्ठान में लीन होते है ॥१०॥ नेत्रों द्वारा सूर्य दर्शन के निमित्त यज्ञनाभि सोम को अपनी नाभि में स्थापित करता हुआ उसकी तरङ्गों को पूर्ण करता हूँ ॥ ११ ॥ उत्तम वल इन्द्र नेत्रों द्वारा अपने प्रिय अध्वर्युओं द्वारा हृदयस्थ हुए सोम को देखता है ॥१२ (१) ॥

असृग्रमिन्दवः पथा धर्मन्नृतस्य सुश्रियः ।

विदाना अस्य योजना ॥१

प्र धारा मध्वो अग्रियो महीरपो वि गाहते ।

हविर्हविःषु वन्द्यः ॥२

प्र युजा वाचो अग्रियो वृषो अचिक्रदद्वने ।

सद्माभि सत्यो अध्वरः ॥३

परि यत्काव्या कविर्नृम्णा पुनानो अर्षति ।

स्वर्वाजी सिषासति ॥४

पवमानो अभि स्पृधो विशो राजेव सीदति ।

यदीमृण्वन्ति वेधसः ॥५

अव्या वारे परि प्रियो हरिर्वनेषु सीदति ।

रेभो वनुष्यते मती ॥६

स वायुमिन्द्रमश्विना साकं मदेन गच्छति ।

रणा यो मस्य धर्मणा ।।७

आ मित्रे वरुणे भगे मधोः पवन्त ऊर्मयः ।

विदाना अस्य शक्मभिः ।।८

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये ।

श्रवो वसूनि सञ्जितम् ।।९

आ ते दक्षं मयोभुवं वह्निमद्या वृणीमहे ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।१०

आ मन्द्रमा वरेण्यमा विप्रमा मनीषिणम् ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।११

आ रयिमा सुचेतुनमा सुक्रतो तनूष्वा ।

पान्तमा पुरुस्पृहम् ।।१२।२(८-२)

यजमान और देवताओं के सम्बन्धों को जानते हुए सोम कर्मों में यज्ञ-मार्ग से प्रयुक्त होते हैं ।।१।। हवियों में प्रशंसति सोम जलों का मर्दन करता हुआ अपनी धार वर्षाता है ।।२।। हवियों में श्रेष्ट सोम वाणी का उत्पादक अभीष्टपूर्वक और अहिंसक हुआ यज्ञस्थ जल में शब्द करता हैं ।। ३ ।। सोम से जल शुद्ध होता है । वह जब स्तोत्रों से बढ़ता है, तब अन्नवान इन्द्र यज्ञ में भाग लेने के लिये अपने बल-भाग को उपयुक्त करता है ।।४।। कर्म कर्त्ता ऋत्विज सोम को प्रेरित करते हैं तब वह वर्षण शील हुआ राजा के समान यज्ञ बाधाओं को नष्ट करता है

।।४।। देव-प्रिय हरा सोम जलों में मिश्रित हुआ छनता है शब्द करता हुआ सोम स्तुति द्वारा ग्रहण किया जाता है ।।३।। सोम को सिद्ध करने के कार्यों को क्रीड़ा रूप से करने वाला यजमान वायु, इन्द्र और अश्विनीकुतारों को प्राप्त करता है ।।७।। जो यजमान अपने सोंम की तरङ्गो को मित्र, वरुण भग देवताओं के निमित्त करते हैं वे सोम के ज्ञाता यजमान सुखों का उपभोग करते हैं ।।८।। हे आकाशापृथिवी के अधीश्वरो ! तुम दिव्यानन्द वाले सोम के लाभ के निमित्त हमको अन्न पशु आदि युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो ।-९।। हे सोम ! हक याज्ञिक नत मस्तक हुए तेरे बल को चाहते हैं । तेरे बल सुखोत्पादक, धनदाता, रक्षक और अभीष्ट प्राप्त के लिये अनेकों द्वारा कामना किया जाता है ।।१०।। हे हर्ष प्रदायक सोम ! है सर्व सेव्य ! तेरी आराधना और सेवा करते हैं । तू बुद्धि युक्त स्तुत्य, रक्षक और अनेकों द्वारा काम्य है ।।११।। हे उत्तम प्रज्ञा वाले ! धन, ज्ञान और रक्षा के निमित्त हम तेरी प्रार्थना और उपासना करते हैं ।।१२ (२) ।।

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या शँश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।

कविं संम्राजमिथिं जनानाम सन्नःपात्रं जनयन्तदेवाः ।१

त्वां विश्वे अमृतंजायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते

तव क्रतुभिरमृतत्वमायन् वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ।।२

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहा वमभि सं नवन्त

वैश्वानरं रथ्यमध्वराणाँ यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ।३३

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा ।

महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।
देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।
महि वां क्षत्रं देवेषु ।३।४

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥१

इन्द्रा याहि धितेषितो विप्रजतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघत ॥२

इन्द्रः याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥३।५

तमोडिष्व यो अर्चिषा वना विश्दा ।
कृष्णा कूणोति जिह्वया ॥१

य इद्र आ विवसति सन्नविन्द्रस्य मर्त्यः ।
द्युम्नाय सुतरा अपः ।।२

ता नो वाजवतीरिष आशून् पितृततर्वत. ।
एन्द्रमग्नि च वोढवे ॥३॥६ (८-३)

आकाश के मूर्धा रूप-यज्ञार्थ सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न अतिथि के समान पूज्य, देवताओं में मुख्य वैश्वानर अग्नि को

अरणियों द्वारा प्रकट किया गया ।। १ ।। हे अमृतरूप अग्ने अरणियों से उत्पन्न तेरी सब स्तोता बालक के समान प्रशंसा करते हैं तू आकाश पृथिवी के मध्य जब प्रदीप्त होता है तब यजमान दिव्य-गुण प्राप्त करते हैं ।। २ ।। यज्ञ नाभि धन के घर महान आहुति युक्त अग्नि की याज्ञिकगण उत्तम प्रकार प्रार्थना करते हैं। यज्ञों का निर्वाहक, अग्नि मन्थन द्वारा प्रकट होता है ।।३ (१) ।। हे ऋत्विज तुम मित्र वरुण की विस्तृत स्तुति करो ओर वे दोंनो तुम्हारे यज्ञ में पधारें ।।१।। मित्र और वरुण दोनों सब के अधिष्ठाता, जलोत्पादक, ज्योतिमान सर्व देवों में श्रेष्ठ हैं उनका स्तवन करो ।। २ ।। मित्र और वरुण पार्थिव और दिव्य धनों को देने वाले हों। हे देवद्वय ! देवताओं में भी तुम्हारे महिमावान् बल की प्रशंसा करते हैं ।। ३ (४) ।। हे अद्भुत प्रतिभा वाले इन्द्र ! इस यज्ञ कर्म में आकर ऋत्विजों द्वारा शद्ध इस सोम को अपनाओ ।।१।। हे इन्द्र ! हमारी उपासना से प्रेरित इस निष्पन्न सोंम वाले ऋत्विज के वेद वर्णित स्तोत्रों को यहाँ आकर ग्रहण करो ।।२।। हे इन्द्र ! इन स्तोत्रों को सुनने के लिये शीघ्र ही पधारो । हमारे हवि-रूप अन्न के धारक बनो ।।३ (५) ।। जिस अग्नि की प्रचण्ड ज्वालायें सब वनों को घेर कर भस्मीभूत कर काले कर देती हैं उसी अग्नि का स्तवन करो ।।१।। इन्द्र के लिये प्रज्ज्वलित अग्नि में हवि देने वाला, इन्द्र से अन्न सुख के लिये वर्षा रूप जलों को प्राप्त करता है ।।२।। हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों को हवि देने के लिए हमें बल देने वाला अन्न और द्रुतगामी अश्व प्रदान करो ।।३ (६) ।।

प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतं सखा सख्युर्न
प्र मिनाति संगिरम् ।

मर्यं इव युवतिभिः समर्षति सोमः कलशे शतयामना
पथा ।१
प्रवो धियो मन्द्र युवो विपन्युवः पनस्युवः संवरणेष्वक्रमुः
हरिं क्रीडन्तमभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः
पयसेदशिश्रयुः ॥२
आ नः सोम संयतं पिप्युषि मिषमिन्दो पवस्व
पवमान ऊर्मिणा ।
या नो दोहते त्रिरहन्नसश्चुषी क्षुमद्वाजवन्मधुमत्सुवी-
र्यम् ॥३।७
नं किष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णुमोजसा ॥१
असाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामीरनोनवु ॥२ ८
(८—४)

सोम इन्द्र के उदर में स्थित होता हुआ मित्र रूप से वर्तता है। तरुणियों को प्राप्त होने वाले पुरुष के समान सोम जलो को प्राप्त करता हैं ॥१॥ हे सोम ! ध्यानी, स्तुति करने वाले यज्ञ-कर्मों को करते और सोम को शोधते हैं। गौएँ इस सोम को देखते हुई अधिक दूध देने वाली होती हैं ॥२॥ हे प्रकाशित सोम तू शुद्ध हुआ हमारे संग्रहीत अन्न को अपने रस से शुद्ध कर। वह अन्न मधुर हुआ सुन्दर सशक्त पुत्र को देने वाला है ॥३(७)॥ वृद्धिदायक, शत्रु-तिरस्कारक इन्द्र को यज्ञ-कर्म से अनुकूल करने

वाला बैरियों से हिंसित नहीं होता ॥१॥ परम पराक्रमी इन्द्र की स्तुति करता हूँ, जिसके प्रकट होने पर गौएँ, बकरियाँ और आकाश-पृथ्वी के सभी जीव सिर झुकाते हैं ॥२ (८) ॥

सखाय आ निषीदत पुनानाय प्रगायत ।

शिशु न यज्ञैः परि भूषत श्रिये ॥1

समी वत्सं न मातृभिः सृजत गय साधनम् ।

देवाव्यां मदमभि द्विशवसम् ॥२

पुनाता दक्षासाधनं यथा शर्धाय वीतये ।

यथा मित्राय वरुणाय शन्तमम् ॥३-९॥

प्र वाच्यक्षाः सहस्रधारस्तिरः पवित्रं वि वारमव्यम् ॥

स वाज्यक्षः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः।२

प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा नृभिर्येमानो अद्रिभिः सुतः

॥३-१०

ये सोमासः परावति ते अर्वावति सुन्वरे ।

येये वाद शर्यणावति ॥1

य आर्जीकेषु कृत्वषु ये मध्ये पस्त्यानाम् ।

ये वा जनेषु पञ्चसु ॥२

ते नो वृष्टि दिवस्परि पवन्ताता सुवीर्यम् ।

स्वाना देवास इन्दवः ॥३॥११ (८-५)

हे मित्रों सोम की स्तुति गाओ। पिता द्वारा शिशु को सुशोभित करने समान हवि आदिप दाथों से सोम को सजाया जाता है ॥१॥ हे ऋत्विजो! साधक, दिव्य गुण रक्षक हर्षप्रदायक बल-बर्द्धक सोम को जलों में मिश्रित करो ॥०॥ वेग प्राप्त करने के निमित्त देवताओं के पीने को, मित्र-वरुण के लिए सुख दायक बनाने के लिये सोम को शुद्ध करो ॥३ (६)॥ पराक्रमी, अनेक धार वाला सोम छन कर अनेक धारों से टपकता है ॥ १ ॥ असख्य वीर्य वाला जलों से स्वच्छ किया गया, गोघृताति से मिश्रित सोम क्षरित होता है ॥ २ ॥ हे सोम! ऋत्विजों द्वारा नियम-पूर्वक शोधित और पाषाणों से निष्पन्न तू इन्द्र के उदर रूप कलश को प्राप्त हो ॥३ (१०) ॥ दूर या समीप के स्थानों में शोधे जाने बाले सोम इन्द्र के निमित्त होते है वह हमको अभीष्टदाता बने ॥ १ ॥ जो सोम दूर या समीप के कर्म प्रधान देशों में नदियों के निकट उत्पन्न होते और संस्कार किये जाते हैं, वह हमारा मनोरथ पूर्ण करने वाले हों ॥ ३ ॥ वर्षणशील निष्पन्न सोम हमारे लिये वर्षा और सन्तति दाता हों ॥(११)॥

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चित् सधस्थात् ।

अग्ने त्वां कामये गिरा ॥१

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि दिशो विश्वा अनु प्रभुः ।

समत्सु त्वा हवामहे ॥२

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे ।

वाजेषु चित्रराधसम् ॥३॥१२

त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे ।
आ वीरं पृतनासहम् ॥१

त्वं हि नः वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥२

त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे सहस्कृत ।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥३॥३

यदिन्द्र चित्र म इह नास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभया हस्त्या भर ॥१

यन्मयन्से वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावनः ॥२

यत्ते दिशु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृढ़ा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ।३।१४ (८–६)

हे अग्ने ! उपासक, इच्छित स्तुतियों द्वारा तेरे मन को सूर्य लोक से भी खींच लाता है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तू सम—दृष्टि वाला सब दिशाओं का ईश्वर है। संघर्षों में रक्षा के निमित्त आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ संघर्ष बल के लि रक्षा के लिये स्तुत्य धनवान् अग्नि का आह्वान करते हैं ॥३ (१२ ॥ हे असंख्य-कर्मा इन्द्र ! हमको अन्न, बल प्रदान कर। शत्रुनाश कर वीर पुत्र का दाता हो ॥१॥ हे इन्द्र ! तू पिता समान पालक और माता के समान धारक है। हम तुझ से सुख माँगते हैं ॥ २ ॥ स्तुति

करने वाले से बलवान हुए, यजमानो द्वारा स्तुत्य बल की कामना से स्तबन करते हुये उत्तम ऐश्वर्य भी माँगते है ।३ (१३) हे वज्रिन् ! जो धन तुम दे सकते हो, वह तेरे पास नही हैं । हे इन्द्र ! हमको वह धन प्रदान करो ।।१।। हे इन्द्र ! जिस अन्न को तुम श्रेष्ठ मानते हो, वह अन्न हमें प्रदान करो ।।२।। हे इन्द्र ! स्तुत्य एवं विख्यात मन से दृढ़ अन्न को तुम हमारे लिये देने वाले हो ।।३ (१४) ।।

पञ्चम प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषिः—प्रतर्दनो देवौदासिः, असतिः, काश्यपो देवलो वाः उच्थ्यः, अमहीयुः, निध्रुविः, काश्यपः, वसिष्ठः, सुकक्षः, कवि देवातिथिः, काण्वः, भर्गः, प्रगाथः, अम्बरीषः ऋजिश्वा चः अग्नयो विष्णया ऐश्वराः, उशना काव्यः, नृमेधः, जेता माधुच्छन्दसः । देवता—पवमानः सोमः अग्निः, इन्द्रः । छन्द—त्रिटुष्प्ः गायत्री जगतीः, वार्हतः प्रगाथः, अनुष्टुप् पंक्ति उष्णिक ।

विशुं जज्ञानं हर्नंतं मृजन्ति शुम्भन्ति विप्रं मरुतो गणेन ।
कविर्गीर्भिः काव्येन कविः सन्सोमः पवित्रमत्येति ।
रेभन ।।१
ऋषिमना य ऋषिकृत् स्वार्षाःसहस्रनीथः
पदवीःकवीनाम् ।
तृतीय धाम महिषः सिषासन्त्सोमौ विरजमनु
राजति ष्टुप् ।।२

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥३॥६

एते सोमा प्रियमिन्द्रस्य काममक्षरन् ।
वर्धन्तो अस्य वीर्यम् ॥१
पुनानासश्चमूषदो गच्छन्तो वायुमश्विना ।
ते नो धत्त सुवीर्यम् ॥२
इन्द्रस्य सोम राधसे पुनानो हार्दि चोदय ।
देवानां योनिमासदम् ॥३
मृजन्ति त्वा दश क्षिपो हिन्वन्ति सप्त धीतयः ।
अनु विप्रा अमादिषुः ॥४
देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्य ।
स गोभिर्वासयामसि ॥५
पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः ।
परि गव्यान्यव्यत ॥६
मघोन आ पवस्व नो जहि विश्वा अप द्विषः ।
इन्दो सखायमा विश ॥७
नृचक्षसं त्वा वयमिन्द्रपीतं स्वर्विदम् ।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥८
वृष्टिं दिवः परि स्रव द्युम्नं पृथिव्या अधि ।
सहो नः सोम पृत्सु धाः ॥९॥२॥ (६-१)

उत्पन्न शिशु के समान सबको प्रफुल्लित करने वाले सोम को मरुदगण शोधित हैं। फिर वह स्तुतियों द्वारा शब्द करता हुआ कलश में पहुँचता है ।१।। समदर्शी, सर्वसेवी, स्तुत्य, परम-पूज्य सोम लोक की इच्छा वाया स्तुल्य हुआ इन्द्र को प्रकाशित करता हैं ।।२।। प्रसंशित सामथ्यों का दाता जल प्रेरक अन्तरिक्ष की इच्छा वाला सोम चन्द्रलोक कों जाता है ।। ३ (१) ।। इन्द्र की शक्ति को बढ़ाने वाला यह सोम इन्द्र को प्रसन्न करने वाले रसों की वर्षा करता है ।।१।। हे शोभित सोंमो ! तुम वायु और अश्विनीकुमार को प्राप्त हुये हमें वीर बनाओं ।।२।। हे सोम ! तू हृदय को इन्द्र की उपासना के लिये प्रेरित कर। मैं देव-यजन के साधन यज्ञ को कर रहा हूँ ।।३।। हे सोम ! तुझे दस अँगुलियां शोधती और होता तृप्त करते हैं तथा स्तोता हर्ष प्रदायक बनाते हैं ।।४।। हे सोम ! छन्ने में शोधा जाता तू देवताओं को मग्न करने के लिये गोघृतादि से युक्त किया जाता है ।।५।। कलशों में निचोड़ा जाता हुआ तरल रूप सोम ! तू हरे रंग का गो-दुग्धादि पर ढके वस्त्रों पर डाला जाता है ।।६।। हे सोम ! हम ऐश्वर्य-युक्त हुओं के सामने गिरता हुआ सब बैरियों का नाशक हो और मित्र इन्द्र का साथी हो ।।७।। हे सोम ! सर्वज्ञ इन्द्र के तुम पेय का सेवन करते हुये हम पुत्रादि से युक्त अन्नादि सुखों का भोग करें ।।८।। सोम ! आकाश से जल वर्षा कर पृथ्वी पर अन्न को उपजा, युद्धों में हमारे बल को व्याप्त कर ।।९ (२) ।।

सोमः पुनानो अर्षति सतस्रधारी अर्यवः ।

वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम् ।।१

पवमानमवस्थवो विप्रमभि प्र गायत ।
सुष्वाणं देववीतये ॥२

पवन्ते वाजसातये सोमाः सहस्रपाजसः ।
गृणाना देववीतये ॥३

उत नो वाजसातये पवस्व बृहतीरिषः ।
द्युमदिन्दो सुवीर्यम् ॥४

अत्या हियाना न हेतृभिरसृग्रं वाजसातये ।
विवारमव्यमाशवः ॥५

ते नः सहस्रिणं रयिं पवन्तामा सुवीर्यम् ।
स्वाना देवास इन्दवः ॥६

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न मातरः ।
दधन्विरे गभस्त्योः ॥७

जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिक्रदत् ।
विश्वा अप द्विषो जहि ॥८

अपघ्नन्तो अराव्णः पवमानाः स्वर्दृशः ।
योनावृतस्य सीदत ॥९॥३ (९–२)

परिष्कृत, अनेक धार युक्त, शोधक सोम वायु इन्द्र के पान करने के लिये पात्र में स्थित होता ॥ २ ॥ हे रक्षा कामना वालो ! तुम शोधक, तृप्तिकर, देव-पान योग्य सिद्ध किये गये

सोम के सामने झुक कर स्तुति गान करो ॥ २ ॥ अन्न प्राप्ति के लिये किये गये इस देव यज्ञ की सफलता के लिये स्तुत्य और बलदायक सोम टपकते हैं ॥ ३ ॥ हे सोम ! तेजवान् उत्तम सामर्थ्यों की वर्षा करो और जीवन संघर्ष के लिये अन्नों की वर्षा करो ॥४॥ युद्ध की प्रेरणा वाले सोम ऋत्विजों द्वारा छन्ने में डाल कर छाने जाते हैं ॥ ५ ॥ वह दिव्य सोम हमको असख्य ऐश्वर्य और उत्तम वीरता प्रदान करे ॥ ६ ॥ गौ के बछड़े की ओर जाने के समान शब्द करते हुये सोम पात्र में लाते हुये, हाथों में रहते हैं ।७॥ सोम ही इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए तृप्तिकारक है । वह अपने शब्द से हकारें बैरियों का नाश कर ॥८॥ हे सोमो ! अदानशीलों का नाश करते हुए सबको देखने वाले तुम इस यज्ञ-स्थान में स्थित होओ ॥९ (३) ॥

सोमा असृग्रमिन्दवः सुता ऋतस्य धारया ।
इन्द्राय मधुसत्तमाः ॥१

अभि विप्रा अनुषत गावो वत्सं न धेनवः ।
इन्द्रं सोमस्य पातये ॥२

मदच्युत क्षेति सादने सिन्धोरूर्मा विपश्चित् ।
सोमो गौरी अधिश्रितः ॥३

दिवो नाभा विचक्षणोऽव्या वारे महीयते ।
सोमो यः सुक्रतुः कविः ॥४

यः सोमः कलशेष्वा अंतः पवित्र आहितः ।
तमिन्द परि षस्वजे ॥५

प्र वाचमिंदुरिष्यति समुद्रस्याधि विष्टपि ।
जिन्वन् कोशं मधुश्चुतम् ॥६

नित्यस्तोत्रो वनस्पतिर्धेनामन्त सबर्दुघाम् ।
पिन्वानो मानुषा युजा ॥७

आ पवमान धारया रयिं सहस्रवर्चसम् ।
अस्मे इंदो स्वाभुवम् ॥८

अभि प्रिया दिवः कविर्विप्रः स धारया सुतः ।
सोमो हिन्वे परावति ॥९॥४ (९-३)

यज्ञ के लिये शोधे बने मधुर रस युक्त सोम को इन्द्र के लिये उपयुक्त करते हैं । १ । हे ऋत्विजो ! बछड़े की सन्तुष्टि के लिये शब्द करती हुई गौओं के समान इन्द्र की स्तुति करो । २ । हर्षप्रदायक, रसवषक सोम यज्ञ स्थान में प्रतिष्ठित होता है । नदी की तरङ्गों के समान वाणी को तरङ्गित करता है ॥ ३ ॥ उत्तम सोम अन्तरिक्ष की नाभि समान ऊन के छन्ने में संस्कृत होता है । ४ । कलशों में स्थित सोम अंश भूत सोम में चन्द्रमा का सौम्य गुण प्रविष्ट होता है ॥ ५ ॥ मधुदायक कलश को पूर्ण करने वाला सोम अन्तरिक्ष के आश्रय स्थान मे शब्दवान् होता है । ६ । नित्य प्रशंसित, धनों का अधीश्वर सोम अमृत-मयी वाणी स्तुतियों को ग्रहण करे ॥ ७ ॥ हे शोधित सौम ! सुन्दर गृह और ऐश्वर्य को हमारे लिये स्थापित कर ॥ ८ ॥

निष्पन्न सोम अपनी तृप्तिकारक धारा से दिव्य स्थानों की प्रेरणा करता है। (१)॥

उत्ते शुष्मास ईरसे सिन्धोरुर्मेरिव स्वनः।

वाणस्य चोदता पविम् ।१

प्रवसे त उदीरते तिस्रो वा मखस्युवः।

यदव्य एषि सानवि ।२

अव्या वारैः परि प्रियं हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः।

पवमानं मधुश्चुतम् ।३

आ पवस्व मदिन्तम पवित्रं धारया कवे।

अर्कस्य योनिमासदम् ।४

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः।

एन्द्रस्य जठरं विश ।५।५ (६—४)

हे सोम ! तरङ्गित शब्द के समान तू भी तरङ्गित होता है। तू बाण के शब्द की प्रेरणा दे ।१। तेरे प्राकट्य पर यज्ञेच्छुकों के ऋक- यजु साम रूप वाक्य प्रकट होते हैं ॥ २ ॥ दिव्य, हरित, पाषाणों से पीसे गये मधुर रस देने वाले सोम को छन्ने में डालते हैं। ३। हे अह्लादक सोम ! इन्द्र के उदर में पहुँचने के लिये छनता हुआ टपक। ७। हे आह्लादक सोम ! गोदुग्धादि के मिश्रण से प्रशंसित तू बरसता हुआ इन्द्र के उदर में जा ।५ (५)।

अया वीती परि स्रव यस्त इन्दो मदेष्वा ।

आवाहन्नवतीर्नव ।१

पुरः सद्य इत्थाधिये दिवोदासाय शम्बरम् ।

अध त्यं तुर्वशं यदुम् ।२

परि नो अश्वमश्वविद् गोमदिन्दो हिरण्वत् ।

क्षरा सहस्रिणीरिषः ।३।६

अपघ्नन् पवते मृधोऽप सोमो अराव्णः ।

गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।१

महो नो राय आ भर पवमान जही मृधः ।

रास्वेन्दो वीरवद्यशः ।२

न त्वा शतं च न ह्रुतो राधो दित्सन्तमा मिनन्

यत्पुनानो मखस्यसे ।३।७

अया पवस्व धारया यया सूर्यमरोचय ।

हिन्वानो मानुषीरपः ।१

अयुक्त सूर एतशं पवमानो मनावधि ।

अन्तरिक्षेण यातवे ।२

उत त्या हरितो रथे सूरो अयुक्त यातवे ।

इन्दुरिन्द्र इति ब्रुवन् ।३।८(६—५)

हे सोम ! इन्द्र के सेवनार्थ अपने रस की वर्षा कर ! तू शत्रुओं का नाशक हो ॥१॥ इन्द्र के पिये हुये सोम द्वारा शत्रु का ध्वंस होता है ॥२॥ हे सोम ! हमको गो, अश्व सुवर्ण आदि ऐश्वर्य और अन्नों का प्रदाता हो ॥३ (३) ॥ हिंसकों का नाशक, अदानशीलों का हिंसक सोम इन्द्र स्थान को प्राप्त हुआ धार रूप मे गिरता है ॥१॥ हे तरल सोम ! हमको वहुत सा धन पुत्रादि और यश प्राप्त कराते हुए शत्रुओं का हनन करो ॥२॥ हे सोम ! तू धन देने की इच्छा करता है तो तुझे कोई नहीं रोक सकता ॥३ (७) ॥ हे सोम ! मनुष्यों के हितैषी जलों को प्रेरित करता हुआ सूर्य को प्रकाशित करने वाली धारा से वर्षा कर।१। अन्तरिक्ष मार्ग से जाने को प्रेरित सोम सूर्य अश्व रूपी तेज को जोड़ने वाला है। २। सोम को पुकारते हुए इन्द्र हरे वर्ण वाले अश्वों को सूर्य के समान प्रकाशित पथ में युक्त करता है ॥ ३(८) ॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२

उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधाना ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एषि सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३॥९

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे ।

स वृषा वृषभो भुवत् ॥१

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः बलं हितः ।

द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥२

गिरा वज्रो न सम्भृतः स बलो अनपयुच्युतः ।

ववक्ष उग्रो अस्तृतः ॥३॥१०॥ (६-६)

हे देवताओं ! यज्ञ में इस पूज्य अग्नि को दूत बनाओ । वह देवता होकर भी मनुष्यों के साथी हैं यरू से सम्वन्धित ताप-युक्त तेज वाला, घृत-भक्षक एवं सर्व-शोधक है ॥ १ ॥ घाम मे चरते हुए अश्व के तुल्य दानावल फले हुये वृक्षों में जाता है तब इसकी ज्वालायें वायु की अनुगत होती हैं, फिर तेरा पथ भी काले रङ्ग का होता है ॥ २ ॥ हे अग्ने तेरी ज्वालायें प्रदीप्त होती हैं तब तू प्रकाशित हुआ धूम शिखा वाला आकाश मार्ग को जाता हुआ इन्द्रादि देवों को प्राप्त होता है । ३ । ९ । राक्षसों के नाश के लिये सोम और स्तुतियों से इन्द्र को बल देते हैं । वह धन-वर्धक इन्द्र हमको धन देने वाला है । १ । प्रजापति के इन्द्र को धन देने के लिये बनाया है । वह बल दाता इन्द्र सोमपान के लिये ब्रह्मा ने नियुक्त किया है ।२। स्तुतियों द्वारा बलवान किया गया महान् शत्रु से अपराजित इन्द्र स्तोताओं को धन देने की इच्छा करता है ॥ ३-१० ॥

अध्वर्यो अद्रिभि सुतं सोगं पवित्र आ नय ।

पुनाहीन्द्राय पातवे ।१

तव त्य इन्दो अंधसो देवा मधोर्व्याशत ।

पवमानस्य मरुतः ।२

दिवः पीयूषमुत्तमं सोममिन्द्राय वज्रिणे ।

सुनोता मधूमत्तमम् ।३।११

धर्ता दिवः पवते कृत्व्यो रसो दक्षो देवानामनुमाद्यो

नृभिः । हरिः सृजानो अत्यो न सत्वभिर्वृथा पाजांसि

कृणुषे नदीष्वा ।

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वाः सिषासन्

रथिरो गविष्टिषु ।

इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो

अज्यते मनीषिभिः ।१

इन्द्रस्य सोम पवमान ऊर्मिणा तविष्यमाणो जठरे ष्वा

विश ।२

प्र नः पिन्व विद्युदभ्रेव रोदसी धिया नो वाजां

उप माहि शश्वतः ।३।१२

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा यसे नृभिः ।

सिमा पूरु नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ।१

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।

ऋण्ठासस्तवा स्तोमोऽभिर्ब्रह्मवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ।२।१३

उभयं श्रृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवान्त्सोमपीतये धिया शविष्ठआ गमत् ।१
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसा धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं
हि ते मनः ।२।१४। (६-७)

हे अध्वर्यु ! पाषाणों से निष्पन्न इस सोम का इन्द्र के पीने के लिये शोधित कर।१। हे सोम ! वह इन्द्रादि और मरुद्गण तेरे हर्षप्रदायक रस का सेवन करते हैं । २ । अत्यन्त मधुर, दिव्य, अमृत के समान उत्तम सोम को वज्र धारण करने वाले इन्द्र के लिये शोधो । ३ । (११) शोधन, योग्य, रसयुक्त, सर्वधारक सोम छन्ने में गिरता है। उसे हम जीव ही उपयुक्त करते हैं । १ । वह सोम यजमान को गौओं की कामना से इन्द्र में पुष्टि को प्रेरित करता है। वह ऋत्विजों द्वारा गोदुग्धादि से मिश्रित किया जाता है । २ । हे संस्कार किये जाने सोम ! तू इन्द्र के पेट में जा । विद्युत द्वारा मेघों के दुहे जाने के समान हमारे निमित्त दिव्य और पार्थिव गुणों का दोहन कर। कर्म करता हुआ तू अन्न की रचना कर। (१२)। हे इन्द्र ! तुम दिशाओं में वर्तमान स्तोताओं द्वारा कार्यावसर पर बुलाये जाते हो । हे शत्रु तिरस्कार ! तुम ऋत्विजों द्वारा प्रेरणा किये जाते हो । हे इन्द्र ! तुम मिलकर प्रसन्न किये जाते हो । ऋषि-गण तुम्हें विभिन्न स्तोत्रों से वशीभूत करते हैं । हे इन्द्र ! तुम

हमारा कार्य करो ।।२ (३) ।। हमारे स्तोत्र और शास्त्र समस्त वाणियों को इन्द्र हमारे सामने आकर श्रवण करें । प्रतिष्ठा वाली बुद्धि से युक्त इन्द्र पराक्रमी हुआ यहाँ आकर सोम पान करे । १ । आकाश और पृथिवी के निवासी, जगत के उपकारक इन्द्र को अपने बल से पाते हैं । वह इन्द्र देवताओं में श्रेष्ठ हुआ वेदी में प्रतिष्ठित हुआ सोम को इच्छा करता है ।।(१४)।।

पवस्व देव आयुषगिन्द्रं गच्छतु ते मदः ।
वायुमा रोह धर्मणा ।।१
पवमान नि तोशते रयिं सोम श्रवाय्यम्
इन्दो समुद्रमा विश ।।२
अपघ्नन् पवसे मृधः क्रतुवित्सोम मत्सरः ।
नुदस्वादेवयुं जनम् ।।३।।१५

अभी नो वाजसातमं रयिमर्ष शतस्पृहम् ।
इन्द्रो सहस्रभर्णसं तुविद्युम्नं विभासहम् ।।१
वयं ते अस्य राधसो सोर्वसो पुरुस्पृहः ।
नि नेदिष्ठतमा इषः स्याम सुम्ने ते अध्रिगो ।।२
परि स्य स्वानो अक्षरदिन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा न याति गव्ययुः ।३।१६
पवस्व सोम महान्त्समुद्रः पिता देवानां विश्वाभि धाम

शुक्रः पवस्व देवेभ्यः सोम दिवे पृथिव्यै शं च प्रजाभ्यः ॥२

दिवो धर्त्तासि शुक्रः पीयूषः सत्ये विधर्मन्
वाजो पवस्वः ॥३॥१७ (९-८)

हे सोम ! दिव्य हुआ तू वर्षणशील हो। तेरा तरङ्गयुक्त रस इन्द्र को प्राप्त हो धारक रस वायु को मिले। १। हे तरल सोम ! शत्रु को पीड़ित करने वाला तू कलश को प्राप्त हो।२। हे क्रियाओं के प्रेरक सोम ! तू आह्लादक और पवित्र प्रवाह वाला है। पापियों को दूर शर कर। (१५)। हे हर्षप्रदायक ! तू हमको प्राण शक्ति वाला अभीष्टपालक, तेज और ऐश्वर्य का प्रदाता हो। १। हे उत्तम वास देने वाले सोम ! हम तेरे प्रेरणा स्वरूप धन देने के निकट पहुँचे तेरे द्वारा प्राप्त आनन्द में स्थित हों। २। वह हर्षोत्पादक सोम प्रेरणा करता हुआ, आनन्द रस की वर्षा करता हुआ आवे और इस यज्ञ में ज्ञान को प्रकाशक धाराओं को प्रेरित करे। ३ (१६)। हे सोम ! दिव्य गुणों को देने वाला तू रस बहाने वाला, पालक और वर्षणशील है ॥१॥ हे सोम तू दिव्थ गुणों के लिये प्रवाहित हो और प्रजाओं को सुखी कर। २। हे सोम ! तू चमकदार पेय और दिव्य गुणों का धारक है। हे बलवान् तू यज्ञ में सत्य रूप से बरस ॥३ (१७)॥

प्रेष्ठं वो अतिथि स्तुषे मित्रमिव प्रियम्।
अग्ने रथं न वेद्यम् ॥१
कविमिव प्रशंस्यं यं देवास इति द्विता।
नि मर्त्येष्व दधुः ॥२

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुही गिरः ।
रक्षा तोकमुत त्मना ।३।१८
एन्द्रा नो गधि प्रिय सत्राजिदगोह्य ।
गिरिर्न विश्वतः पृथुः पतिर्दिवः ।१
अभि हि सत्य सोमपा उभे बभूथ रोदसी ।
इन्द्रासि सुन्वतो वृधः पतिर्दिवः ।२
त्वं हि शश्वतीनामीन्द्र धर्ता पुरामसि ।
हन्ता दस्योर्मनवृधः पतिर्दिवः ।३।१९
पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा आजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ।१
त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ।
इन्द्रमीशानमोजसाभितोमैरनूषत ।२
सहस्रं यस्य रातय उत वः सन्ति भूयती ।३।२०(९–९)

हे अग्ने स्तुति करने वालों को धन के निमित्त अत्यन्त प्रिय एवं अतिथि तुल्य पूज्य, हवि-वाहक मित्र के समान सुख-दायक तेरा हम स्तवन करते हैं। १। अग्नि को इत्यादि देवगण ने गर्हपत्य और आह्वानीय रूपों से स्थापित किया। २। हे सतत युवा इन्द्र! हविदाताओं की रक्षा करता हुआ उनकी स्तुतियों पर ध्यान दे और हमारे पुत्र का भी रक्षक बन। ३।

(१८) हे सबको जीतने वाले इन्द्र ! तू अदृश न रहने वाला हमारे निकट प्रकट हो। पर्वत के समान विशाल और प्रकाश का पालक है। हे सत्य रूप आनन्द रस के पीने वाले इन्द्र ! तुम आकाश और पृथ्वी के सव पदार्थों में अत्यन्त श्रेष्ठ हो इन्द्र तू मन को साधन की ओर प्रवृत्त करने वाला एवं प्रकाश का स्वामी है। १-२। हे इन्द्र ! तू शाश्वत्, दोष नाशक, अज्ञान मिटाने वाला, यज्ञिकों को बढ़ाने वाला और दिव्य लोक का स्वामी है। (१९)। यह दुष्ट पुरों का भेदक, सतत, युवा, कर्मों का पोषक यजमान का रक्षक, स्तुत्य इन्द्र उत्पन्न हुआ।१। हे वज्रिन् ! तू बल के द्वार को खोलने वाला तथा इन्द्रियों का आश्रय स्थान है। १। संसार को वश में रखने वाले इन्द्र को स्तुति करने वाले मानते हैं। उस इन्द्र का दान सहस्रों से भी पूर्ण है।३। (२०)।

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋषि—पाराशरः शुनः शेप आशितः कश्यपो देवलो बा राहूगणः, प्रियमेधः, नृमेधः, पवित्रो वसिष्ठो वो वोभो वा, वसिष्ठः, वत्सः काण्वः, शर्त वैखानसाः सप्तर्षयः वसुभारिद्वाजः, भर्गः प्रगाथः, भरद्वाजः, मनुराप्सवः अम्बरीष ऋजिश्वा च, अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वराः, अमहीयुः, त्रिपोकः काण्वः, गोतमो राहूगणाः मधुच्छन्द वैश्वामित्रः। देवता—पवमानः सोमः, पवमानाध्येतृस्तुतिः, अग्निः, इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप् गायत्री अनुष्टुप्, बार्हतः प्रगाथः, पङ्क्तिः जगती, उष्णिक्।)

अक्रान्तसमुद्रः प्रथमे विधमन् जनयन् प्रजा भुवनस्य गोपाः।

वृषा हवित्रे अधि सावो अव्ये बृहत्सोमो ।
दावृधे स्वानो अद्रि: ॥१

मत्सि वायुमिष्टये राधते नो मत्सि मित्रावरुणा पूयमान
मत्सि शर्धो मारुतं मत्सि देवान् मत्सि द्यावापृथिवी
देव सोम ॥२

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।
अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः
॥३॥१

एष देवो अमर्त्यः पर्णवीरिव दीतये ।
अभि द्रोणान्यासदम् ॥१
एष विप्रै रभिष्टुयोऽपो देवो वि गाहते ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥२
एष विश्वानि वार्या शूरो यन्निव सत्वतिः ।
पवमानः सिषासति ॥३
एष देवो रथर्यति पवमानो दिशस्यति ।
आविष्कृणोति वग्वनुम् ॥४
एष देवो विपन्युभिः पवमान ऋतायुभिः ।
हरिर्वाजाय मृज्यते ॥५
एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति ।
पवमानो अदा ॥६

एष दिवं वि धावति तिरो रजांसि धारया ।

पवमानः कनिक्रदत् ॥७

एष दिवं व्यासरत्तिरो रजांस्यस्तृमः ।

पवमानः स्वध्वरः ॥८

एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः ।

हरिः पवित्रे अर्षति ॥९

एष उ स्य पुरुव्रतो जज्ञानो जनयन्निष ।

धारया पवते सुतः ॥१०॥२ (१०-१)

जल वर्षक, सर्वरक्षक सोम विस्तृत जल-धारक अन्तरिक्ष में प्रजोत्पत्ति के कारण महान् है। अभीष्टपूरक संस्कारित सोम ऊन के छन्ने में वृहद् होता है। १। हे स्तुत्य सोम ! अन्न धन के लिए वायु को प्रसन्न कर संस्कारित हुआ तू मित्र, वरण, मरुत, इन्द्रादि एवं आकाश पृथिवी को हर्षदायक हो। २। जलों के गर्भ रूप सोम देवताओं का सेवनकर्त्ता हुआ, उसी ने इन्द्र को बल दिया, वही सूर्य को तेज देने वाला है। सोम बहुकर्मा है ॥३ (१)॥ प्रकाशित मरण धर्म रहित यह सोम वेग पूर्वक कुशल की ओर गति करता है॥ १॥ स्तुति करने वालों से प्रशंसा को प्राप्त यह सोम हविदाता को धन देता हुआ जलों में वास करता है। २। यह तरल सोम वरण करने योग्य ऐश्वर्य को शक्ति से वशीभूत करता हुआ देने की इच्छा करता है।३।

यह दिव्य सोम यज्ञ में आने की इच्छा वाला अभीष्टदायक और शब्दवान् है। यह दिव्य सोम स्तोताओं द्वारा प्रशंसा गीतों से सुसज्जित किया जाता है। ५। अँगुलियों से निचोड़ा हुआ दिव्य सोम किसी के द्वारा न मारा जाकर शत्रुओं को नष्ट करता है। ६। धार रूप बरसता हुआ शब्दवान् सोम यज्ञ स्थान से दिव्य लोक को ऊर्ध्व गमन करने वाला है।७। उत्तम यज्ञ वाला सोम किसी के द्वारा भी हिंसित न होता हुआ यज्ञ-स्थान से दिव्य लोक को प्राप्त होता है। २। हरा चमकता हुआ यह सोम दिव्य गुणों के लिये सुसिद्ध किया जाता है। ६। वह सोम अन्नोत्पादक होता हुआ वर्षणशील असंख्य कर्मा हैं।१० (२)।

एष धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिरांशुभिः ।
यच्छन्निन्द्रस्य निष्कृतम् ।१
एष पुरु धियायते बृहते देवतातये । यत्रामृतास आशते।२
एतं मृजन्ति मर्ज्यमुप द्रोणष्वायवःप्रचक्राणं महीरिषः।।३
एष हितो वि नीयतेऽन्तः शुन्ध्यावता पथा ।
यदी तुञ्जन्ति भूर्णयः ।४
एष रुक्मिभिरीयते वाजी शुभ्रेभिरंशुभिः ।
पतिः सिन्धूनां भवन् ।५
एष शृङ्गाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा ।
नृम्णा दधान ओजसा ।६
एष वसूनि पिब्दनः परुषा ययिवां अति ।

एव शादेषु गच्छति ।७

एतमु त्यं दश क्षिपो हरिं हिन्वन्ति यातवे ।

स्वायुधं मदिन्तमम् ।८।३ (१०–२)

अँगुलियों से निष्पन्न सोम इन्द्र स्थान को जाता हुआ कर्मों द्वारा पहुंचता है । १ । महान देव यज्ञ में यह सोम अनेक कर्मों वाला होता है । २ । विभिन्न रस रूप अन्नों के वर्षक, शुद्ध होने योग्य सोम को ऋत्विज कलशों में छानते हैं । ३ । हवियों से संगत यह सोम अग्नि के निकट ले जाकर मध्य में डाले जाते हैं । अध्वर्युओं द्वारा देवार्पण के निमित्त होते हैं । ४ । श्वेत रश्मियों वाले वेगवान् सोम प्रबाहित हुये अध्वर्युओं की संगीत करते हैं । ५ । शक्ति से ऐश्वर्यों को धारण कराने वाला यह सोम वृषभ द्वारा सींगों को कपाने के समान अपनी तरगों को कम्पित करता है । ६ । अकर्मण्य दुष्टों को पीड़ित करता हुआ यह सोम लाँघने शक्ति वाला हुआ सिहा योग्य दुष्टों को मारने के लिये जाता है । ७ । परमायुध युक्त आह्लादक हरे रंग वाले सोम को दसों अँगुलियाँ गतिवान् करती हैं ।८ (३४) ।

एष उ स्य वृषा रथोऽव्या वारेभिरव्यत ।

गच्छन् वाजं सहस्रिणम् ।१

एतं त्रितस्य योषणो हरिं हिन्वन्त्यद्रिभिः ।

इन्दुमिन्द्राय पीतये ।२

एष स्य मानुषीष्वा श्येनो न विक्षु सीदति ।

गच्छञ्जारो न योषितम् ॥३

एष स्य मद्यो रसोऽव चष्टे दिवः शिशुः ।

य इन्दुर्वारमाविशत् ॥४

एष स्य पीतये सुतो हरिरर्षति धर्णसिः ।

क्रंदन् योनिमभि प्रियम् ॥५

एतं त्यं हरितो दश ममृज्यन्ते अयस्युवः ।

याभिर्मदाय शुम्भते ॥६॥४(१०-३)

अभीष्ट वर्षक वेगवान् सोम यजमानों को सहस्रों अन्न देने के लिये छनता हुआ कलश में प्रवेश करता है । १ । इन्द्र के पीने के लिये अँगुलियां इस हरे रङ्ग के सोम को प्रीरित करती हैं । २ । यह सोम मनुष्यों में अग्रहपूर्वक आकर प्रेमी के समान गुप्त रूप से व्याप्त होता है । ३ । आकाश में उत्पन्न हुआ है इस कारण उनके पुत्र तुल्य यह सोम हर्षयुक्त रस के रूप में सबको दिखाई देता है ॥ ४॥ देवताओं के लिये सम्पन्न हरा सोम शब्द करता हुआ कलश में जाता है । ५ । इस सोम को दस अँगुलियाँ इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये शुद्ध करती हैं ॥३(४)॥

एष वाजी हितो नृभिर्विश्वविन्मनसस्पतिः ।

अव्यं वारं वि धावति ॥१

एष पवित्रे अक्षरत् सोमो देवेभ्यः सुतः ।

विश्वा धामान्याविशन् ॥२

एष देवः शुभायतेऽधि योनावमर्त्यः ।
वृत्रहा देववीतमः ॥३

एष वृषा कनिक्रदद् दशभिर्जामिभिर्यतः ।
अभि द्रोणानि धावति ॥४

एष सूर्यमरोचयत् पवमानो अधि द्यवि ।
पवित्रे मत्सरो मदः ॥५

एष सूर्येण हासते संवसानो विवस्वता ।
पतिर्वाचो अदाभ्यः ॥६॥५ (१०-४)

वेग से पात्रों में जाता हुआ यह मनस्वी सोम ऊन के छन्ने में से धार रूप गिरता हैं ॥१॥ देवताओं के निमित्त निष्पन्न यह सोम छन कर शुद्ध होता और देवताओं की देहों में स्थापित होता है ॥२॥ मरण-धर्म से पृथक यह शत्रु-नाशक सोम दिव्य गुणों की इच्छा से कलशस्थ होता है ॥ ३ ॥ अभीष्ट-वर्षक यह सोम शब्द करता हुआ कलश में प्रविष्ट होता है ॥४॥ प्रसन्नप्रद संस्कारित सूर्य मण्डल में स्थित सूर्य को प्रकाश देता हैं ॥५॥ वागीश्वर, अहिंसित सोम सबको ढकता हुआ प्रकाशित सूर्य द्वारा छन्ने पर डाला जाता है ॥६ (५)

एष कविरभिष्टुतः पवित्रे अधि तोशते ।
पुनानो घ्नन्नप द्विषः ॥१

एष इन्द्राय वायवे स्वर्जित परि षिच्यते ।

पवित्रे दक्षसाधनः ॥२

एष नृभिर्वि नीयते दिवो मूर्धा वृषा सुतः ।
सोमो वनेषु विश्ववित् ॥३

एष गव्युरचिक्रदत् पवमानो हिरण्ययुः ।
इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥४

एष सुष्म्यसिष्यददन्तरिक्षे वृषा हरिः ।
पुनान इंदुरिन्द्रमा ॥५

एष शुष्म्यदाभ्यः सोमः पुनानो अर्षति ।
देवावीरघशंसहा ॥६॥६ (१०–५)

स्तुत्य सोम शुद्ध होता शत्रु रहित काले मृग की छाल पर कूटा जाता है ॥१॥ बल साधक, विजेता सोम इन्द्र और वायु के लिये निचोड़ा जाता हैं ॥२॥ दिव्य-लोक के मूर्धा रूप, अभीष्ट वर्षक सोम काठ के पात्रों में धार से छोड़ा जाता है ॥३॥ गो और सुर्वणादि धनों की हमारे लिये इच्छा करने वाला शत्रु-विजेता अहिंसित सोम शब्द करने वाला है ॥४॥ अभीष्टपूरक हरे रंग का शुद्ध करने वाला उज्ज्वल सोम छन्ने में टपकता है यह इन्द्र को सन्तुष्ट करने वाला है ॥५॥ देवताओं की रक्षा करने वाला, पाप-कर्मियों को नष्ट करने वाला नष्ट न करने योग्य, शुद्ध पराक्रमी सोम कलश में जाता है ॥६ (६) ॥

स सुतः पीतये वृषा सोमः पवित्रे अर्षति ।

विघ्नन् रक्षांसि देवयुः ॥१

स पवित्रे विचक्षणो हरिरर्षति धर्णसिः ।
अभि योनिं कनिक्रदत् ॥२

सं वाजी रोचनं दिवः पवमानो वि धावति ।
रक्षोहा वारमव्ययम् ॥३

स त्रितस्याधि सानवि पवमानो अरोचयत् ।
जामिभिः सूर्यं सह ॥४

स वृत्रहा वृषा सुतो वरिवोविदाभ्यः ।
सोमो वाजमिवासरत् ॥५

स देवः कविनेषितोऽभि द्रोणानि धावति ।
इन्दुरिन्द्राय मंहयन् ॥६॥७ (१०—६)

दिव्य कामना वाला वह सोम इन्द्रादि के लिये निकाला गया, अभीष्टवर्षक, दुष्टों का नाशक छन्ने में जाता है ॥ १ ॥ सर्व-द्रष्टा, पाप-नाशक, धारक सोम छनता हुआ शब्द करता और कलशस्थ होता है ॥२॥ आकाश में गमन करने वाला वेग-युक्त दैत्य-नाशक शोधित सोम छन कर धारयुक्त है ॥३॥ वह सोम यज्ञ में संस्कारित हुये अत्यन्त तेज से सूर्य को प्रकाशित करता है ॥४॥ शत्रु-नाशक, वर्षक, निष्पन्न, धनदायक, अहिंसनीय सोम अश्व-वेग से कलश को प्राप्त होता है ॥५॥ दिव्य तरल सोम अपने रस से इन्द्रकी पूजा करता हुआ कलशोंकी ओर वेगवान् होता है ॥६ (७) ॥

य: पावमानीरध्येत्यृषिभि: संभृतं रसम् ।
सर्वं स पूतमश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥१
पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभि: संभृतं रसम् ।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् ॥२
पावमानी: स्वस्त्ययनी: सुदूघा हि घृतश्चुत: ।
ऋषिभि: संभृतो रसो ब्राह्मणेष्वमृतं हितम ॥३
पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवै: समाहृता: ॥४
येन देवा: पवित्रेणात्मानं पुनते सदा ।
तेन सहस्रधारेण पावमानी: पुनन्तु न: ॥५
पावमानी: स्वस्त्ययनीस्ताभिगच्छति नान्दनम् ।
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति
॥६॥७ (१७-७)

ऋषियों द्वारा सम्पादित वेद के सार रूप पवमान वाले मन्त्रों का पाठ करने वाला पुरुष पवित्र हुई भोजन-सामग्री को स्वाद से सेवन करता है॥ १ ॥ ऋषि-सम्पादित वेद की चार ऋचाओं के पाठ करने वाले के लिए सरस्वती यज्ञ साधक दुग्ध-घृत एवं आनन्द युक्त पेय को स्वयं दुहती है । अर्थात् उसे वेद-ज्ञान स्वयं हो जाता है॥ १ ॥ पवमानी ऋचायें कल्याणी और उत्तम फलदात्री हैं । मन्त्र द्रष्टाओं ने उनका सम्पादन कर अविनाशी बल की स्थापना की है॥ ३ ॥ देवताओं द्वारा सम्पादित पवमानी ऋचायें हमें इहलोक और परलोक में सुखी करें और

हमारे अभीष्ट की पूरक हों ॥ ४ ॥ देवगण जिन शुद्ध साधनों से अपने शरीर को पवित्र रखते हैं उन साधनों द्वारा पवमानी ऋचायें हमको भी पवित्र बनावें ॥५॥ अग्नि और सूर्यमान सोम से सम्बन्धित पावमानी ऋचायें अमर फल प्रदान करती हैं। उन ऋचाओं के पाठक दिव्यलोक को जाते हैं। पुण्य भोग और अमरत्व प्राप्त करते हैं ॥६ (८)॥

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे
दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः
प्रत्यञ्चम् ॥२

स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्नि
ष्टवे दम आ जातवेदाः ।

स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्
गृणत उत नो मघोनः ॥२

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात
स्वस्तिभिः सदाः न ॥३॥६

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् ।
जामि ब्रुवत आयुधा ॥२

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः ।
विप्रा ऋतस्या वाहसा ॥३॥१० (१०-८)

अपने आह्वानीय स्थानों में काष्ठों द्वारा प्रदीप्त, आकाश भूमि के मध्य में अद्भुत दीप्ति वाले उत्तम आहुति युक्त अग्नि का प्रणाम पूर्वक आश्रय प्राप्त करने हैं ॥ १ ॥ अपने तेज से पाप-नाशक, धन का घर वह अग्नि यज्ञ-स्थान में पूजित होता हैं। वह हम स्तोताओं की पाप-कर्म और निदा से रक्षा कर ॥२॥ हे अग्ने ! तुम पाप नाशक वरुण और पुण्य कर्मों में मित्र रूप हो। श्रेष्ठ जितेन्द्रिय साधक तुम्हे स्तुतियों द्वारा वृद्धि को प्राप्त कराते हैं। तुम्हारे देय धन हमारे लिये सेवनीय हों और तुम सब देवों सहित हमारे रक्षक होओं ॥३ (६)॥ वर्षक मेघ के समान अपने तेज से महान् वह इन्द्र पुत्र तुल्य स्तोता की स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥ स्तोताओं द्वारा इन्द्रको स्तोताओं द्वारा यज्ञ का साधक बनाते हो शस्त्र निरर्थक हो गये ॥ २ ॥ आकाश को पूर्ण कर यज्ञ के लिये साक्षात् हुये इन्द्र को उसके अश्व ले जाते हैं, तब यज्ञ को सफल कराने वाले स्तोत्र से ऋत्विज इन्द्र का यश-गान करते हैं ॥३ (१०) ॥

पवमानस्य जिघ्नतो हरेश्चन्द्रा असृक्षत ।
जीरा अजिरशोचिषः ॥१
पवमानो रथीतमः शुभ्रेभिः शुभ्रशस्तमः ।
हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः ॥२
पवमान व्युश्नुहि रश्मिभिर्वाजसातमः ।

दक्षस्तोत्रे सुवीर्यम् ॥३॥११

परीतो षिञ्चता सुत सोमो य उत्तमं हविः
दधन्वाँ यो नर्यो अप्स्वाऽन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥१
नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिन्तरः ।
सुते चित् वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरु-
त्तरम् ॥२
परि स्वानश्चक्षसे देवमादनः क्रतुरिन्दुर्विचक्षणः ।३।१२
असावि सोमो अरुषो वृषा हरी ।
राजेव दस्मो अभि गा अचिक्रदत् ।
पुनानो वारमत्येष्यव्ययं श्येनो न योनिं
घृतवन्तमासदत ॥१
पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो
नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे ।
स्वसार आपो अभि गा उदासरन्त्सं
ग्रावभिर्वसते वीते अध्वरे ॥२
कवि र्वेधस्या पर्येषि माहिनमत्यो न मृष्टो अभिवाजमर्षसि
अपसेधन् दुरिता सोम नो मृड घृता वसानः
परि यासि निर्णिजम् ॥३॥१३ (१०-६)

अन्धकार के बारम्बार विनाशक, हरे रंग वाले सर्वत्र गमन शील तेज वाले सोम की आनन्दवर्षक धार छन्ने में से गिरती है ॥ १ ॥ अधिक दमकता हुआ हरे रंग का सोम मरुद्गण की सहायता से पुष्ट सबको तरंगित करता है ॥ ८ ॥ हे सोम !

अत्यन्त अन्न और बलदायक तू स्तोता को उत्तम पुत्र और धन प्रदान करता हुआ संसार को तरङ्गित कर॥३ (११)॥ देवताओं का उत्तम हवि सोम मनुष्य का हितैषी हुआ जलों में प्रविष्ट होता है। अध्वर्यु उसे पाषाण से कूटते हैं। उस सोम का सिंचन करो ॥१॥ हे सोम ! किसी के द्वारा भी नष्ट न किया जाता तू अत्यन्त सुगन्धित शुद्ध भात गो घृत में मिल कर हमारे द्वारा सम्पन्न हो ॥२॥ दिव्य, तृप्ति, यज्ञ साधक, चमकता हुआ सोम सबके देखने के लिये कलश में टपकता है ॥३ (१२)॥ प्रकाशित, वर्षक, हरा, सिद्ध सोम छलों की ओर शब्द करता हुआ छनता है। वह पक्षी के वेग से जलपूर्ण पात्र में जाता है ॥१॥ बड़े पात्र वाले सोम पृथ्वी के नाभि रूप पर्वत पर स्थापित होते हैं। वे जलों और स्तुतियों को प्राप्त करते हुये यज्ञ-स्थान को जाते हैं। २। हे सोम ! तू यज्ञ विधान की कामना वाले छन्ने को प्राप्त होता हमारे पापों का नाश करता है। हमें सुखी कर। जलों पर छाया हुआ तू दोष-रहित हो ॥३ (१३)॥

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जातो जनितान्योजसा प्रति भागं न दीधिमः ॥१
अलर्षिरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातय, ।
यो अस्त कामं विधतो न रोषति
मनो दानाय चोदयन् ॥२॥१४

यत इन्द्र भयामहे ततो नो ऊतये अभयं कृधि
मघवञ्छग्धि तव तन्न उतये वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१
त्वं हि राधसस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधर्ता ।

त्वं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः ।

सुतावन्तो हवामहे ॥२॥१५ (१०–१९)

हे पूर्व पुरुषो ! सूर्य को सेवन करने वाली रश्मियों के समान इन्द्र का सेवन करो अपने बलसे इन्द्र जिन धनों को प्रकट करता है उन्हें हम पितरों के भाग के समान प्राप्त करते हैं ॥१॥ हे स्तोताओ ! सत्यानुयायियों को देने वाले इन्द्र का स्तवन करो। वह कल्याण रूप दान की प्रेरणा वाला उपासक की कामना व्यर्थ नहीं होने देता ॥२ (१४) ॥ हे इन्द्र ! हिंसा करने वाले भय से हमें बचाओ। हमारी रक्षा के लिये सामर्थ्य प्राप्त कर बैरी और हिंसकों को मारो ।१। हे धनेश इन्द्र ! हमारे देने को तुम असंख्य धनों के धारक हो हे स्तुत्य ! सोम को सिद्ध कर हम तुम्हें बुलाते हैं ॥२ (१५) ॥

त्वं सोमासि धारयुर्मन्द्र ओजिष्ठो अध्वरे ।

पवस्व मंहयद्रयिः ॥१

त्वं सुतो मदिन्तमो दधन्वान्मत्सरिन्तमः ।

इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥२

त्वं सुष्वाणो अद्रिभिरभ्यर्ष कनिक्रदत् ।

द्यु मन्त शुष्ममा भर ॥३॥१६

पवस्व देववीतय इन्दो धाराभिरोजसा ।

आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः ॥१

तव द्रप्सा उदप्रु त इन्द्र मदाय वावृधुः ।

त्वां देवासो अमृताय कं पपुः ॥२
आ नः सुतास इन्दवः पुनाना धावता रयिम् ।
वृष्टिद्यावो रीत्यापः स्वर्विदः ॥३॥१७
परि त्यं हर्यतं हरिं बभ्रुं पुनन्ति वारेण ।
यो देवान्विश्वाँ इत्परि मदेन सह गच्छति ॥१
द्विर्यं पंच स्वयशसं सखायो अद्रिसंहतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः ॥२
इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वाराय सदनासदे ॥३॥१८
पवस्व सोम महे दक्षायाश्वो न निक्तो वाजी धनाय ॥१
प्र ते सोतारो रसं मदाय पुनन्ति सोमं महे द्युम्नाय ॥२
शिशुं जज्ञानं हरिं मृजन्ति पवित्रे सोमं देवेभ्य इन्दुम् ॥३॥१९
उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भंगं परिष्कृतम् ।
इन्दुं देवा अयासिषुः ॥१
तमिद्वर्धन्तु नो गिरो वत्सं संशिश्वरीरिव ।
य इन्द्रस्य हृदं सनिः ॥२
अर्षा नः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ।
वर्धा समुद्र मुक्थ्य ॥३॥२० (१०-११)

हे सोम ! परम सुख वाला तू हमारे अहिंसा वाले यज्ञ में अपनी धाराओं को धन देने वाली बना। साधकों के इच्छित कलश में सिद्ध हो ॥१॥ हे सोम ! तू अत्यन्त शक्ति से यज्ञ-धारक दीप्त विजेता और किसी से भी नष्ट न होने वाला है ॥ २ ॥ हे सोम ! छना हुआ तू शब्द से कलश में जा और शुद्ध बल प्रदान कर ॥३ (१३) ॥ हे सोम ! देवताओं के सेवनार्थ धारा रूप कलशस्थ हो। शक्तियुक्त हुआ हमारे पात्र में आ ॥ १ ॥ जलो में प्रविष्ट हुये तेरे रह की शक्ति को इन्द्र बढ़ाता है। फिर देवगण अमरत्व प्राप्ति के लिये तेरा पान करते हैं ॥२॥ आकाश से वर्षक, साधकों को दिव्यताप्रद संस्कारित सोम ! तू हमको धन दिला ॥३ (१७) ॥ हम सबके इच्छित, पाप-नाशक सोम को शुद्ध करते हैं वह सब देवों को हर्षयुक्त रस सहित प्राप्त हो ॥१॥ पाषाणों द्वारा कटे हुये इन्द्र के प्रिय तथा सब की इच्छा किये हुये सोम को दशों अँगुलियाँ भले प्रकार स्वच्छ करती हैं ॥ १ ॥ हे सोम ! दुष्ट-नाशक इन्द्र के पान करने को जिसके लिये जाने वाला यज्ञ दक्षिण वाला होता है, उसके लिये तथा यज्ञ करने वालों के लिये मन्त्रों में तुम टपकते हो ॥ ३ ॥ (१८) ॥ हे सोम अश्व के समान जल से स्वच्छ किया हुआ तू ऐसा और शक्ति के लिये पात्र में आ ॥ १ ॥ हे सोम ! हर्ष के लिये तुझे साधक गण शुद्ध करते हैं अन्न और यश के लिये तुझे शोधा जाता है ॥२॥ देवताओं के निमित्त उनके पुत्र के समान प्रिय और संस्कार वाले सोम को ऋत्विज शुद्ध करते हैं ॥३ (१९) ॥ प्रकट, प्रेरणा वाले, शत्रु-नाशक, गो-घृत आदि से सिद्ध किये गये सोम को देवगण प्राप्त करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र के हृदय का सेवन करने वाले सोम को हमारी स्तुतियाँ वृद्धि करें उसी प्रकार, जैसे शिशु को मातायें अपने दुग्ध से बढ़ाती

हैं ॥२॥ हे सोम ! हमारी गौओं को सुख-वर्षक हो। अन्न-राशि से हमारे घर को पूर्ण कर। हे स्तुत्य ! कलश रस की वृद्धि कर ॥३ (२०) ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्
येषामिन्द्रौ युवा सखा ॥१
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्त्रं पृथुः स्वरुः।
तेषामिन्द्रो युवा सखा ॥२
अयुद्ध इद्युधा वृतं शूरं आजति सत्वभिः।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३॥२१
य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे।
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥१
यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आ विवासति।
उग्रं तत् पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥२
कदा मर्त्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नःशुश्रवद् गिर इन्द्रो अङ्ग ॥३॥२२
गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥१
यत्सानोः सान्वारुहो भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥२
युङ्क्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥३॥२३॥ (१०-१२)

अग्नि को प्रज्ज्वलित करने वाले साधकों का इन्द्र सदा मित्र रहता हैं। वे साधक क्रम पूर्वक कुशायें बिछाया करते हैं ॥१॥ ऋषियों के पास समिधायें पर्याप्त हैं। स्तोत्र भी असंख्य हैं उनका इन्द्र सदा मित्र रहता है ॥ २ ॥ इन्द्र जिनका मित्र है, उसमें जो योद्धा हुआ वह शत्रु को अपने बल के सामने झुकाता है ।३(२१)। हविदाता को धन देने वाला इन्द्र, जिसके कोई प्रतिकूल नहीं रहता, वह संसार का स्वामी है ॥ १ ॥ जो यजमान सोम का संस्कार करता हुआ तुम्हारी उपासना करता है, उसे हे इन्द्र ! तुम शीघ्र ही बल देते हो ॥२॥ वह हमारी स्तुतियों को सुनता ही हैं और असाधक का क्षुद्र पौधे की भाँति नष्ट कर देता हैं॥२२ हे इन्द्र ! स्तोता तुम्हारा यश-गान करते और मन्त्रोच्चार द्वारा पूजन करते हैं। ऋत्विज तुम्हे उच्चपद देते हैं ॥१॥ यजमान सोम-समिधादि के निमित्त पर्वत पर जाते हैं और यज्ञ-कर्म करते हैं। तब उसकी इच्छा को जानने वाला इन्द्र अभीष्ट-वर्षक हुआ यज्ञ में जाने को उद्यत होता है। हे सोमपायी इन्द्र ! पुष्ट अश्वों को, रथ में जोड़ कर स्तुतियाँ सुनने के लिए यहाँ पधारो ॥३ (२३) ॥

॥ इति पञ्चमः प्रपाठकः समाप्त ॥

—*—

षष्ठः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्द्ध)

ऋषि—मेधातिथि: काण्व: वसिष्ठः, प्रगाथ: काण्वः, पराशरः, प्रगाथो घौरः काण्वः, मेध्यातिथिः काण्वः त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण अग्नयोः धिष्ण्या ऐश्वराः, हिरण्यस्तूपः सर्वराज्ञीः ।
देवता—इध्मः समिद्धोऽग्निर्वाः, ततूनपात्, नराशंसः, इडः, आदित्यः, इन्द्रः, पवमानः, सोमः, अग्निः,
छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप् बार्हतः, प्रगाथः, अनुष्टुप् विराट् द्विपदा विराट् जगती ।

सुषमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥१
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे
सद्या कृणुह्यूतये ॥२
नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥३
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईडित आवह ।
असि होता मनुर्हितः ॥४॥१
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा ॥१
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः ।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥२

उत स्वराजो अदितिरब्धस्य वृतस्य ये ।

महो राजान ईशते ॥३॥२

उ त्वा मदन्तु सोमाः कृणुष्व राधो अद्रियः ।

अव ब्रह्माद्विषो जहि ॥१

पदा पर्णीनराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।

न हि त्वा कश्च न प्रति ॥२

त्वमोशिषे सुताना मिन्द्र त्वमसुतानाम् ।

त्वं राजा जनानाम् ॥३॥३ (११—१)

हे ज्ञान संकल्प रूप अग्ने ! तू उत्तम प्रकार से प्रज्ज्वलित हुआ समर्थक को दिव्य गुण प्रदान कर । उसके मन को ईश्वर की ओर प्रेरित कर ॥ १ ॥ हे मेधावी अग्ने ! तू हमारे यजन के लिये योग्य हवियों को देवताओं को प्राप्त करा ॥२॥ मैं इस यज्ञ में देवताओं के प्रिय अग्नि का आह्वान करता हूँ । वह मेरी हवियो को देवताओं को प्राप्त करावे ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! हमारी स्तुति से प्रभावित तू दिव्य गुणों का सम्पन्न कराने वाला हो । मन्त्र रूप से स्थापित हुआ तू यज्ञ-कार्य का प्रारम्भकर्त्ता है ॥४ (१) ॥ सूर्योदय के समान मित्र अर्यमा, भग, सविता, अभीष्ट धन के प्रेरक हैं ॥ १ ॥ वे मित्रादि देवगण हमारी रक्षा करें । यज्ञ स्थान वाली अग्नि हमारी रक्षा करे । हम पापों से मुक्त हों ॥२॥ मित्रादि देव अपनी माता आदिति सहित हमारे कर्मों के अधिष्ठा हैं, वह अभीष्ट धन के अधिपति हमारा इच्छित पूर्ण करने में सशक्त हैं ॥३ (२) हे इन्द्र ! तुम्हें सोंम हर्षित करे ।

तुम हमें ऐश्वर्य देते हुये पापियों को नष्ट करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो ! तुम्हारे समान कोई नहीं। तुम अदानशील को पीड़ित करने वाले हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम प्रकट अप्रकट पदार्थों के स्वामी हो। सभी प्राणियों के ईश्वर हो ॥३ (३) ॥

आ जागृविर्विप्र ऋतं मतीनां सोमः पुनानो असदच्चमूषु सपन्ति यं मिथुनासो निकामा

अध्वर्यवो रथीरासः सुहस्ता ।१

स पुनान उप सूरे दधान ओभे अप्रा रोदसी वो ष आवः ।

प्रिया चिद्यस्य प्रियसास ऊती ।

सतो धनं कारिणे न प्र यंसत् ।२

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो ।

मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावित् ।

यत्र नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो ।

अभि गा अद्रिमिष्णन् ॥३॥४

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इदमित् स्तोता वृषणं सचा सुहुरुक्था च शंसत ॥१

अवक्रक्षिण वृषभं यथा जुवं गां न चर्षणीसहम् ।

विद्वेषणं संवननमुभयङ्कर मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२॥५

उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।

सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ।१
कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमाशत ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन्
।२।६

पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये परि वृत्राणि सक्षणिः ।
द्विषस्तरध्या ऋणया न ईस्से ।१
अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः ।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या: ।२
अनु हि त्वा सुतं सोम मदामसि ।३।७
परि प्र धन्व ।१
एवामृताय महे क्षयाय स शुक्रो अर्ष दिव्य पीयूषः ।२
इंद्रस्ते सोम सुतस्य पेयात् क्रत्वे दक्षाय ।
विश्वे च देवाः ।३।८ (११–२)

चैतन्य, सत्य रूप वाणी का ज्ञाता सोम शुद्ध होकर पात्र में जाता है। एकत्रित हुये इच्छा करने वाले साधकों द्वारा यह सुरक्षित रखे जाते हैं।१। शुद्ध एवं यज्ञ साधक सोम इन्द्र को प्राप्त कर आकाश पृथिवी को पूर्ण करता है। उसकी सुन्दर धारायें उन्नतिप्रद, रक्षक और ऐश्वर्य दात्री हैं। २। अपनी कलासे देवों की वृद्धि करने वाला शुद्ध सोम अभीष्ट वर्षक एवं रक्षक हैं।

उसकी प्रसन्नता से हमारे पूर्वज परमानन्द के लिये परम-पद पर पहुँचे थे ।३ (४)। हे मित्रो ! इन्द्र को छोड़ किसी अन्य की स्तुति न करो। अन्य की स्तुति द्वारा क्षीण न होओ । सोम के शुद्ध होने पर सभी मिलकर इन्द्र के ही स्तोत्रों का पाठ करो । १ । वृषभ के समान शीघ्रगामी, शत्रु-नाशक, उपासकों के आराध्य, दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों के दाता इन्द्र का ही स्तवन करो । २ (५) । वे अत्यन्त मधुर वेद वाणी रूप स्तोत्र में प्रेरणा देते हैं जिससे सभी विघ्न, शत्रु आदि को जीत कर धन प्रदाता सोम अटल रक्षा वाला रथों के समान धन लाने वाला होता है । १ । ऋषियों के समान स्तुति और ध्यान किये हुए इन्द्र को सोम व्याप्त करते हैं, जैसे सूर्य-रश्मियाँ संसार को व्याप्त करती हैं । यज्ञ कर्म वाले साधक इन्द्रका ही स्तवन करते हैं ।२ (६) । हे सोम ! तू भले प्रकार से ऐश्वर्य देने वाला हो । इस मार्ग में बाधा देने वालों को नष्ट कर । हमको भी शत्रु-नाशक सामर्थ्य से युक्त कर । १ । हे सोम ! तूने जल धारक अन्तरिक्ष में तेज को उत्पन्न किया । उपासकों को गवादि पशु और ज्ञानैश्वर्य से युक्त करते हुये शक्ति का उत्पादक होता है ।२ हे सोम ! तेरे निष्पन्न होने पर जितेन्द्रिय हुये हम सुख भोगते हैं । तू शुद्ध हुआ हमारी इन्द्रियों में व्याप्त होता है । ३ (७) । हे आनन्द देने वाले सोम ! मित्र, पूषा, भग और इन्द्र के लिये प्रवाहित होता हुआ प्राप्त हो । १ । हे सोम ! दिव्य लोक में देवताओं के निमित्त प्रकट हुआ तू अमरत्व के लिये वर्षणशील हो । २ । उत्तम ज्ञान और बल के लिए निष्पन्न सोम रस को इन्द्र सहित देवगण पान करें ॥३ (८) ॥

सूर्यस्येव रश्मयो द्रावयित्नवो मत्सरासः प्रसुतः साकमीरते ।

तन्तुं ततं परि सर्गास आशवो नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन ।१

उपो मतिः पृच्यते सिच्यते मधु मन्द्राजनी चोदते अन्तरासनि ।२

पवमानः सन्तनिः सुन्वतामिव मधुमान् द्रप्सः परि वारमर्षति ।३।८

उक्षा मिमेति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।

अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ।३।९

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युतं जनयत प्रशस्तम् ।

दूरेदृश गृहपतिमथव्युम् ।१

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।

दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ।२

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।

त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ।३।१०

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।

पितरं च प्रयन्त्स्वः ।१

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।

व्यख्यन्महिषो दिवम् ।२
त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ।३।११ (११-३)

सूर्य रश्मियों के समान वाहक, आनन्दवर्धक सोम धारायें शुद्ध हुई फैलती हैं। वे इन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी को प्राप्त नहीं होतीं ।१। अपने मन को इन्द्र से मिलाते हैं। मधुर सोम इन्द्र के लिये सींचा जाता है। सोम धारायें उसके मुख की ओर प्रेरित होती हैं। २। वृषभ के गर्जन सा शब्द करती हुई गौरूप स्तुतियाँ सोम की अनुगत होती हैं वे सोम के संस्कार करने वाले स्थानों को जाती है। सोम छन कर टपकता हुआ मिश्रण में जाता है ।।३ (६) ।। हे ऋत्विजो ! ज्ञान-धर्म द्वारा उत्पन्न अग्नि को प्राप्त करो। वह दूर दृष्टा अगम्य और स्थिर है। १। जो अग्नि नित्य, प्रज्वलित, दर्शनीय एवं मन को निर्मल करने वाला है, उसे साधक यज्ञशाला में प्रतिष्ठित करते हैं। २। हे प्रदीप्त होते हुये अग्नि देव ! पूर्ण प्रकाशित हुये दृढ़ संकल्प वाले तुम निरन्तर ज्वाला से व्याप्त हो ।। ३ (१०) ।। गति वाली पृथिवी जैसे तेजस्वी सूर्य के चारों ओर घूमती हुई अपने मातृभूत सूर्य को देखती और स्पर्श करने का यत्न करती है, वैसे ही इन्द्रियाँ तेज रूप आत्मा की प्राप्ति के लिये गतिमान् होंती हैं। १। आकाश और पृथिवी के बीच इस सूर्य का तेज उदय से अस्त तक दमकता रहता है। वह महान् सूर्य अन्तरिक्ष को भी प्रकाशयुक्त बनाता है ।२। वह सूर्य दिन को तीस घड़ियों में अपने तेज से अत्यन्त प्रकाशित रहता है। उस समय ऋक, यजु सोम की वाणी रूप स्तुतियाँ सूर्य को प्राप्त होती हैं ।।३ (११) ।।

(द्वितीयोऽर्धः)

(ऋषि—गौतमो राहूगणः, वसिष्ठः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः, प्रजापतिः, सौभरिः काण्वः मेधातिथिमेध्वातिथी काण्वौ, ऋजिश्वाः, ऊर्ध्वसद्माः, तिरश्चीः, सुतम्भरः आत्रेय, नृमेधपुरुमेधौ, शुनःशेषः आजीगर्तिः, नोधाः, मेध्यातिथिः काण्वः, रेणुर्वैश्वामित्रः, कुत्सः अगस्त्य । देवता—अग्निः, पवमानः सोमः, इन्द्रः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुपः काकुभः, प्रगाथः, बार्हत, प्रगाथः, त्रिष्टुप्ः, जगती ।)

उपप्रयन्तो अध्वरं मंत्र वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ।१
यः स्नीहितीषु पूर्व्यः सञ्जग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद्दाशुषे गयम् ।२
स नो वेद्रो अमात्यमग्नी रक्षतु शन्तमः ।
उतास्मान् पात्वंहसः ।३
उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनञ्जयो रणेरणे ।४।१। (१२-१)

यज्ञानुष्ठान के लिये अग्नि का आह्वान करते हुये स्तोताओं की सुनने वाले अग्नि का ही स्तवन करें ।१। वह अग्नि सदा से कर्म करने वाली प्रजाओं के एकत्रित होने पर साधक के ऐश्वर्य का रक्षक होता है । २ । वह कल्याणकारी अग्नि हमारे धन को बचाता हुआ पापी को दूर करे ।३। शत्रुओं का नाशक अग्नि प्रकट होकर धन को जीत कर देता है, उनकी सब स्तुति करते हैं ।।४ (१) ।।

अग्ने युङ्क्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः ।
अरं वहन्त्याशवः ।१

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये ।
आ देवान्त्सोमपीतये ।२

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् ।
शोचा वि भाह्यजर ।३।२

प्र सुन्वानायान्धसो मर्तो न वष्ट तद्वचः ।
अप श्वानमराधसं हता मखं न भृगवः ।१

आ जामिरत्के अव्यत भुजे न पुत्र ओण्योः ।
सरज्जारो न योषणां वरो न योनिमासदम् ।२

स वीरो दक्षसाधनो वि यस्तस्तम्भ रोदसी ।
हरिः पवित्रे अव्यत वेधा न योनिमासदम् ।३।३

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि ।
युधेदापित्वमिच्छसे ।१

न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पतेव हूयसे ।२।४

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ।।१

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ।२

पिबा त्वाऽस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ।३।५

आसोता परि षिञ्चताश्वं न स्तोममप्तुरं रजस्तुरम् ।
वनप्रक्षमुदप्रुतम् ।१

सहस्रधारं वृषभं पयोदुहं प्रियं देवाय जन्मने ।
ऋतेन य ऋतजातो वि वावृधे राजादेव
ऋतं बृहत् ।२।६ (१२–२)

हे अग्ने ! अश्व के समान वेग वाली शक्तियों को ही अपने रथ में जोंड़ो । १ । हे अग्ने ! हवि ग्रहण करने और सोम पीनेके लिये हमारे सामने प्रकट होकर देवताओं को बुलाओ । २ । हे भरण-पोषण करने वाले अग्ने ! तुम प्रदीप्त हुये उन्नत हो। अपने तेज से संसार में प्रकाश फ़ैलाओ ।(२)। सेवन योग्य सोम के शब्द को विघ्नकर्त्ता लोभी कुत्ता न सुने । साधको ! उसे अपराधी के समान मारो ।१। देव-प्रिय सोम ! माता-पिता की रक्षा में रहने वाले पुत्र के तुल्य छन्ने से कलश स्थान को प्राप्त करता है । २। वल साधक सोम आकाश पृथिवी को तेज देने वाला है। घर को प्राप्त करने वाले मनुष्य के समान सोम कलश को प्राप्त होता है ।।३ (३) ।।

हे इन्द्र ! तू अजातशत्रु, सर्वनियन्ता, बन्धु-भाव की इच्छा से संघर्षों में साधकों का मित्र होता हैं । १ । हे इन्द्र ! अकाम

के तुम मित्र नहीं होते। मदिरा पीने वाले यज्ञादि कर्मों से रहित व्यक्ति तुम्हें प्रसन्न नहीं कर सकते। स्तोतापर जब अनुग्रह करते हो, तब उसे ऐश्वर्य प्रदान करते हो।२ (४)। हे इन्द्र ! हमारी हवियों से युक्त अश्व तुम्हें स्वर्ण रथ में बैंठा कर हमारे यज्ञ में सोम-पान के लिये लावें। १। हे इन्द्र ! स्तुति, मधुर सोम का पान करने के लिये तुम्हारे अश्व तुम्हें यज्ञ-स्थानको प्राप्त करावें। २ हे। देववाणी द्वारा स्तुत इन्द्र इस शोधित सोम का पान करो। सोम आह्लादकारी गुणों वाला है।३ (४)। हे ऋत्विजो ! अश्व के समान वेग वाले स्तुति जलों को प्रेरणा देते हुए, तैरने वाले सोम का शोधन करो। १। अभीष्ट पूरक अनेक धार युक्त दुग्ध तुल्य एवं तृप्तिदायक सोम को देवताओं के निमित्त संस्कार करो। वह दिव्य गुण वाला सोम जलों से उत्पन्न हुआ वृद्धि प्राप्त करता है ।।२ (६) ।।

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।

समिद्धः शुक्र आहुतः ।१

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।

सीदन्नृतस्य योनिमा ।२

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे ।

अग्ने यद्दीदयद्दिवि ।३।७

अस्य प्रेषा हेमना पूयमानो देवो देवेभिः समपृक्त रसम्१

सुतः पवित्रं पर्येति रेभन् मितव सद्म पशुमन्ति होता ।

भद्रा वस्त्रा समन्याऽऽवसानो महान् कविर्निवचनानि

शंसन् ।२

आ वच्यस्व चम्पोः पूयमानो विचक्षणो जागृविर्देववीतौ
समु प्रियो मृज्यते सानो अव्ये यशस्तरो यशसां क्षैतो
अस्मे ।

अभि स्वर धन्धा पूयमानो यूयं पात स्वस्तिभिः
सदा नः ।३।८

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धो शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्धैराशीर्वान् ममत्तु ।१
इन्द्र शुद्धो न आ गहि शूद्धः शुद्धभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं न धारय शुद्धो ममद्धि सोम्य ।२
इन्द्र शुद्धो हि नो रयिं शुद्धो रत्नानि दशुषे ।
शुद्धो वृत्राणि जिघ्नसे शुद्धो वाजं सिषाससि
।३।९ (१२-३)

उत्तम प्रकार से प्रज्वलित, श्वेत हवियों से पुष्ट किया हुआ अग्नि, धनदाता, शत्रु और अज्ञान का नाशक है । १ । सत्य के आश्रय-भूत अग्नि, साधक के अन्तःकरण में प्रकाशित होता है ।२। हे अग्नि ! प्राणी मात्र को जानने वाला और सबको देखने वाला तू सन्तान और अन्नयुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । ३ (७)। उज्ज्वल सोम अपने रस को देवताओं में मिलता है । आराधक ऋत्विज के अश्वादि युक्त घरों में जाने के समान कूटा हुआ सोम छन कर पात्रों में पहुँचता है । १ । हे संघर्ष में तेजवान्, साधकों द्वारा स्तुत्य, चैतन्य सोम ! तू यज्ञशाला में रखे पात्रों में अवस्थित हो । २ । भूमि पर प्रकट, तृप्तिदायक यशस्वी सोम शोधा जाता है । हे सोम ! तू शब्द करता हुआ हमें रक्षा-साधनों से युक्त

कर ॥ ३ (८)। आओ, मुझ इन्द्र को पवित्रप्रद सोम से शुद्ध करो गोघृतादि से युक्त सोम की भेंट देकर सुखी बनाओ। १। हे इन्द्र ! सोम आदि के द्वारा पवित्र हुआ तू मरुद्गणों के साथ आकर ऐश्वर्य स्थापित कर। तू शुद्ध हुआ इस सोम से आनन्दित हो। २। हे इन्द्र तू पवित्र हुआ हमें ऐश्वर्यशाली बना। उत्तम कर्मों में आने वाले विघ्नों को दूर कर। शत्रु को मारने के दोष को निवारण करने के लिये हमारे मन्त्रों से शुद्ध हुआ तू हमको ऐश्वर्य देने का इच्छुक है ॥३ (९) ॥

अग्ने स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः।
देवस्य द्रविणस्यवः ।१
अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा।
स यक्षद् दैव्य जनम् ।२
त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः।
त्वया यज्ञं वि तन्वते ।३।१०
अभि त्रिपृष्ठं वृषणं वयोधामंगोषिणमवावशंत वाणीः।
बना बसानो वरुणो न सिन्धुर्वि रत्नधा दयते वार्याणि।१
शूरग्रामः सर्ववीरः सहावाञ्जेता पवस्व सनिता धनानि
तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाढः साह्वान्
पृतनासु शत्रून् ।२
उरुगव्यूतिरभयानि कृण्वसन्त्मीचीने आ पवस्वा पुरन्धी
अपः सिषासन्नुषसः स्वाऽर्गाः सं चिक्रदो महो

अस्मभ्यं वाजान् ।३।११
त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पतिः ।
त्वं वृत्राणि हस्यप्रतीन्येक इत्पुर्वनुत्तश्चर्षणीधृतिः ।१
तमु त्वा नूनमसुर प्रचेतसं राधो भागमिवेमहे ।
महीव कृत्तिः शरणा त इन्द्र प्र ते सुम्ना नो
अश्नुवन् ।२।१२
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ।१
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निमु श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं
यक्षते दिवि ।।२।।१३ (२२-४)

सूर्य रूप आकाश व्यापी अग्नि के लिये हम धनेच्छुक उपासक सिद्ध स्तोत्रों का पाठ करते हैं । १ । यज्ञ-साधक, मनुष्यों का साथी अग्नि हमारी स्तुतियों को प्राप्त हो । १ । हे अग्ने ! तुम प्रसन्न, वरणीय, यज्ञ-साधक और महान् हो । तुम्हारे द्वारा ही यज्ञानुष्ठान किये जाते हैं ।। ३ (१०) ।। अभीष्ट वर्षक अन्नदाता सोम की ओर स्तोताओं की स्तुतियाँ प्रेरित होती हैं । जलों को आच्छादित करने वाला सोम धन देने वाला है । १ । अनेक वीरों को प्रेरित करने वाला, शीघ्र कार्य करने वाला विजेता सोम कलश में टपके ।। २ ।। हे सोम ! स्तोताओं को निर्भय बनाने वाला तू आकाश पृथ्वी से मेल करता हुआ वर्षण-

शील हो। हमको ऐश्वर्यदायक बन। ३ (११)। हे इन्द्र ! तू अन्न-बल-रक्षक सोम का अधीश्वर साधक का रक्षक और दुष्टों नाश करने वाला है ॥ १ ॥ हे बली इन्द्र ! अपने पिता से धन मांगने के समान हम तुमसे याचना करते हैं। तुम दानी, देवदूत, अविनाशी यज्ञ के कर्त्ता और यजन योग्य का हम स्तवन करते हैं।२ (१२)। हवि जल उत्पत्ति कर्त्ता है, जल वनस्पति को और वनस्पति अग्नि को प्रकट करने वाला है। इस प्रकार जलों के पुत्र रूप अग्नि की हम उपासना करते हैं। वह मित्र, वरुण और जगत् के लिये यजन करने वाला हो ॥१-२(१३) ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः।
स यन्ता शश्वतीरिषः ।१
न किरस्य सहन्त्य पर्यस्व चित् ।
वाजो अस्ति श्रवाय्यः ।२
स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।
विप्रेभिरस्तु सनिता ।३।१४
साकमुक्षो मर्जयन्त स्वसारो दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः
हरिः पर्यद्रवज्जाः सूर्यस्य द्रोणं ननक्षे अत्यो न वाजी।१
सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः
मर्यो न योषामभि, निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश
उस्रियाभिः ।२
उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः।

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति ।
वसुभिर्न निक्तैः ।३।१५
पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेऽस्माँ अवन्तु ते धियः ।१
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा न स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय
।२।१६
त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रिरे सत्यामाशिरं परमे
व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे
यदृतैरवर्धत ।१
स भक्षमाणो अमृतस्य चारुण उभे द्यावा काव्येना वि
शश्रथे ।
तेजिष्ठा अपो मंहना परि व्यत यदी देवस्य श्रवसा
सदो विदुः ।२
ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु ।
येभिर्नृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना
अगृभ्णत ।३।१७ (१२-५)

हे अग्ने ! जिस पुरुष को संघर्ष के लिये प्रेरित कर उनकी तुम रक्षा करते हो वह तुम्हारे बल से अन्नों को वश में रखने वाला होता है । १ । हे शत्रु-पीड़क अग्ने ! तुम्हारे उपासक पर

आक्रमण कोई नहीं कर सकता, क्योंकि उसका बल प्रशंसनीय है। २। मनुष्यों में रहने वाला वह अग्नि संकट से तारने वाला अभीष्ट फल दायक हो ॥ ३ (१४) ॥ दशों अँगुलियाँ सोम की शोधक और प्रेरक होती हैं। सूर्य को उत्पन्न करने वाला हरे रङ्ग का प्रिय, काम्य, वरणीय, सोम माता द्वारा दूध से शिशु को धारण करने के समान जलों द्वारा धारण किया जाता है।२ गौओं के योग्य घासों में प्रविष्ट हुआ दुग्ध सोम को पुष्ट करता है। उस उत्तम वुद्धि देने वाले धार-युक्त सोम को गौएँ अपने दूध से ढक देती हैं। ॥ ३ (१५) ॥ हे इन्द्र ! हमारे रस युक्त संस्कारित सोमको पीकर आनन्द प्राप्त करो। तुम्हारे साथ पिये जाने वाले सोम के द्वारा हमारी वृद्धि करते हुए सुमति द्वारा रक्षक बनो ।१। हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा से हमें अन्न मिले। शत्रु सम को नष्ट न कर सके। अपने अद्‌भुत रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करते हुये सुखी बनाओ ॥३ (१६) ॥ सोम से तृप्त हुई गौएँ दुग्धादि देने में समर्थ होती हैं यज्ञों से वृद्धि को प्राप्त हुआ यह सोम शोधित हुआ मंगलकारी होता है।१। वह इन्द्रयाचना करने पर आकाश पृथ्वी को जल से भर देता है। उस समय सोम को हवि युक्त करते हुए ऋत्विजगण यज्ञ कर्म को उद्यत होते हैं। २। अमरत्व प्राप्त सोम की तरंगें जीवों की रक्षक हों। उन्हीं के द्वारा सोम अन्न-बल को प्रेरित करता है और शुद्ध होने पर उसका स्तवन किया जाता है ॥ ३ (१७) ॥

अभि वायुं वीत्यर्षा गृणानोऽभि मित्रावरुणा पूयमानः।
अभी नरं धीजवनं रथेष्ठामभीन्द्रं वज्रबाहुम् ।१
अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।

अभि चन्द्रा भर्त्तवे नो हिरण्याभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ।२

अभी नो अर्ष दिव्या वसून्यभि विश्वा पार्थिवा पूयमानः।
अभि येन द्रविणमश्नवामोभ्यार्षेयं जमदग्नि वन्नः।३।१८

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन् वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उतो दिवम् ।१

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि बज्जायं यच्च जन्त्वम् ।२

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
धर्मं न सामन्तपता भूवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत्।३।१९

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।
वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ।१

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।
सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाडमर्त्यः ।२

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषा रथम् ।
सहावान् दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा
।।३।।२० (१२-६)

हे सोम ! स्तुति युक्त वायु के पीने को हो। तुझे मित्र वरुण प्राप्त करें। वेगवान् रथ में सवार अश्वनीकुमार और अभीष्टवर्षक इन्द्र के पीने को प्रस्तुत हो ।।१।। हे दिव्य ! सोम

उत्तम वस्त्रों से युक्त ऐश्वर्यों का दाता बन । तू शोधा हुआ, हमारी नव प्रसूता दुधारू गौओं के लिए सुख देने वाला हो ।२। शक्ति भी दे ।३ (१८) । हे आदि पुरुष मघवन् ! तुमने शत्रु-नाश के निमित्त भूमि को पुष्ट किया और प्रकाश को ऊँचा उठाया ।। १ ।। हे इन्द्र तुम्हारे प्राकप्ल काल से ही यज्ञदि कर्म और दिन का नियामक सूर्य उत्पन्न हुआ । इसके पश्चात् सव जगत की सृष्टि हुई ।१२। हे इन्द्र कच्चीं अवस्था वाली गौओं के परिपक्व होने पर तूने दूध स्थापन किया । अन्तरिक्ष में सूर्य को प्रकट किया । हे स्तोताओं ! साम गान द्वारा इन्द्र को प्रसन्न करो । ३ (१९) । हे पापों को हरण करने वाले इन्द्र! सोम जैसा पात्र के लिये, वैसा ही तुम्हारे लिए है । उसे तृप्त करने वाले वर्षक आनन्द वाले सोम का पान करते हुये हर्षित ओहो । १ । हे इन्द्र तुमको हमारा वरणीय और मन्त्रोउच्चारण युक्त तथा शत्रुओं के पराभव की शक्ति देने वाला अविनाशी सोम प्राप्त हो । २ । हे इन्द्र ! तुम वीर और दाता हो । हमारे अभीष्ट को प्रेरित करो । अग्नि की ज्वाला अपने आश्रय-स्थान पात्र को भी तपाती है, वैसे ही तुम यज्ञ कर्म से विमुख याज्ञिक को जला डालो ।।३ (२०) ।।

(तृतीयोऽर्धः)

ऋषिः—कविर्भार्गवः; भारद्वाजो बार्हस्पत्यः, असितः काश्यपों देवलो वा सुकक्षः, विभ्राट सौर्यः, वसिष्ठः भार्गवः, प्रागाथः, विश्वामित्रः, मेधातिथिः शतं वैखानसाः, यजत आत्रेयः मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः उशनाः,

हर्यतः प्रगाथः, वृहद्दिदः आथवर्णः गृत्ससदः । देवता—पवमानः
सोमः, इन्द्रः, सूर्यः, सरस्ववान्ः, सरस्वती अग्निः मित्रा-
वरुणौ, अग्निर्हवींषि वा, सूर्यः, सविता, ब्रह्मण-
स्पतिः, । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप् वृहती,
जगती, वार्हतः प्रगाथः, त्रिष्टुप्
अष्टिः, अक्वरी ।

पवस्व वृष्टिमा सुनोऽपामूर्मिं दिवस्परि ।
अयक्ष्मा पृहतीरिषः ॥१
तया पवस्य धारया यया गाव इहागमन् ।
जन्यास उप नो गृहम् ॥२
घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः ।
अस्मभ्यं वृष्टिमा पर्व ॥३
स न ऊर्जे व्याऽव्ययं पवित्रं धाव धारया ।
देवासः शृणवन् हि कम् ॥४
पवमानो असिष्यदद्रक्षांस्यपजङ्घनत् ।
प्रत्नवद्रोचयन्रुचः ॥५॥१०
प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरंगमाय जग्मयेऽपश्चादध्वने नरः ॥१
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।

वेदा विश्वस्य मेधिरो घृषत्तंतमिदेषते ।।३

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।

कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्वरत्

।।४।।२ (१३–१)

हे सोम ! तू वर्षणशील हो, जलों को तरङ्गित कर स्वाथ्य-प्रद अन्न की वर्षा कर ॥ १ ॥ हे सोम तू शत्रुओं की गौओं को हमारे घर पहुँचाने वाली धार से वर्षा कर (अर्थात् शत्रु-देश में सूखा पड़े तो वहाँ की गौएँ हमारे देश में आकर सुखी हों ।।२।। सोम ! यज्ञों में देवताओं द्वारा इच्छित किया हुआ तू हमारे निमित्त परमानन्द के सार रूप जल की वर्षा कर ।३। हे सोम ! तू हमारे लिये अन्न प्रेरक हुआ छन्ने में जा । उस समय के तेरे शब्द को सुनकर हमारा उत्साह बढ़े ॥ ४ ॥ द्वेषों का नाशक, दीप्तियों से प्रकाशित सोम स्रवित होता हैं ।।५ (१०) ॥ हे पुरुष तू यज्ञ संचालक, सर्वज्ञाता गतिमान् इन्द्र की सोम-पान की इच्छा को पूरी कर ।।१।। हे पुरुषो ! संस्कारित सोमों को पीने वाले इन्द्र के सामने जाकर उसका स्तवन करो ।२। हे मनुष्यो ! दीप्ति युक्त सोमों को लेकर इन्द्र की शरण में उपस्थित होने पर वह सब अभिष्टों को देखता हुआ, शत्रु को भयभीत करता हुआ सभी इच्छाएँ पूर्ण करता है ॥ ३ ॥ अध्वर्युओं ! इन्द्र के लिये सोम अर्पण करो । शत्रु द्वारा हिंसा कर्मो से इन्द्र हमारा रक्षक है ।।४ (२) ॥

बभ्रवे नु स्वतवसेऽरुणाय दिविस्पृशे ।

सोमाय गाथमर्चत ।।१

हस्तच्युतेभिरद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन ।

मधावा धावता मधु ॥२

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतनाइंदुमिंद्रे दधातन ॥३

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्य सोम शं गवे ।

देवेभ्यो अनुकामकृत् ॥४

इन्द्राय सोम पातवे मदाय परि षिच्यसे ।

मनश्चिन्मनसस्पतिः ॥५

पवमान सुवीर्यं रयिं सोम रिरीहि णः ।

इन्दविन्द्रेण नो युजा ॥६॥३

उद्घेदभि श्रुतामधं वृषभं नर्यापसम् अस्तारमेषि सूर्यं ॥१

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा ।

अहिं च वृत्रहावधीत ॥२

स न इन्द्रः शिवः सखाश्ववाद्गोमद्यवमत् ।

उरुधारेव दोहते ॥३॥४ (१३–२)

हे स्तुति करने वालो ! बली आकाश को छूने वाले सोम के लिये स्तुतियाँ करो ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! पाषाणों से निष्पन्न सोम को शुद्ध कर उसमें गो-दुग्ध मिलाओ ॥ २ ॥ हे ऋत्विजो ! सोम को नमस्कार कर उसे दही से मिश्रित कर इन्द्र के लिये रक्खो।।३।। हे सोम ! शत्रु-नाश और देवेच्छा में रत तू हमारी गौओं को पुष्ट कर ॥ ३ ॥ हे सोम ! तू मन में रमने वाला और मन का स्वामी हुआ इन्द्र को प्रसन्न करने के लिये संस्कारित

होता है ।५। हे सोम ! हमको इन्द्र के द्वारा पुष्ट भोगों का दिलाने वाला हो ॥६ (३) ॥ हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे इन्द्र ! तुम याचकों को धन-वर्षक और मनुष्यों को हितैषी हुये उपासक को अनुग्रहण पूर्वक देखते हुये प्रकट होते हो ॥१॥ अपने बाहु बल से राक्षसों के नगरों का ध्वंस करने वाला एवं वृत्र नामक दैत्य का नाशक इन्द्र हमको धन प्रदान करे ॥२॥ हमारे लिये कल्याण रूप मित्र इन्द्र गौओं की असंख्य दुग्ध-धारा के समान बहुसंख्यक धन प्रदान करे ॥३ (४) ॥

विभ्राड् बृहत् पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् । वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पिपर्ति बहुधा वि राजति ॥१

विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्म दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥५

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३माऽशिवासोऽवक्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः क्षश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७
अद्याद्या श्वःश्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितृन्तसत्पत अहा दिवा नक्तं च
रक्षिषः ॥१
प्रभंगी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्र—
मिमिक्षतुः ॥२॥७ (१३-३)

तेजस्वी सूर्य यजमान को आयुष्मान् बनाता हुआ सोम रूप मधु का पान करे, वह सूर्य सब संसार का द्रष्टा, पालक, वर्षा द्वारा पोषक प्रतिष्ठित है ॥१॥ प्रतिष्ठित, पुष्ट अन्न बल देनेवाली अविनाशी ज्योति सूर्य मण्डल में स्थापित हुई ॥२॥ सूर्यरूप वह ज्योति ग्रह, नक्षत्र आदि को भी प्रकाशित करने वाली विश्व-बिजयिनी हुई। यह जगत् को प्रकाशित करने वाला विस्तृत अन्धकार को मिटाने में सर्मथ है ॥३ (५)॥ हे इन्द्र! हमारे उत्तम कर्मो का फल प्रदान करो। पिता के समान धन दो। यज्ञ में हमको सूर्य के नित्य दर्शन हों ॥१॥ हे इन्द्र! पाप-कर्म करने वाले व्यक्ति हमारा अपमान न करें, हम स्तुति करने वाले तुम्हारी रक्षा में नदियों को पार करने वाले हों ॥२ (६)॥ हे इन्द्र! वर्तमान और भविष्य में हमारे रक्षक हो। हे सर्व पालक इन्द्र! हमारी दिन रात सर्वत्र रक्षा करने वाले होओ॥ १॥ यह पराक्रमी शत्रुओं का मान भङ्ग करने वाला इन्द्र! ऐश्वर्यवान् है। तेरे बाहुओं में अभीष्टवर्षक सामर्थ्य है, उनमैं तुम वज्र को धारण करते हो ॥२ (७)॥

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः ।

सरस्वन्तं हवामहे ॥१॥८

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१॥९

तत्सवितवरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१

सोमानां स्वरणं ॥२

अग्न आयूंषि पवसे ॥३॥१०

ता नः शक्तं पार्थिवस्य ॥१

ऋतमृतेन सप्न्तेषिरं दशमाशाते अद्रुहा देवौ वर्धते॥२

वृष्टिंद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः ।

बृहन्तं गर्तमाशाते ॥३॥११

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ॥

रोचन्ते रोचना दिवि ॥१

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।

शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥२

केतु कृणवन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।

समुषद्भिरजायाथाः ॥३॥१२ (१३-४)

जननी पत्नी और पुत्रों की कामना वाले उत्तम दानी हम आज सरस्वती की शरण में पहुंच कर उसकी आराधना करते हैं। १ (८)। परम प्रिय गायत्री आदि-सातों छन्द तथा गङ्गा आदि सरितायें जिस सरस्वती की बहनें हैं- वह सरस्वती हमारे लिये सत्य है। १ (९)। बुद्धियों को प्रेरित करने वाले जी सविता देव ज्योतिर्मान् परमेश्वर सत्य स्वरूप होने से उपासना योग्य हैं, उनका हम ध्यान करते हैं। १। हे देब ! मुझ सोम निष्पन्न करने बाले को देवताओं में सुख्य के समान दिव्यगुणों से युक्त बनाओ। २। हे अग्ने तू हमारे आयु को निष्कंटक वनाता है, हमको बल और अन्न दे। दुष्टों को हमारे पास से हटा।३। (१०)॥ वे देवगण हमको दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों को देने वाले हों, उन प्रशंसित शक्तिमानों को ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। १। यज्ञ में जलों को सम्पन्न करने वाले, अभीष्ट देने वाले यजमान को पुष्ट करने वाले मित्र और वरुणदेव स्वयं भी बढ़ते हैं ॥ २ ॥ वृष्टि के लिये स्तुत्य अभीष्ट पूरक अन्नों के पालक, मित्र, वरुण परम रथ पर चढ़ते हैं।३(११)। ऐश्वर्यवान् होने से ही बह इन्द्र है। आदित्य, अग्नि और उस इन्द्र की कलायें ही नक्षत्र लोक में प्रकाशित होती हैं।१। आदित्यादि ज्योतियों में व्याप्त इन्द्र को इच्छित स्थानों में ले जाने के निमित्त दोनों कर्म-ज्ञान रूप-अश्वों को मन रूप सारथि जोड़ता है। २। यह सूर्य रूप अद्भुत इन्द्र निद्रित जीवों को ज्ञान और अन्धकार-नाश के निमित्त प्रकाश देने के लिये नित्य उषा काल में प्रकट होता है ॥३ (१२)॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्वे तुभ्यं पवते त्वमस्य पाहि ।
त्वं ह यं चकृषे त्वं ववृष इन्दु मदाय युज्याय सोमम्।१
सईं रथो न भूरिषाडयोजि महः पुरूणि सातये वसूनि ।
आदीं विश्वा नहुष्याणि जाता स्वर्षाता वन ऊर्ध्वा
नवन्त ।।२
शुष्मो शर्धो न मारुतं पवस्वानभिशस्ता दिव्या यथा
विट् आपो न मक्षू सुमतिर्भव । नः सहस्राप्साः पृतना-
षाण्न यज्ञः ।।३।।१३
त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः ।
देवेभिर्मानुषे जने ।।१
स नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः ।
आ देवान् वक्षि यक्षि च ।।२
वेत्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवांजसा ।
अग्ने लज्ञेषु सुक्रतो ।।३।।१४
होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया ।
विदथानि प्रचोदयन् ।।१
वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते ।
विप्रो यज्ञस्य साधनः ।।२
धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे ।

दक्षस्य पितरं तना ॥३॥ १५ (१३-५)

हे इन्द्र ! इस सोम को तुम्हारे लिये सिद्ध किया है, तुम इस पवित्र हुये सोम का पान करो। जिस सोम के तुम्हीं उत्पादक हो उसे आनन्द के लिये ग्रहण करते हो ॥१॥ अधिक भार वाहक रथ के समान हमको अधिक ऐश्वर्य से यह इन्द्र पूर्ण करता हैं। तब हमारे बेरी भी संघर्षो को प्राप्त हुये स्वर्ग लाभ करने वाले होते हैं ॥२॥ हे सोम ! तू मरुद्गणों के तुल्य पवित्र हो। जलों के समान शुद्ध हुआ तू इन्द्र के समान ही हमारे लिये पूज्य है ॥३ (१३) ॥ हे अग्ने ! तुम सब यज्ञों को सफल करते हो यजमान तुम्हें होता रूप से ही प्रतिष्ठित करते हैं ॥ हे अग्ने ! हमारे यज्ञ में अपनी स्तुति रूप ज्वालाओं द्वारा यजन करते हुये देवताओं को बुलाओ और उनको तृप्त करने वाली हवि दो ॥ २ ॥ हे नियन्ता, उत्तम कर्म वाले अग्ने ! तुम यज्ञ के सभी मार्गो के ज्ञाता हो और भूले हुओं को उनके लक्ष्य पर पहुँचाते हो ।३(१४) यज्ञ सिद्ध करने वाला, अविनाशी प्रकाशित और प्रेरक अग्नि कर्म-ज्ञान के साथ शीघ्र ही हमको प्राप्त होता हैं ॥१॥ संघर्ष काल में पराक्रम वाले अग्नि को शत्रु-नाश के लिये स्थापित करते हैं यज्ञ-कर्मो के आह्वानीय स्थान में अग्नि को प्रतिष्ठित करते हैं। इसलिये वह यज्ञादि नर्मों को सिद्ध करने वाला होता है ॥२॥ जो अग्नि आह्वानीय रूप से प्रकट है या जो अग्नि सब प्राणियों में स्वयं को स्थापित करता हैं, उस संसार के पोषक अग्नि को वेदी स्वरूपिणी प्रजापति की पुत्री यज्ञादि के तिमित्त धारण करती है ॥३ (१५) ॥

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् ।

रसा दधीत वृषभम् ॥१

ते जानत स्वमोक्यां सं वत्सासो न मातृभिः ।
मिथो नसन्त जामिभिः ।।२

उप स्रक्वेषे बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि ।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ।।३।।१६

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे
मदन्त्यूमाः ।।१

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च शस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ।।२
त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादो स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु
मधुनाभि योधीः ।।३।।७

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृम्पत्सोमम-
पिबद्विष्णुना सुतं यथावशम् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरु सैनं सचद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ।।१
साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो

वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु प्रचेतन सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥२
अध त्विषीमां अभ्योजसा कृविं युधाभवदा रोदसी
आ पृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत प्र चेतय सैनं सश्चद्देवो
देवं सत्य इन्दुः सत्यमिन्द्रम् ॥३॥१८॥ (१३-६)

हे अध्वर्युओं ! आकाश पृथिवी में अग्नि के संयोग से वृद्धि को प्राप्त दुग्ध को सीचो। फिर उस दूध में अग्नि को व्याप्त करो। १। गो वत्सों के अपनी अपनी माताओं से मिलने के समान साधक भी अपने उपत्तिकर्त्ता से मिलने को तत्पर होता है। वह अपने बन्धु वर्ग अन्य साधकों, को भी जानता हुआ उनसे मेल करता है। २। ज्वालाओं द्वारा भक्ष्य गोदुग्ध को और अग्नि धारक बकरी के दूध को इन्द्र सींचते हैं, तब वे अन्न को अर्पण करने वाले होते हैं। ३ (१६) संसार का कारण भूत ब्रह्म सब लोकों में स्ववं प्रकाशित हुआ। उसी से सूर्य रूप इन्द्र प्रकट हुआ जो नित्य ही उदय होरक अन्धकार रूप शत्रु को मिटाता है। उसे अभीष्ट फलदायक जानकर सभी प्राणी हर्ष को प्राप्त होते हैं। १। महावली, शत्रुनाशक इन्द्र अकर्मण्यों को भयभीत कर जंगम और स्थावर प्राणियों को शुद्ध करता है। हे इन्द्र ! हवियों से प्रसन्न करते हुए सब प्राणी तुम्हारी स्तुति करते हैं।२। हे इन्द्र ! सब यजमान तुम्हारे लिये अनुष्ठान करते हैं। सव यज्ञ साधन तुम में ही समाप्त होते हैं हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्ययुक्त निवास

हमाओी सन्तान को तथा पौत्रादि को खेलने के निमित्त दो ।।३।। (१७)। पूज्य, बली और सन्तुष्ट इन्द्र जौ के सत्तू से मिश्रित सोम का विष्णु के साथ पान करता है। वस सोम इस महान् तेजस्वी इन्द्र को दैत्यनाशक कर्मों में प्रयुक्त करता हुआ हर्षित करता है। उस दीप्तियुक्त उत्पन्न हुआ अपने पराक्रम से इन्द्र का भार वहन करना चाहता है। इन्द्र ! तू पाप-पुण्य का द्रष्टा यजमान को ऐश्वर्य देता हैं सत्य-रूप सोम टपकता हुआ उस इन्द्र को आनन्दित करता है ।।२।। सोम।पान से उत्साहित इन्द्र असुर को जीतता है। आकाश-पृथिवी उसके तेज से पूर्ण होते हैं सोम-पान से वृद्धि को प्राप्त इन्द्र सोम के एक भाग को अपने उदर में रखता और दूसरे भाग को बचाता है। हे इन्द्र ऽ सोम-पान के लिये देवताओं को जगा। वह सत्य रूप सोम इन्द्र को प्रसन्न करने वाला हो ।।३ (१८) ।।

।। षष्ठः प्रपाठकः समाप्तः ।।

सप्तमः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि — प्रियमेधः नृमेधपुरुमेधौ, त्र्यरुणत्रसदस्यु, शुनःमेपः आजीगर्तिः, वत्सः, काण्वः अग्निस्तापसः, विश्वमना वैयश्व वसिष्ठः, सौभरिः, काण्वः, शर्त वैखानसः वसूयव आत्रेयः गोतमो राहूगण,, केतुराग्नेयः, विरूप आङ्गिरसः ।
देवता—इन्द्रः, पवमानः, सोमः, अग्नि विश्वे-देवाः, अग्निः, पवमानः । छन्द—गायत्रीः प्रगाथः, वृहतीः, अनुष्टुप् उष्णिक् ।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे ।
सूनुं सत्यस्य सत्पतितम् ।।1
आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि ।
यत्राभि सं नवामहे ।।2
इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
यत्सीमुपह्वरे विदत् ।।3।।1
आ नो विश्वासु हव्यामिन्द्रं समत्सु भूषत ।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहन् परमज्या ऋचीषम् ।।1
त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशाकृत ।
तु विद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ।2।2
प्रत्नं पीतूषं पूर्व्यं यदुक्थ्यं महो गाहाद्दिव आ निरधु
क्षत । इन्द्रमभि जायमानं समस्वरन् ।।1
आदीं के चित् पश्यमानाश आप्यं वसुरूचो दिव्या
अभ्यनूषत ।
दिवो न वारं सविता व्यूर्णुते ।।2
अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनाभि
मज्मना ।
यूथे न निष्ठा वृषभो वि राजसि ।।3।।3
इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ।।1

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥२
आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥३॥४
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रह ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥१
अहं प्रत्नेन जन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥२
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥३ ।५ (१४—१)

हे स्तुति करने वाले ! यज्ञ के पुत्र रूप सत्य, गौ और वाणियों के स्वामी इन्द्र को यज्ञ में आने की प्रेरणा देने के लिये उत्तम प्रकार पूजन करो ॥ १ ॥ पापों को मिटाने वाले इन्द्र के घोड़े उन कुशाओं पर पहुँचें, जिन पर स्थित इन्द्र की हम पूजा करते हैं ॥२॥ इन्द्र के लिए गायें मधुर दुग्ध आदि को अधिकता से देती हैं, वह इन्द्र उनके निकट हो सोमपान करता है ॥२ (१) ॥ हे ऋत्विजो ! रक्षा के लिये पुकारे जाने वाले इन्द्र को लक्ष्य कर देवगण हमारे यज्ञ में हवि-रूप अन्न को पुष्ट करें। पाप और दुष्टों का नाश करने वाला इन्द्र हमारे लिए अभीष्ट-फलदायक हो ।१॥ हे इन्द्र ! तुम सर्वश्रेष्ठ सिद्धियों को देने वाले हो। साधकों को ऐश्वर्ययुक्त बनाने वाले तुम सत्य कर्मों में उन्हें प्रेरित करते हो। अतः तुम परम ऐश्वर्ययुक्त से हम याचना

करते हैं ॥२ (२) ॥ देवताओं को अमृत रूप, सनातन, सोम रूप अन्न प्रशंसा-सहित प्राप्त हैं। उस आकाश से दुहे जाने वाले इन्द्र के लिये प्रकट हुये सोम का हम स्तवन करते हैं ॥१॥ इसे देखते हुए आकाश-बासियों ने सूर्य उदय होने से पूर्व ही सोम का पूजन किया ॥२॥ हे सोम ! इस आकाश पृथिवीं में, इन सब चीजों में गौओं में बैल के समान तुम रहते हो ॥ ३ (६) ॥ हे अग्ने ! हमारे सामने प्रकट हुए हविदान युक्त स्तुतियों को देवगणों के निमित्त पहुँचाओ ॥१॥ हे अद्भुताग्ने ! तुम ऐश्वर्य देने वाले हो। तुम यजमान की तुरन्त ही उसके कर्मों का फल देते हो ॥२॥ हे अग्ने ! हमको दिव्य भोगों का यज्ञ कराओ। अन्तरिक्ष से भोगों के साथ ही पार्थिव ऐश्वर्य भी प्रदान करो ॥३ (४) ॥ पालन-कर्त्ता इन्द्र से उनकी कृपा रूप वुद्धि को मैं प्राप्त कर सका हूँ। इसलिये मैं सूर्य के समान तेजवान हूँ ॥१॥ मैं जन्म से भी पुरातन इन्द्र बिषयक स्तोत्रो को कहता हूँ जिनके द्वारा इन्द्र शत्रु-नाशक बल को प्राप्त होता है ॥२॥ हे इन्द्र ! स्तुति न करने या स्तुति करने वालों में भी मेरे ही उत्तम स्तोत्रों से तू बढ़ ॥३ (५) ॥

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्जोषि ब्रह्म सहस्कृत ।

ये देवत्रा य आयुषु तेभिर्नो महया गिहः ॥१

प्र स विश्वेभिरग्निः भिरग्निः स यस्य वाजिनः ।

तनये तोके अस्मदा सम्यङ् वाजैः परीवृतः ॥२

त्वं नो अग्ने नग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।

त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥३॥६

त्वे सोम प्रथमा वृक्तबर्हिषो महे वाजाय श्रवसे धियं दधुः ।

स त्वं नो वीर वीर्याय चोदय ॥१

अभ्यभि हि श्रवसा ततर्दिथोत्सं न कं चिज्जनपान-मक्षितम् ।

शर्याभिर्न भरमाणो गभस्त्योः ॥२

अजीजनो अमृत मर्त्याय अमृतस्य धर्मन्नमृतस्य चारुणः

सदासरो वाजमच्छा सनिष्यद् ॥३॥७

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

प्र राधांसि चोदयते महित्वना ॥१

उपो हरीणां पतिं राधः पृञ्चन्तमब्रवम् ।

नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥२

न ह्याऽग पुरा च न जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

न की राया नैवथा न भन्दना ॥३॥८

नदं व ओदतीनां योयुवतीनाम् ।

पतिं वो अघ्न्यानाँ धेधुनामिषुध्यसि ॥१॥९ (१४-२)

हे बलोत्पन्न अग्ने ! हमारे हवि का भक्षण करो । देवताओं में तथा मनुष्यों में स्थित अग्नियों सहित हमारी स्तुतियों को पुष्ट करो ॥ १ ॥ अनेकों याज्ञिक जिस अग्नि में हवि देते हैं, वह सभी अग्नियों सहित हमको हमारे पुत्र-पौत्रों को

प्राप्त हो । २ । हे अग्ने ! तू अपनी सब अग्नियों सहित हमारे यज्ञ की वृद्धि कर और उसके लिए धन देने वाले देवताओं को बुला ॥३(६)॥ श्रेष्ठ अन्न, बल और बुद्धि स्थापक वीर सोम हमको सामर्थ्य से युक्त करने वाला हो । १ । कुण्ड को पानी से पूर्ण रखने के लिये जलाशय से मार्ग तोड़ते हुए जल को उस तक लाते हैं, वैसे ही सोम छन्ने को भेदन कर निकालता है ।२। हे अविनाशी सोम ! जलधारक अन्तरिक्ष में मरणधर्मा प्राणियों के लिये सत्य को उत्पन्न किया । तू देवताओं का सेवनीय हुआ वीर कर्मों को प्रेरित करता है ॥२ (७) ॥ इन्द्र के लिये सोम रस को सींचो । वह उत्तम मधुर रस को यहाँ आकर पीता हुआ साधकों को ऐश्वर्ययुक्त बनावे । १ । पाप नाशक और महान् ऐश्वर्य वाले इन्द्रका स्तवन करता हूँ । हे इन्द्र ! उस ऋषि प्रणीत स्तुति को आकर सुनो।२। हे इन्द्र ! न तुमसे पूर्व कोई प्रकट हुआ न कोई तुमसे बली है और न कोई तुमसे अधिक ऐश्वर्यशाली ही है । तुमसे अधिक किसी की स्तुति भी नहीं की जाती ।३(८) हे मनुष्यो ! सूर्य रूप से उषा को प्रकट करने वाला इन्द्र ही आराध्य है । चन्द्रमा के प्रकट करने वाले और गौओं के स्वामी इन्द्र को मैं बुलाता हूँ । तू गोदुग्ध रूपी अन्न की कामना वाला हो ॥१॥(६)॥

देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्वासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ।१
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ।२।१०

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः ।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्नि नक्षन्तु नो गिरः ।१
यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चकृत्यानि कृण्वतः ।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्नि धीभिर्नमस्यत ।२
प्र दैवोदासो अग्निः ।३।११
अग्न आयूंषि पवस ।१
अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ।२
अग्ने पवस्व रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया ।
आ देवान् वक्षियक्षि च ।१
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् ।
देवाँ आ वीतये वह ।२
वीतिहोत्र त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि ।
अग्ने बृहन्तमध्वरे ।३।१३ (१४–३)

धनदाता अग्नि हवि की कामना करता है, उस सोम से सींच कर हवि-पात्र को पूर्ण करो। वह अग्नि ही तुम्हा पोषक है। १। जिस श्रेष्ठ प्रज्ञावान् अग्नि को यज्ञ-वाहक और होता बनाते हैं, वह अग्नि हवि देने वाले के लिये श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान

करें ॥२ (१०) ॥ कर्मों का आश्रय स्थान, मार्ग-ज्ञाता अग्नि उत्तम प्रदीप्त हो, उसे हमारी स्तुतियाँ प्राप्त हों । १ । कर्त्तव्यों में तत्पर व्यक्ति को अकर्मण्य जिस लिये विचलित करते हैं । उस कारण को दूर करने के लिये ऐश्वर्यदाता अग्नि का उत्तम कर्मों द्वारा स्तवन करो । २ । दिव्य ऐश्वर्यवान् साधकों द्वारा पूजित अग्नि, सब लोकों को धारक मातृरूप भूमि को देवगणों के लिये हवि प्राप्त कराने की प्रेरणा देता है ।३(११) । हे अग्ने ! हमारे अन्न, आयुधों की तुम वृद्धि करते हो । अन्न से उत्पन्न बल को हमें प्राप्त कराओ । दुष्टों का उत्पीड़न करो । १ । पाँच उत्तम प्रकार के देहधारियों को इच्छित प्रदान करने वाला अग्नि ऋत्विजों ने कर्म के लिते प्रतिष्ठित किया है । उस अग्नि से हम अभीष्ट मांगते हैं । २ । हे उत्तम-कर्मा अग्ने ! हमको तेजस्वी बनाओ । हमारे निमित्त ऐश्वर्य और गवादि पशुओं को सम्पन्न करो । ३(११) । हे पावक ! अपनी ज्योति से देवताओं को प्रसन्न करने वाली जिह्वा द्वारा, यजन करते हुये देवताओं को बुलाओ । १ । हे घृत से अद्भुत ज्योति वाले ! तुम सर्वद्रष्टा से प्रार्थना करते हैं कि देवताओंको हवि ग्रहण करने के निमित्त बुलाओ ।२। हे अग्ने ! तुझ यज्ञानुरागी और तेजस्बी को यज्ञ में प्रदीप्त करते हैं ॥३ (१२) ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

विश्वासु धीषु वन्द्य ॥१

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यम् ।
विश्वासु प्रत्सु दुष्टरम् ।२
आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम् ।
मार्डीकं धेहि जीवसे ।३।१४
अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
तेन जेष्म धनंधनम ।१
यया गा आकरामहै सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ।२
आग्ने स्थूरंरयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्धि खं वर्त्तया पविम् ।३
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ।४
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठ उपस्थसत् ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ।५।१५
अग्निमूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपां रेतांसि जिन्वति ।१
इशिषे वार्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वः पतिः ।
स्तोता स्यां तव शर्मणि ।२

उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते ।
तव ज्योतींष्यर्चयः ।३।१६ (१४-४)

हे अग्ने ! सब कर्मों में तुम स्तुत्य हो। गायत्री छन्द से स्तुति करने पर प्रसन्न हुए तुम अपने रक्षण-साधनों से रक्षा करो। १। हे अग्ने ! दरिद्रता की नाश करने वाले, वरण करने योग्य शत्रुओं को अप्राप्य धनों को हमें प्रदान करो ॥ २॥ हे अग्ने ! हमको ज्ञान से धन प्राप्त कराओ। वह हमारे जीवन में पोषण सामर्थ्य वाला तथा आनन्दप्रद हो ॥३ (१४)॥हमारे कर्म द्वारा अग्नि यज्ञ के लिये तत्पर हो। यज्ञाग्नि से हम सभी ऐश्वर्यों के विजेता हों। १। हे अग्ने ! तुम्हारी जिस रक्षा से गवादि पशु पोषित होते हैं उसी रक्षा को प्रेरित कर हमको धन प्राप्त कराओ। २। हे अग्ने ! गवादि युक्त विस्तृत धन हमको प्रदान करो। आकाश तुम्हारे तेज से प्रकाशित हैं अपने अस्त्रों को हमारे शत्रुओं पर घुमाओ। ३। हे अग्ने ! सब चीजों को प्रकाश देते हुए तुम गतिमान् सूर्य को आकाश में स्थापित करते हो।१। हे अग्ने ! तुम ज्ञान देने वाले, प्रिय और सर्वश्रेष्ठ हो, यज्ञ में स्थिय तुम हमारे स्तोत्रको स्वीकार करते हुए अन्न प्रदान करो।४-५ (१५)। देवताओं के मूर्धा रूप, आकाश से भी उन्नत, पृथिवी-पति यह अग्नि सब जीवों को प्रेरित करता है। १। हे अग्ने ! तुम स्वर्गलोक के अधिपति, वरण करने योग्य और धन के ईश्वर हो। सुख प्राप्ति के लिये मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ। २। हे अग्ने ! स्वच्छ, उज्ज्वल और दमकती हुई ज्योतियाँ तुम्हारे तेजों को प्रेरित करती हैं ॥३ (१६)॥

(द्वितीयोऽर्धः)

ऋषिः—गौतमो राहूगणः, विश्वामित्रः, विरूप आङ्गिरसः, भर्गः प्रगाथः, त्रित आप्त्यः, सौभरिः काण्वः, गोपवन आत्रेयः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्य वाः, प्रयोगो भार्गवः, पावकोऽग्निर्बार्हिस्पत्यो वा, गृहपतियष्टों सहसः पुत्रवान्यतरो वा । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री, बार्हतः प्रगाथः, त्रिष्टुप्, काकुभः, प्रगाथः उष्णिक, जगती अनुष्टुम्मुखः प्रगाथः ।)

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ।१

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ।२

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवा ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ।३.१

इडेन्यो नमस्यस्तिरस्तमांसि दर्शतः ।
समग्निरिध्यते वृषा ।१

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः ।
तं हविष्मन्त ईडते ।२

वृषणं त्वा वयं वृषन् समधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ।३।२

उत्ते बृहन्तो अर्च्चयः समिधानस्य दीदिवः ।

अग्ने शुक्रास ईरते ।१

उप त्वा जुह्वो मम घृताचीर्यन्तु हर्यत ।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ।२

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम् ।
अग्निमीडे स उ श्रवत् ।३।३

पाहि नो अग्न एकया पाह्यूऽत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ।१

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं ।
नक्षामहे वृधे ।२।४ (१५-१)

हे अग्ने ! मनुष्यों में तुम्हारे वन्धु कौन है ! सत्यदान से कौन तुम्हारा यजन करता है ? तुम्हारे रूप को कौन जानता है ? तुम्हारे आश्रय स्थान कहाँ हैं ? (अर्थात्–गुणों में सबसे अधिक होने के कारण कोई बन्धु नहीं,तुम सबसे अधिक देनेवाले हो,इसलिये कोई दानी तुम्हारा यजन करने में समर्थ नहीं तुम विभिन्न रूप वाले हो अतः उसे ठीक प्रकार कौन जान सकता है ? सबके आश्रय भूत हो इसलिने तुम्हारा कोई आश्रय स्थान नहीं ।। १ ।। हे अग्ने ! तुम मनुष्यों से बन्धु भाव रखने वाले और यजमानों की रक्षा करने वाले हो स्तोताओं के प्रिय मित्र के समान हो । २ । हे अग्ने ! हमारे निमित्त मित्र वरुण तथा अन्य देवताओं और यज्ञ का पूजा करो तथा अपने यज्ञ-स्थान को प्राप्त होओ ।। (१)।। स्तुत्य, नमस्कृत, अज्ञान अन्धकार-नाशक

दर्शनीय और मनोरथ पूर्ण करने वाली अग्नि हवियों से प्रदीप्त होती है। १। अभीष्टवर्षक, अश्व के समान हविवाहक अग्नि आहुतियों से उत्तम प्रकार प्रदीप्त हुआ यजमान की हवि सहित स्तुतियों को प्राप्त होता है। २। हे अभीष्टवर्षक अग्ने! घृतादि की हवि देने वाले हम, हवियों से जल-वर्षक तुम अग्नि को प्रदीप्त करते हैं।३ (२)। हे दे दीप्यमान अग्ने! उत्तम द्रकार से प्रदीप्त तेरी महान् लपटें वृद्धि को प्राप्त होती हैं। १। हे इच्छा किये हुए मेरा घृत-पात्र तुम्हारे निमित्त हो। हे अग्ने! हमारी आहुतियों को ग्रहण करो। २। आनन्दप्रद, देवों का आह्वान करने वाले, हर समय पूजनीय, विभिन्न लपटों से युक्त अग्नि का स्तवन करता हूँ। यह मेरे स्तोत्रों को सुनो।३ (३)। हे अग्ने! एक, दो, तीन और चार वाणियो से हमारी रक्षा करो अर्थात् चारों वेदों की वाणी रूप स्तुतियों से प्रसन्न होओ। १। हे अग्ने! अदानशोलों से हमको बचा और संघर्षों से हमारा रक्षक हो। हम यज्ञ सिद्धि के लिये तुम्हारा आश्रय ग्रहण करते हैं॥ २ (४)॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमां अदर्शि
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन्।१
कृष्णां यदेनीमभि वर्षसाभूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम्।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन् दिवो वसुभिरतिर्वि भाति
॥२
भद्रो भद्रया सचमान आगात्

स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितष्ठन्नु शद्भिर्वर्णैरभि
राममस्थात् ।३।५
कया ते अग्ने अंगिर ऊर्जो नपादुपस्तुतिम् ।
वराय देव मन्यवे ।१
दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो ।
कदु वोच इदं नमः ।२
अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितोः ।
वाजद्रविणसो गिरः ।३।६
अग्ने आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ।१
अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अंगिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ।२।७
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ।१
अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता
मन्द्रतमो विशि ।२।८ (१'-२)

हे अग्ने ! तू सब का स्वामी दिव्य गुण वाला, दैदीप्यमान, सर्व ज्ञाता, अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाता हुआ सांध्यहवन के निमित्त निशा-काल में प्राप्त होता है ॥ १ ॥ वह अग्नि पिता के समान सूर्य से उत्पन्न उषा को प्रकटकर अँधेरी रात को हटाता है उस समय वह अपने तेजसे सूर्य की दीप्तिको स्तम्भित करता हुआ स्वयं प्रकाशित होता है । २ । उषा द्वारा सेवित वह अग्नि आह्वानीय अग्नि से संगति कर उषा को प्राप्त होता है । फिर जागरशील वह अग्नि अपने तेज से सांध्य-हवन के समय रात्रि के अंधेरे को नष्ट करता है ॥ ३(५) ॥ हे दिव्याग्ने ! वरणीय और बैरियोंको पीड़ित करने वाले तुम्हारी प्रार्थना किस वाणीसे करूँ । १ । हे बल के पुत्र ! किस यजमान के देव यजन कर्म के द्वारा तुमको हवि दूँ, तुम्हारी स्तुति कब करूँ ? । २ । हे अग्ने ! तुम ही इसके लिए समर्थ हो कि हमको उत्तम स्तुति रूप वाणी प्रदान करो उत्तम सन्तान, निवास और ऐश्वर्य से सम्पन्न बनाओ ॥ ३ (६) हे देवाह्वानकर्त्ता अग्ने हमारी प्रार्थना सुनकर अपनी विभूतिरूप अग्नियों सहित यहाँ पधारो तुम घृतयुक्त हवियों को कुशाओं पर प्राप्त करो । वह हवियाँ तुम्हारा सिंचन करें । १ । हे बलोत्पन्नन सर्वत्र गमनशील ! यह हविपात्र तुम्हें यज्ञों में हव्य प्राप्त कराने को यत्नशील हैं । अन्न, वल के रक्षक अभीष्टदाता अग्नि का मैं इस यज्ञ में स्तवन करता हूँ॥(७)॥ हमारी स्तुतियाँ अग्नि को प्राप्त हों घृतयुक्त हवियों से सम्पन हमारे यज्ञ हमारे रक्षक रूप में अग्नि के लिये हो । १ । जो अग्नि अमरत्व प्रात देवताओं में है वह मनुष्यों में भी रहता है । वह दो प्रकार है । मनुष्यों में यज्ञ को सफल कर आनन्द देने वाला है । मैं उस अग्नि को दान के निमित्त बुलाता हूँ ॥२(८) ॥

अदाभ्यः पुरएता विशामग्निर्मानुषीणाम् ।

तूर्णी रथः सदा नवः ।१

अभि प्रयांसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः

क्षयं पावकशोचिषः ।२

साह्वान्‌:विश्वा अभियुजः क्रतुर्देवानाममृक्तः ।

अग्निस्तुविश्रवस्तमः ।३।९

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।

भद्रा उत प्रशस्तयः ।१

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहिः ।

अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेम।

ते अभिष्टये ।२।१०

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे देहि जातवेदो महि श्रवः १

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ।२

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ।३।११ (१५-३)

अग्नि मनुष्य-मार्ग दर्शक होने से अग्रणी है। निरालस्य कर्मानुष्ठान में लगे मनुष्यों का हवि-वाहक होने से मन्थन द्वारा तत्काल प्रकट होने वाले अग्नि को तिरस्कृत नहीं करना चाहिए। १। हवि-वाहक अग्नि के द्वारा हवि देने वाला प्रिय अन्नों को प्राप्त करता हुआ उत्तम स्थान प्राप्त करता है। २। आक्रामक सेनाओं को भगाने वाला, दिव्य गुणों का पोषक अग्नि असंख्य अन्नों का कर्त्ता है। वह हमको भी अन्न प्रदान करे ॥ ३ (९)॥ हवियों से तृप्त अग्नि हमारा मङ्गल करे। उसका दिया हुआ हमको मिले। हमारा यज्ञ ओर स्तुतियाँ मङ्गलमय हों ॥ १ ॥ हे अग्ने! हमारे मन को उदार बनाओ। शत्रुओं की रक्षा-साधन सम्पन्न सेनाओं को हटाओ। इच्छित फल के लिये हम हवियों और स्तोत्रों को अर्पण करते हैं ॥२ (१०) ॥ बलोत्पन्न अग्ने! गौ और अन्न के स्वामी तुम हमको असंख्य ऐश्वर्य प्रदान करो।१। सबको बसाने वाला देदीप्यमान् वह अग्नि वेद मन्त्रों से स्तवन के योग्य है। हे अग्ने! हमको धन प्राप्त करने के लिये प्रदीप्त होओ। २। हे अग्ने सब दिन-रात्रियों में दुष्टों को पीड़ित करो और अपने अनुगतों में उन्हें पीड़ित करने की सामर्थ्य दो ॥३ (११) ॥

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ।१
यं जनासो हविष्मंतो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशसन्ति प्रशस्तिभिः ।२
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता ।
हव्यान्यैरयद् दिवि ।३ १२

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो
अध्वरेध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे
जातवेदसम् ।१
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगे युगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम्
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा
नि षेदिरे ।२
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानाँ रजसी समी-
यसे । यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्म नस्त्रिवरूथः
शिवो भव ।३।१३
उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः ।
वायोरनीके अस्थिरन् ।१
यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम् ।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ।२
पदं देवस्य मीढुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः ।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ।३।१४ (१५-४)

हे मनुष्यों ! तुम सबके पूज्य अग्नि को स्तुति करो। बल प्राप्त कराने वाले साधनों के लिये वेदों स्थित अग्नि का स्तोत्रों से स्तवन करते हैं। १। हवि धारक मित्र के समान घृतादि से हवन करते हुए यजमान रूप अग्नि का स्तवन करते हैं ॥ २ ॥ ऋत्विज यजमान के उत्तम यज्ञ कर्म की प्रशंसा करते हुए उस

अग्नि का स्तवन करते हैं जो हवियों को देवताओं को प्राप्त कराने वाला है ॥३ (१२) ॥ समिधाओं से प्रकट अग्नि का स्तवन करता हूँ। स्वयं पवित्र और ग्रन्थों को पवित्र करने वाले अग्नि को यज्ञ में स्थापित करता हूँ। देवताओं को बुलाने वाले, वरणीय अग्नि से ऐश्वर्य माँगता हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने देवता और मनुष्य, तुम अमर, हवि-वाहक को अपना दूत नियुक्त करते हुए नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम देव मनुष्य दोनों को शोभावान् करते हुये दौत्यकर्म को प्राप्त, इस लोक से दिव्यलोक को हवि पहुँचाने के लिये विचरण करते हो तुम हमारे उत्तम कर्म युक्त स्तुतियों को ग्रहण करते हुये सुख देने वाले होओ ॥३ (१३) ॥ हे अग्ने ! हवि देने वाले को स्तुतियाँ बहिनों के समान तुम्हारा गुणगान करती हुई वायु की सगति में तुम्हारी स्थापना करती हैं। १। जिस अग्नि का त्रिधाता रूप निरावृत, बंधन-रहित कुशासन बिछा है उस पर जल भी पाँव टेकना चाहता है।२। इच्छित प्रदान करने वाले अग्नि का स्थान बाधा रहित रक्षाओं से युक्त रहता है। इसका दर्शन सूर्य के उपदर्शन के समान कल्याणमय है ॥३ (१४) ॥

। तृतीयोऽर्धः ।

ऋषिः—मेधातिथिः काण्वः विश्वामित्रः भर्गः प्रगाथः, सोभरिः काण्वः, शुनःशेपः आजीगर्तिः, सुकक्षः, विश्वकर्माः भौवनः, अनानतः पारुच्छेपिः भरद्वाजो बार्हस्पत्यः गोमतो राहूगणः, ऋजिश्वाः, वामदेवः देवातिथिः काण्वः, श्रुष्टिगुः, काण्वः, पर्वतनारदौ अत्रिः। देवता—इन्द्रः, इन्द्राग्नी, वरुणः, विश्वकर्मा, पवमानः सोमः, पूषा, मरुतः, विश्वेदेवः, द्यावापृथिव्यौ, अग्निर्हवींषि वा। छन्द—बार्हतः, प्रगाथः, गायत्री, त्रिष्टुप्, अत्यष्टिः, उष्णिक्, जगती।

अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।

समीचीदास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।१

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।२।१

प्र वामर्चन्त्युक्थिनो नीथाविदो जरितारः ।

इन्द्राग्नी नवर्तिं पुरो दासपत्नीरधूनुतम् ।

साकमेकेन कर्मणा ।२

इन्द्राग्नी अपसस्पर्युप प्र यन्ति धीतयः ।

ऋतस्य पथ्याऽऽअनु ।३

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च

युवोरप्तूर्यं हितम् ।४।२

शग्ध्यू षू शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।

भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ।१

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।

न किर्हि दानं परि मर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि

तदा भर ।२।३

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।

उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ।१

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ।२।४
यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम् ।
मघो र्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्वग्नये ।१
अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः ।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि
राधो मघोनाम् ।२।५ (१६-१)

हे अग्ने ! सर्व प्रथम सोम-पान के लिये तुम्हारी स्तुति की जाती है । एकत्रित ऋभुओं ने एवं रुद्र-पुत्रों ने पुरातन काल में तुम्हारा ही स्तवन किया । १ । सिद्ध सोम से देह व्यापी आह्लादक प्रकट होने पर इन्द्र यजमान के वीर्य बल को पुष्ट करता है । स्तुति करने वाले इन्द्र की पुरातन महिमा का गान करते हैं । २ (१) । हे इन्द्र ! हे अग्ने ! ज्ञानी जन स्तुतियों से तुम्हें प्रसन्न करते हैं । साम-गायक अभीष्ट के लिये पूजते हैं । मैं भी अन्न के नगरों को कम्पित करने वाले तुमको मैं बुलाना हूँ ॥२॥ हे इन्द्राग्ने ! कर्म फल की ओर अग्रसर हुए होता हमारे अनुष्ठान में सर्वत्र उपस्थित हैं । ॥३॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारें बल और अन्न साथ रहते हैं । बलों को प्रेरित करने में तुम समर्थ हो ॥४(२)॥ हे इन्द्र ! हमारा इच्छित पूर्ण करो । तुम यशस्वी का सब रक्षाओं सहित हम स्तवन करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम पशुधन को बढ़ाने वाले हो । तुम्हारे देव धन को नष्ट करने की

सामर्थ्य किसी में नहीं है। अतः मेरे माँगे हुये को मुझे प्रदान करो ।।२ (३) ।। हे इन्द्र ! धन के लिये पधारो मुझ पवित्राचरण वाले को ऐश्वर्य, गौएँ और अश्वादि प्रदान करो। हे इन्द्र ! तुम हविदाता को बहुसंख्यक ऐश्वर्य के दाता हो। हम शत्रु-नाशक को रक्षा के निमित्त उत्तम वाणी से पूजते हैं ।।२ (४) ।। देवों को बुलाने वाले अन्नदाता अग्ने ! तुम साधकों को सर्व धन देने वाले हो। तुम्हारे लिये मधुर सोम के समान हमारे स्तोत्र प्राप्त हों ।।१।। हे प्रजापति अग्ने ! देवताओं को अपना मानने वाले दानियों को एवं उन यजमानों की संतानो को धन-वान बनाओ ।।२ (५) ।।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।
त्वामवस्युरा चके ।।१।।६

कया त्वं ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्या आ भर ।।१।।७

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्र समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातते ।।१
इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे
स्वानास इन्दवः ।।२।।८

विश्वकर्मन हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व तन्वा स्वा हि ते।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं

मघवा सूरिरस्तू ॥१॥६
अया रुचा हरिण्या पुनानो विश्वा द्वेषांसि

तरति सयुग्वभिः सूरो न सयुग्वभिः ।
धारा पृष्ठस्य रोचते पुनानो अरुषो हरिः ।

विश्व यद्रुपा परियान्यृक्वभिः सप्तास्येभिर्ऋक्वभिः ॥१
प्राचीमनु प्रदिशं याति चेकितत्स रश्मिभिर्यतते

दर्शतो रथो दैव्यो दर्शतो रथः ।
अग्मन्नुक्थानि पौंस्येन्द्रं जैत्राय हर्षयन् ।

वज्रश्च यद्भवथो अनपच्युता समत्स्वनपच्युता ।।२
त्वं ह त्यत्पणीनां विदो वसु सं मातृभिर्मर्जयसि
स्व आ दम ऋतस्य धीतिभिर्दमे ।
परावतो न साम तद्यत्रा रणन्ति धीतयः ।

त्रिधातुभिररुषीभिर्वयो दधे
रोचमानो वयो दधे ॥३॥१० (१६—२)

हे वरुण ! मेरे आमन्त्रण पर ध्यान दो, मुझे सुखी बनाओ। रक्षा के लिये मैं तुम्हारा स्तवन करता हूँ ॥१ (६) ॥ हे अभीष्ट वर्षक इन्द्र ! तुम किस साधन से हमारी रक्षा करते और किस प्रकार साधकों का पालन करते हो ॥१ (७) ॥ यज्ञ के निमित्त देवताओं में इन्द्र को ही बुलाते हैं। यज्ञ के विस्तृत होने पर और

यज्ञ की समाप्ति पर ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये इन्द्र को बुलाते हैं ।१। इन इन्द्र ने अपने बल से आकाश-पृथिवी को पूर्ण किया । राहु द्वारा ग्रसित सूर्य को प्रकट किया । यही सब लोकों का आश्रय स्थान है । सिद्ध सोम इन्द्र को ही प्राप्त होते हैं ।।२ (८) ।। हे संसार के कर्म-साधक ईश्वर ! मेरी हवियों से बढ़ो अपनी ही आहुतियों से अग्नि में हवि दो । यज्ञ-कर्म से रहित व्यक्ति प्रमादी हो । हमारी हवियों को प्राप्त वह ईश्वर दिव्य लोक का दाता हो ।।१ (६) ।। सोम अपनी हरित धार से बैरियों का नाशक है । सोम रस-पायी मुख नक्षत्रों में व्याप्त तेज के समान तेजस्वी होते हैं ।।१।। गतिशील सोम पूर्व को जाता है और रथ रूप किरणों से सङ्गति करता है । पुरुषार्थ-बर्द्धक स्तोत्र इन्द्र को प्राप्त हुये, उस विजयशील की प्रसन्नता के कारण बनते हैं । हे साम ! हे इन्द्र ! तुम दोनों मिलकर पराजित नही होते ।।२।। हे सोम ! तू गवादि को प्राप्त हुआ यज्ञ में पवित्र होती है । साम-ध्वनि के तुम्हारी ध्वनि भी सुनने योग्य है । उस ध्वनि से याज्ञिक आनन्दित होते हैं । देदीप्यमान सोम अन्न देने वाला है ।।३ (१०) ।।

उत नो गोर्षाणि धियमश्वसां वाजसामुत ।

नृवत्कृणुह्यूतये ।।१।।११

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।

विदा कामस्य वेनतः ।।१।।१२

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।

सुमृडीका भवन्तु नः ।।१।।१३

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे ।
शुची उप प्रशस्तये ॥१

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः ।
ऊह्याथे सनादृतम् ॥२

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥३॥१४

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥१

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥२

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥३॥१५

गाव उप वदावटे मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥१

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु ।
अवटस्य विसर्जने ॥२

सिंचन्ति नमसावटमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनबारमक्षितम् ॥३॥१६ (१६-३)

हे पूषा ! पशु अन्नादि देने वाली बुद्धि और कर्मों को हमारे रक्षण-कार्य में प्रेरित करो ॥१ (११)॥ हे महान् पराक्रमी मरुद्गणों ! अपने सेवक, मन्त्रोच्चार द्वारा प्रशंसा करने वाले श्रम से स्वेद युक्त हुये याचक को इच्छित फल प्रदान करो ॥१ (१२)॥ प्रजापति से उत्पन्न अमरत्व प्राप्त देवता हमारी प्रार्थनाओं को सुन कर परमानन्द प्रदान करें ॥१ (१३)॥ हे पवित्र आकाश भूमंडलो ! तुम दोनों की प्रशंसा के लिये उपयुक्त स्त्रोतों को गाते है ॥१॥ देवियों ! तुम अपनी शक्ति से यजमान को शुद्ध करती हुई यज्ञ-स्वामिनी हुई, यज्ञ का निर्वाह करने वाली हो ॥२॥ हे आकाश और भू देवियो ! तुम यजमान की इच्छापूर्ण करने वाली, यज्ञ की आश्रयस्थान हो ॥३ (१४)॥ हे इन्द्र ! तुम अपने लिये सम्पादित इस सोम को प्राप्त होओ । कपोत के कपोती को प्राप्त होने के समान तुम हमारी वाणी को प्राप्त होओ ॥१॥ ऋद्धियों के स्वामी, स्तुतियों से उन्नत इन्द्र ! संघर्षों में हमारी रक्षा को उद्यत रहो। रक्षा-प्रणाली पर हम तुम परस्पर विचार करें ॥२-३ (१५)॥ हे गौओं ! तुम पुष्टता को प्राप्त हो। मन्त्र से दोहन योग्य गो और बकरी के दूध आवश्यक हैं इनके कान सोने और चांदी के हैं ॥१॥ सम्मानित अध्वर्यु शेष मधु को बड़े पात्र में रखते हैं । यज्ञ के पूर्ण होने पर महावीर को आसन्दी में प्रतिष्ठित करते हैं ॥२॥ उच्च भाग में चक्रांकित नीचे द्वार वाले, अक्षय महावीर को नमस्कार करते हुए सींचते हैं ॥३ (१६)॥

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।

महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम ॥१

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ॥
मध्वा संपृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि
द्रवा पिब ॥२॥१७

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ।।१
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु
विप्रराज्ये ॥२॥१८

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥१
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे
स्वानास इन्दवः ॥२॥१९

गोमन्न इन्दो अश्ववत् सुतः सुदक्ष धन्व ।
शुचिं च वर्णमधि गोषु धारय ॥१
स नो हरीणां पत इन्दो देवप्सरस्तमः ।
सखेव सख्ये नर्यो रुचे भव ॥२
सनेमि त्वमस्मदा अदेवं कं चिदत्रिणम् ।
साह्वाँ इन्दो परि बाधो अप द्वयुम् ॥३॥२०
अञ्जते व्यंजते समंजते क्रतुं रिहन्ति मध्वाभ्यञ्जते ।

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावा. ।
पशुमप्सु गृभ्णते ॥१
विपश्चते पवमानाय गायत महीं न धारात्यन्धो अर्षति ।
अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचमत्यो
न क्रीडन्नसरद्वृषा हरिः ॥२
अग्रेगो राजाप्यस्तविष्यते विमानो अह्नां भुवनेष्वर्पितः
हरिर्घृतस्नुः सुदृशीको अर्णवो ज्योतीरथः ।
पवते राय ओक्यः ॥३॥२१ (५६-४)

हे इन्द्र ! तुम्हारे मित्र हुए हम शत्रु से न डरें। कोई हमें संतप्त न करे। तुम अभीष्टपूरक हमारे स्तवन के योग्य हो ॥१॥ इच्छित फल देने वाले इन्द्र सब चीजों के छत्र-रूप हैं। हविदाता यजमान इन्द्र को क्रोधित नहीं होने देता। हे सुखदाता सोम ! हमारे निकट आकर उत्तर वेदी को शीघ्रता से प्राप्त हो ॥२ (७) ॥ हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र तुम स्तुतियों से बढ़ो। अग्नि के समान तेजस्वी साधक तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥१॥ यह इन्द्र ऋषियों से बल पाकर विस्तृत हुआ है। इसकी सत्य महिमा का साधक स्तुति रूप से बखान करते हैं ॥ २ (१८) ॥ जिस यज्ञ निधि का लोक स्वामी रक्षक हैं, वह ईश्वर और रचयिता सरस्वती का पिता रूप होता हुआ भी हे इन्द्र ! तुझे हवि रूप धन प्राप्त कराता है ॥ १ ॥ अपने हवि धन की प्रसिद्धि सोम-वर्षक बल की प्रसिद्धि और सिद्ध सोम की प्रसिद्धि के लिये यज्ञों में सफूर्ति से कर्म. करने वाले चतुर ऋत्विज मधु, खीर, धृत की आहुतियों से इन्द्र का पूजन करते हैं ॥२ (१९) ॥ हे उत्तम बल

युक्त सोम ! निचुड़ा हुआ तू हमें यज्ञ-साधक और अश्वादि से पूर्ण ऐश्वर्य दे। फिर गौ दुग्धादि से मिश्रित हो ॥१॥ हे दिव्य सोम ! तू ऋत्विजों का शुद्ध करने वाला मित्र के समान पुष्ट करने वाला हो ॥२॥ हे सोम ! हमारे सम्बन्ध में पुरानी मित्रता का ध्यान रखो। हमारी वृद्धि के रोकने वालों को मार्ग से हटाओ। तुम शत्रु को संतप्त करने वाले बाधकों को मिटा डालो ॥३ (२०) ॥ ऋत्विज उस सोम का दूध से मिश्रिण करते हैं ॥१॥ हे ऋत्विजो। इस पवमान सोम का गुणगान करो। वह वर्षणशील हुआ रस-रूप अन्न का दाता है। सर्प तुल्य हुआ कुट कर पुरानी त्वचा को छोड़ देता है। वह हरित सोम रस कलश में स्थित होता है ॥ २ ॥ जलों से शोधित सोम की स्तुति की जाती है। वह हरे रङ्ग का जलों पर छाया हुआ सोम ऐश्वर्य की प्राप्ति का साधन-भूत है ॥३ (२१) ॥

॥ सप्तमः प्रपाठकः समाप्तः ॥

अष्टमः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि—शुनःशेप आजीगर्तिः, मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः, शंयुर्बार्हस्पत्यः, वसिष्ठः, वामदेवः, रेभसूनू काश्यपौ नृमेधः, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ, श्रुतकक्षः सुकक्षो वा विरूप वत्सः काण्वः। देवता—अग्निः, इन्द्रः, विष्णुः, वायुः, इन्द्रवयू:, पवमानः सोमः,। छन्द—गायत्री बार्हत, प्रगाथः, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥१

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे ।
त्वे इत्धूयते हविः ॥२

प्रियो नो अस्तु विशपतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥३॥१

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः । १

स नो बृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि ।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥२

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा ।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥३॥२

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चौदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥१
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरयुत्वभिः ।
अग्ने हेडांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि हरांसि च ।२।३
किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम प्र

यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥१

प्र तत्ते अध शिपिविष्ट हव्यमर्यः
शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके ।।२

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि ।
तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरा मे यूयं ।
पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।३।।८ (१७–१)

हे वल के पुत्र अग्ने ! हमारे यज्ञ और स्तुतियों को प्राप्त हुए हमको अन्न दो ।।१।। हे अग्ने ! इन्द्र, वरुण आदि अन्य देवताओं को हवि देने पर भी सभी हव्य तुमको ही प्राप्त होता है ।।२।। प्रजा पालक, होद-साधक, वरण करने योग्य अग्नि हमारा प्रिय हो और हम भी उस अग्नि को प्रिय हो ।।३ (१) ।। हे मनुष्यो ! सर्व लोकों से ऊपर वास करने वाले इन्द्र को तुम्हारे लिये बुलाते हैं । वह इन्द्र हम पर अत्यन्त कृपा करे ।।१।। हमारे सभी इच्छितों के दाता, हे वर्षक इन्द्र ! तू इस मेघ का हमारे लिये उद्घाटन कर । हमारी याचना को अस्वीकार न कर ।।२।। माँगे हुए पदार्थ कों देने वाला, अभीष्ट-वर्षक इन्द्र मनुष्यों पर कृपा करने के लिये अपने बल से पहुँचता है ।।३ (२) ।। हे अद्भुत अग्ने ! तू पोषणयुक्त अन्न हमको प्रदान कर । तू इस धन को पहुंचाने वाला हमारी सन्तान को यशस्वी बना ।।१।। हे अग्ने ! तू महान् रक्षा-साधकों से हमारी सन्तान का पालन

कर। देवताओं के क्रोध को मिटा और बैरियों के हिंसक कर्मों से रक्षा कर ॥२ ( ) हे विष्णों ! तुम्हारा रश्मियों से युक्त रूप स्वयं प्रसिद्ध है। उसे गुप्त मत रक्खो। इसी तेजस्वी रूप से दर्शन दो ॥१॥ हे रश्मिवन्त ! तुम्हारे विष्णु नाम को जानता हुआ उसकी स्तुति करता हूँ। हे दूर देशवासी, तुम्हारे वृद्धि को प्राप्त रूप का मैं प्रशंसक हूँ ॥ २ ॥ हे विष्णों ! तुम्हारे निमित्त हव्य देता हूँ, उसे ग्रहण करो। मेरी स्तुतियों से वृद्धि को प्राप्त होओ। तुम सब देवताओं सहित सदा हमारे रक्षक रहो ॥३ (४) ॥

वायो शुक्रो अयामि ते मध्वो अग्रं दिविष्टषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥१

इन्द्रश्य वायवेषा सोमानां पतिमर्हथः ।
युवां हि यन्तीन्दवो निम्नमापो न सध्र्यच् क ॥२

वायविन्द्रश्च शुष्मिणा सरथं शवसस्पती ।
नियुष्वन्ता न ऊतय आ यातं सोमपीतये ॥३॥५

अध क्षपा परिष्कृतो वाजां अभि प्र गाहसे ।
यदी विवस्वतो धियो हरिं हिन्वन्ति यातवे ॥१

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः ।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥२

तं गाथया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवानां नाम बिभ्रतीः ॥३॥६

अश्वं न त्वा वारिवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ।।१
स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात ।।२
स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ।।३।।७
त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि त्वं तर्य तरुष्यतः ।।१
अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त ।
मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ।।२।।८ (१७-२)

हे वायो ! वृतादि से शुद्ध हुआ मैं दिव्य सुखों की इच्छा से इधर मधुर सोम-रस को सबसे पहिले भेंट करता हूँ। तुम सोम पान के लिये यहाँ पधारों ।। १ ।। हे वायो ! हे इन्द्र ! इन सोमों का पान करने वाले नीची भूमि में जल मैं शीघ्र पहुँचने के समान सोम तुमको पहुँचते हैं ।। २ ।। हे वायो हे इन्द्र ! तुम दोनों बलरक्षक हमारी रक्षा के लिये सोम पीने के लिये यहाँ आओ ।।३ (५) ।। रात्रि बीतने पर उषा वेला में तू हे सोम ! पुष्टि को प्राप्त करता हैं । साधक की अँगुलियाँ तुम्हारे वर्ण वाले को पात्रो की ओर प्रेरित करती हैं ।।१।। शोधा हुआ, सोम रस हर्ष प्रदायक हुआ इन्द्र के लिये पेय होता है। इसे साधक धारण करते थे, और अब भी धारण करते हैं। घासों में

स्थित सोम को गौयें घास समझ कर खा जाती हैं ॥२॥ होता सोम की प्रचलित स्तोत्रों की स्तुति करते हैं। कर्म के लिये झुकी हुई अँगुलियां सोम को हवि देने वाली होती है ॥३ (६)॥ यज्ञेश अग्नि की हवियो द्वारा स्तुति करते हैं। अश्व जैसे मक्खी मच्छरों को पूँछ से हटाता हैं, वैसे ही तुम अपनी लपटों से शत्रु को दूर करो ॥ १ ॥ वह अग्नि मङ्गलमय सुख वाला हो। बलोत्पन्न गतिमान् वह अग्नि हमारे अभीष्टों को पूर्ण करें ॥२॥ हे विश्व में व्याप्त अग्ने ! दूर या निकट से भी हमारा अनिष्ट चिंतन करने वालों से हमको बचाते रहो ॥३ (७)॥ हे इन्द्र ! तुम युद्ध में शत्रु-सेना को भगाते हो। हे शत्रु-पीड़क ! तू विपक्ति नाशक और विघ्न करने वालों का सन्तप्त-कर्त्ता है ॥१॥ हे इन्द्र ! माता पिता के शिशु की रक्षा में तत्पर रहने के समान वह आकाश पृथिवी तेरे शत्रु-नाशक बल को पुष्ट करते हैं। तेरे क्रोध से शत्रु की युद्ध में तत्पर सेनायें उत्पीड़न को प्राप्त होती है ॥२ (८)॥

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद्भूमिं व्यवर्तयत्।

चक्राण ओपशं दिवि ॥1

व्यान्तरिक्षमतिरन् मदे सोमस्य रोचना।

इन्द्रो यद्भिनद् बलम् ॥२

उद्गा आजदंगिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतोः।

अर्वाञ्चं नुनुदे बलम् ॥३॥६

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् ।
आ च्यावयस्यूतये ॥१

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
नरमवार्यक्रतुम् ॥२

शिक्षा ण इन्द्र पाय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।
अवा नः पार्ये धने ॥३॥१०

तव त्यदिन्द्रियं बृहत्तव दक्षमुत क्रतुम् ।
वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥१

तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥२

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्द्धो मदत्यनु मारुतम् ॥३॥११ (१७–३)

यजमानों के यज्ञ से इन्द्र वृद्धि को प्राप्त होता है। बह अन्त रिक्ष से मेघों को प्रेरित कर भूमि का पोषण करने में समर्थ होता है ॥१॥ सोम-पान से हर्षित हुआ इन्द्र दीप्तियुक्त अन्तरिक्ष को सम्पन्न कर मेघों को चीरता हैं ॥ १ ॥ गुफाओं में छुपाई हुई गायों को प्रकट करता और इन राक्षसों को दूर करता है ॥२
(६) हे उपासकों ! हमारी रक्षा निमित्त अपने स्तोत्रों से प्रसन्न करके इन्द्र के ही साक्षात् दर्शन कराओ ॥ १ ॥ शत्रु को मारने में तत्पर, सोमपायी, सोम की शक्ति से अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को हमारे यज्ञ में बुलाओ ॥ २ ॥ हे दर्शन योग्य इन्द्र ! तुम

अत्यन्त ज्ञानी, शत्रु का मन छीन कर हमें देते हुये हमारे रक्षक बनो ॥३ (१०)॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पराक्रम, शत्रु शोधक बल, कर्म और वज्र को स्तुतियाँ तेजस्वी बनाती हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! आकाश से तेरा बल और भू-मण्डल से तेरा यश वृद्धि को प्राप्त होता है जल और मेघ तुम्हे अपना अधिपति मान कर प्रस्तुत होते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम दिव्य धाम वाले का विष्णु मित्र और वरुण स्तवन करते हैं। मरुदगण के बल हे तुम प्रसन्नता को प्राप्त होते हो ॥३ (११)॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः ।
अमैरमित्रमर्दय ॥१

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् ।
उरुकृदुरु णस्कृधि ॥२

मा नो अग्ने महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा ।
संवर्गं सं रयिं जय ॥३॥१२

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः ।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥१

वि चिद्वृत्रस्य दोधतः शिरो बिभेद वृष्णिना ।
वज्रेण शतपर्वणा ॥२

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् ।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥३॥१३

सुमन्मा वस्वी रन्ती सूनरी ॥१

सरूप वृषन्ना गहीमौ भद्रौ धुर्यावभि ।
लाजिमा उप सर्पतः ॥१

नीवशीर्षाणि मृढ्वं मध्य आपस्य तिष्ठति ।
शृङ्गेभिर्दशभिर्दिशन् ॥३॥१४ (१७–४)

हे अग्नि ! बल के निमित्त साधक तुमको नमस्कार करते है। अतः मैं भी तुमको नमस्कार करता हूं तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को नष्ट करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! गौओं का अभीष्टपूर्ण करने को बहुसंख्यक धन दो। तुम महान् से मैं महानता की याचना करता हूँ ॥२॥ हे अग्ने ! युद्ध काल में मुझसे विपरीत न हो। शत्रुओं के एश्वर्य को हमारे लिये जीतो ॥३ (१२) ॥ सब प्रजाएँ इस इन्द्र की शांति के लिये झुकती हैं। जैसे समुद्र की ओर नदियाँ स्वयं ही झुकती चली जाती हैं ॥१॥ संसार को कम्पित करने वाले वृत्रासुर के शीश को उस इन्द्र ने अपने प्रशंसित वज्र से काट डाला ॥ २ ॥ जिस बल से यह इन्द्र आकाश-पृथिवी को अपने वश में करता है' उसका वह बल अत्यन्त प्रकाशित हैं ॥३ (१२) ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे मन रूप अश्व इत्तम ज्ञानी ऐश्वर्यवान् रमणीय और सर्वद्रष्टा है ॥ १ ॥ हे समान रूप वाले इन्द्र ! हमारे यज्ञ को शीघ्र प्राप्त होओ ॥२॥ हे मनुष्यो ! दसों अँगुलियों से अभीष्ट फल देने वाले इन्द्र यज्ञस्थ सोम-रस से पूर्ण हैं। उनके आने से प्राप्त होने वाले इन्द्र को हम ग्रहण करें ॥३ (१४) ॥

(द्वितीयोऽर्धः)

ऋषि—मेधातिथिः, काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः, श्रुतकक्षः सुकक्षो वा शुनःशेप आजीगर्तिः, शंयुर्बार्हस्पत्यः, ,मेधातिथिः, काण्वः, वसिष्ठः, वायुः काण्वः, अम्बरीषो ऋजिश्वा च विश्वमना वैयश्वः, सौभरिः, काण्वः, सप्तर्षयः कलिः प्रगाथः, विश्वामित्रः, मेध्यातिथिः काण्वः, निध्रुविः काश्यपः, भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः, अग्निः, विष्णुः, पवमानः सोमः इन्द्राग्नी । छन्द—गायत्री, बार्हतः प्रगाथः अनुष्टुप्, उष्णिक्, काकुभः प्रगाथः बृहती ।

पन्यंपन्यमित् स्तोतार आ धावत मद्याय ।
सोमं वीराय शूराय ॥१

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
इन्द्रं गीर्भिर्गिर्वणसम् ॥२

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत् ।
नि यमते शतमूतिः ॥३॥१

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः ।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥१

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे ।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥२

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन् ।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥३॥२

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय।
स्तोम रुद्राय दृशीकम् ।१
स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ।२
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ।३।३
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने ।
शं यद् गवे न शाकिने ।१
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः ।
यद् सीमुप श्रवद्गिरः ।२
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमंत दस्युहा गमत् ।
शचीभिरप नो वरत् ।३।४ (१८–१)

हे सोम को सींचने वाले साधको ! मनन करने योग्य, वीर इन्द्र के सामने प्रशंसित सोम को भेंट करो।। १ ।। स्तोत्रों और हवियों से प्रेरणा प्राप्त इन्द्र का शक्तिमान् मन रूप अश्व हमारे सखा समान इन्द्र को यज्ञ में पहुँचावे ।।२।। वृत्रासुर का हननकर्त्ता सोमपायी इन्द्र हमसे विमुख न हो। वह रक्षा साधनों से सम्पन्न हमारे शत्रुओं को भगावे और हमको ऐश्वर्य प्रदान करे ।३ (१)। हे इन्द्र ! प्रवाहित नदियों के सिंधु को प्राप्त होने के समान इन सोम-रसों को प्राप्त करो। अन्य कोई देव धन-बल में तुम से बढ़कर नही हैं ।। १ ।। हे इच्छित फलदायक इन्द्र ! तुम सोम पीने के लिये सब स्थानो में व्यापक होते हों इसे तुम उदरस्थ कर लेते हो ।२। हे पाप से छुड़ाने वाले इन्द्र! हमारा यह

सोम तुम्हारे लिये कम न पड़े। तुम्हारी प्रेरणा से अन्य सब देवों के लिये भी वह कम न पड़ने पावे ॥३ (२)॥ हे स्तुतियों से प्रदीप्त अग्ने! मनुष्यों पर कृपा करने के लिये यज्ञ-स्थान में प्रकट हो यजमान तुमको प्रणाम करता हैं ॥१॥ महान, धूम्र से युक्त, सुखदायक अग्नि ज्ञान और अन्न को हमारी ओर प्रेरित करे ॥२॥ जगत-पालक देवदूत, असंख्य किरणों वाला अग्नि हमारी स्तोत्र रूप वाणियों को ग्रहण करे ॥३ (३)॥ हे मनुष्यो! तुम एकत्रित हुये, सोम के सिद्ध होने पर इन्द्र की स्तुतियों का गान करो। भुस से सुखी होने वाली गाय के समान इन्द्र स्तुतियों से सुखी होता है॥ १ ॥ हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न हुआ इन्द्र बहुसख्यक गौ युक्त अन्न को देने से अपना हाथ नहीं रोकता ।२। दुष्ट-नाशक इन्द्र, गौओं को चुराने वाले हिंसक दैत्य से चुराई हुई गायों को छीनकर अपने अधिकार में लेता है।।३ (४) ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

समूढमस्य पांसुले ।१

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ।२

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।

इन्द्रस्य युज्य सखा ।३

तद्विष्णो परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।

दिवीव चक्षुराततम् ॥४

तद्विप्रासो विपन्युवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥५

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥६॥५

मो षु त्वा वाघतश्च नारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताद्वा सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे पादमा दधुः ॥२॥६

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥१

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम्
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः
सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥२॥७

इन्द्राय सोम पातवे वृत्रघ्ने परि षिच्यसे ।
नरे च दक्षिणावते वीराय सदनासदे ॥१

तं सखायः पुरूरुचं वयं यूयं च सूरयः ।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥२

परि त्यं हर्यतं हरिम् ॥३॥८

कस्तमिन्द्र त्वा वस ॥१

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ते ददति प्रिया वसु ।

तव प्रणीतो हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा

तरेम दुरिता ॥२॥९ (१९–२)

वामन रूप से प्रकट हुये विष्णु ने अपने चरण को तीन रूपों में स्थित किया, तब उनकी चरण-धूलि में यह विश्व अंतर्हित हो गया ।१॥ जिसे कोई भी न मार सके ऐसे विश्व रक्षक विष्णु ने तीनों लोकों में यज्ञादि कर्मानुष्ठानों को पुष्ट करते हुये तीनों चरणों से उन्हे दबाया ॥२॥ हे मनुष्यों ! जिन विष्णु की प्रेरणा से यज्ञादि कर्म होते हैं, उन्हें देखो। विष्णु इन्द्र के मित्र हैं ॥ ३ ॥ आकाश की ओर देखने वाला चक्षु जैसे सब ओर विशालता को देखता हैं, वैसे ही विष्णु के उत्तम स्थानों को ज्ञानीजन सदा देखते हैं ॥ ३ ॥ आलस्य रहित स्तोता विष्णु के परम पद को उत्तम कर्मो द्वारा प्राप्त करते हैं ॥ ५॥ उस विष्णु रूप ईश्वर ने पृथिवी से ऊपर लोकों से अपने पद को स्थापित किया । इस पृथिवी पर सभी देवगण हमारे रक्षक हों ॥६ (५)॥ हे इन्द्र ! यह ऋत्विज भी तुम्हें हमसे;दूर न रक्खें । यदि तुम दूर हो, तो भी हमारे यज्ञ है आकर हमारी स्तुतियों को ध्यान से सुनो ॥१॥ हे इन्द्र ! सोम सिद्ध होने पर ऋत्विजगण एकत्र हुये तुम्हारी स्तुति करते हुये अपने अभीष्टों का वर्णन करते हैं ॥ २ (६) ॥ इन्द्र की स्तुति की जाती है । उस इन्द्र के लिये हे

मनुष्यों ! सनातन स्तोत्रों का पाठ करो। परमेश्वर मुझे ऐसी ही सुमति प्रदान करे ॥ १ ॥ वह इन्द्र बहुसंख्यक धन, भूमि सूर्य का सा तेज मुझे प्रदान करे। गो दुग्ध से मिले हुये सोम-रस इन्द्र को आह्लादक होते हैं ॥ २ (७) ॥ हे सोम ! तुझे इन्द्र के सेवनार्थ पात्रों में भरते हैं यह सोम इन्द्र को हवि देने और फल प्राप्ति के लिये शोधा जाता हैं ॥ १॥ हे स्तोताओ ! हम यजमानों के साथ उस पुष्टिप्रद सुगन्धित सोम-रस का पान करें ॥ २ ॥ सबसे इच्छित सोम के लिये धनुष को प्रत्यचायुक्त करते है। (अर्थात् सोम सिद्धि के लिये उपदानों का प्रयोग करते हैं) विद्वानों में आदर प्राप्त करने के इच्छुक अध्वयु सोम सिद्धि के लिये दूध को ऊपर डालते हैं ॥३ (८) ॥ हे इन्द्र ! तुम्हें कोई नहीं डरा सकता। तम्हारे प्रति श्रद्धा रखने वाला हवि दाता सोम-सम्पादन काल में अन्न देता है ॥१॥ हे इन्द्र ! जो तुमको हवि देते हैं, तुम उन्हें संघषों में मार्ग वताओ। तुमसे प्रेरणा मिलने पर स्तुति करने वाले अपने पुत्रादि सहित सङ्कटों से वच जावें ॥२ (९) ॥

एदु मधोर्मदिन्तरं सिञ्चाध्वर्यो अन्धसः।

एवा हि वीर स्तवते सदावृधः।

इन्द्र स्थातर्हरीणाँ न किष्टे पूर्व्यस्तुतिम्।

उदानंश शवसा न भन्दना।२

तं वाजाना पतिमहूमहि श्रवस्यवः।

अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम्।३।१०

तं गूर्द्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमूहिषे ।१

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिमग्निमीडिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ।१।११

आ सोम स्वानो अद्रिभिस्तिरो वाराण्यव्यया ।
जनो न पुरि चम्वोर्विशद्धरिः सदो वनेषु दध्रिषे १

स मामृजे तिरो अण्वानि मेष्यो मीढ्वान्त्सप्तिर्न वाजयुः
अनुमाद्यः पवमानो मनीषिभिः

सोमो विप्रेभिर्ऋक्वभिः ।२।१२
वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य सवने सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ।१
वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयनेषु भूषति ।

सेमं न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र
प्र चित्रया धिया ।२।१३

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्यम् ।१

इन्द्राग्नी अपसस्परि ।२
इन्द्राग्नी तविषाणि वाम् ।३।१४

क ईं वेद सुते सचा ॥१

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरतं दधे ।

न किष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥२

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।

यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो

योषत्या गमत् ॥३॥१५ (१८–३)

हे अध्वर्यो ! सुखदायक सोम की इन्द्र के आगे वर्षा करो। समार्थ्यवान्, बल-बर्धक इन्द्र ही स्तुत्य हैं।१। हे कष्टनाशक इन्द्र ! ऋषी प्रणीत स्तुतियों को अपने बल से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता, तुम्हारे तेज का कोई भी सामना नहीं कर सकता। (अर्थात् वे स्तुतियाँ तुम्ही तेजस्वी को प्राप्त होती हैं) ॥ २ ॥ अन्नेच्छुक हम, अन्न स्वामी ओर यज्ञ की [वृद्धि करने वाले इन्द्र को ही बुलाते हैं ॥३ (१०) ॥ हे स्तुति करने वालो ! हवि-वाहक अग्नि की पूजा करो। उन्हीं से सब ऐश्वर्य मिलते हैं। हे अग्ने ! तुम हव्यादि पदार्थों को देवताओं को प्राप्त कराते हो ॥ १ ॥ हे हवि से देवों को सन्तुष्ट करने वालो ! जिहे प्राप्त करने का साधन सोम है, उस यज्ञ को पूर्ण करने वाले अग्नि का स्तवन करो ॥२ (११) हे सोम ! छन्ने में छनता हुआ तू पुरुषों के नगर-प्रवेश के समान कलश में जाता है ॥ १ ॥ बल, हर्ष आदि का दाता सोम छनता आ ऋत्विजों की स्तुतियों के पुट से शुद्ध होता

है ॥२ (१२)॥ इस इन्द्र को हम सोम तृप्त करते हैं। इस यज्ञ में सिद्ध सोम, इन्द्र को भेंट करो ॥ १ ॥ पथिकों का हिंसक दस्यु भी इन्द्र मार्ग पर चलने वालों के अनुकूल होता हैं। ऐसे प्रेरक इन्द्र हमारे स्तोत्र को ग्रहण करते हुये अभीष्ट फल देने की इच्छा से यहाँ आवें ॥२ (१३)॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्य गुणों के प्रकाशक संघर्षों में शत्रु को भगाने वाले हो। तुम्हारे पराक्रम से विजय प्राप्त होती है ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! कर्म के फलों की ओर अग्रसर हुये होता उत्तम अनुष्ठानों में लगे रहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! बल और अन्न दोनों का साथ हैं, उनमें रस-वर्ण के तुम प्रेरक हो ॥३ (१४)॥ सिद्ध सोम को ऋत्विजों के साथ पान करते हुये इन्द्र को कौन जानता है ? यह कितने अन्न वाला है ? यह सोम से परमानन्द को प्राप्त हुआ शत्रु-पुरों को ध्वंस करता हैं ॥१॥ हाथी के समान मग्न रहने वाले, दुष्कर्मियों का शिकार करने वाले इन्द्र सोम के सिद्ध होने पर यहाँ आवें ॥२॥ जिसके बल को शत्रु नहीं जानते, वह युद्ध के लिये सुसज्जित इन्द्र स्तुतियों को सुनकर अन्यत्र नहीं जाता ॥३ (१५)॥

पवमाना असृक्षत सोमाः शुक्रास इन्दवः ।
अभि विश्वानि काव्या ॥१

पवमाना दिवस्पर्यन्तरिक्षादसृक्षत ।
पृथिव्या अधि सानवि ॥२

पवमानास आशवः शुभ्रा असृग्रमिन्दवः ।
घ्नन्तो विश्वा अप द्विषः ॥३॥१६

तोशा वृत्रहणां हुवे सजित्वानापराजिता ।
इन्द्राग्नी वाजसातमा ।१
प्र वा मर्चन्त्युविथनः।२
इन्द्राग्नी नवति पुरे ।३।१७
उप त्वा रण्वसन्द्दशं प्रयस्वन्तः सहस्कृत :
अग्ने ससृज्महे गिरः ।१
उप च्छायामिव घृणेरगन्म शर्म ते वयम् ।
अग्ने हिरण्यसन्दृशः ।२
य उग्रः इव शर्यहा तिग्मश्रृङ्गो न वंसगः ।
अग्ने पुरो रुरोजिथ ।३।१८
ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम् ।
अजस्रं धर्ममीमहे ।१
य इदं प्रतिपप्रथे यज्ञस्य स्वारुत्तिरन् ।
ऋतनुत्सृजते वशी ।२
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ।३।१९ (१०–४)

उज्ज्वल, दैदीप्यमान सोम को स्तोत्रों द्वारा संस्कारित करते हैं ।। १ ।। दिव्य सोम पृथ्वी के उच्च स्थान यज्ञ वेदी में सिद्ध किये जाते हैं ।।२।। उज्ज्वल सोम संस्कारित हुये सब बैरियो को नष्ट करने वाले होते हैं ।।३ (१६) ।। शत्रुओं क रोकने वाले पाप-नाशक, विजयी, अन्न दाता इन्द्राग्नि को यज्ञ स्थान में

सोम पीने के लिये बुलाता हूँ ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! वेदपाठी और साम गायक गण अभीष्ट फल देने के लिये तुम्हें पूजते हैं। मैं भी अन्न के लिये तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥२॥ हे इन्द्राग्ने ! शत्रुओं की नव्वे पुरियों को अपने संकेत से कँपाने वाले, तुमको मैं बुलाता हूँ ॥ ३ (१७) ॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! हम हवि रूप अन्न को उपस्थित करते हुये तुम्हारे स्तोत्रों को पढ़ते हैं ॥ हे अग्ने ! स्वर्ण-समान दैदीप्यमान तुम्हारे शरण में हम उपस्थित हुये हैं ॥२॥ उस महा पराक्रमी उत्तम गति वाले, अग्नि ने दैत्यों के नगरो को भस्म कर दिया ॥३ (१८) ॥ हे अग्ने ! सत्य को अपनाने वाले, मनुष्यों के हितकारी, प्रकाश के प्रतिपालक आपके नित्य-पवित्र रूप की आराधना करते हैं ॥१॥ जो अग्नि उत्तम कर्मों में उपस्थित विघ्नों को हटाता हुआ प्रशंशित है, वह संसार को वशीभूत करने वाला अग्नि ऋतुओं का पोषक हैं ॥२॥ भूतकाल और भविष्य में होने वाले प्राणिजों का इष्ट अग्नि पृथिवी आदि लोकों में प्रतिष्ठित रहता है ॥३ (१९) ॥

(तृतीयोऽर्द्धः)

ऋषि—विरुप आङ्गिरसः, अवत्सार विश्वामित्र, देवातिथिः काण्वः गोतमो राहूगणः, वामदेवः प्रस्कण्वः, काण्वः, वसुश्रुत आत्रेयः, सत्यश्रवाः अवस्युरात्रेयः, बुधगविष्ठिरावात्रेयौ, कुत्स आङ्गिरसः, अत्रिः, दीर्घतमा औचथ्यः देवता—अग्निः, पवमानः, सोमः, इन्द्रः अश्विनौ, उषाः, पवमानः, सोमः, इन्द्र । छन्द—गायत्री, बृहती, प्रगाथः उष्णिक् पंक्तिः, त्रिष्टुप् जगती ।

अग्निः प्रत्नेन जन्मना शुम्भानस्तन्वाँ स्वाम् ।
कविर्विप्रेण वावृधे ।।१
ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन् यज्ञे स्वध्वरे ।।२
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा ।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ।।।३।।१
उत्तो शुष्मासौ अस्थू रक्षो भिन्दन्तो अद्रिवः ।
नुदस्व याः परिस्पृधः ।।१
अया निजघ्निरोजसा रथसंगे धने हिते ।
स्तवा अबिभ्युषा हृदा ।।२
अस्य व्रतानि नाधृषे पवमानस्य दूढ्या ।
रुज यस्त्वा पृतन्यति ।।३
तं हिन्वन्ति मदच्युतं हरिं नदीषु वाजिनम् ।
इन्दुमिन्द्राय मत्सरम् ।।४।।२
आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः ।
मा त्वा के चिन्न येमुरन्न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ
इहि ।।१
वृत्रखादो बलं रुजः पुरां दर्मो अपामजः ।
स्थाता रथस्य हर्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः ।।२
गम्भीराँ उदधींरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।

प्र सुन्वाना यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ।३।३
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।

आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ।।१
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते ।

आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तदधिषे सहः ।२।४
त्वमंग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।

न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।।१
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान् कदा चना

दभन् । विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि

चर्षणिभ्य आ ।।२।।५

अग्नि अपने तेज से सुशोभित हुआ ऋत्विजों के स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है ।।१।। अन्न के पुत्र पावक (अग्नि) को इस अहिंसित यज्ञ में बुलाता हूँ ।। १ ।। हे पूज्य अग्ने ! तुम अपनी ज्वालाओं और तेज से पूर्ण हुये यज्ञ में व्याप्त होओ ।।३ (१) ।। हे संस्कारित सोम तेरी उठती हुई तरंगों से दैत्यों का हृदय फट जाता हैं । हमको हानि पहुंचाने वाली शत्रु सेनाओ को पीड़ित करो ।।१।। हे सोम ! तुम अपने उत्पन्न पराक्रम से शत्रु नाशक हो । मैं तुम्हें अपने भय रहित मन से धन प्राप्ति के लिये मानता हूँ ।। २ ।। दैत्यगण इस सिद्ध सोम को तिरस्कृत करने में असमर्थ हैं । हे सोम ! युद्धाकांक्षी शत्रु को उत्पीड़ित कर ।।३।। आनन्द-वर्षक, पापनाशक, पाप दूर करने वाले सोम को इन्द्र के निमित्त शुद्ध करते हैं ।। ४ (२) ।। हे इन्द्र ! आनन्द-

दायक, तुम इस यज्ञ में पधारो। तुम्हारे मार्ग में कोई बाधक न हो! तुम सभी विघ्नों का उल्लंघन कर शीघ्र हमको प्राप्त होओ ॥१॥ वृत्रासुर का हननकर्त्ता, मेघ को विदीर्ण करने वाला, अति बलवान वह इन्द्र रथ पर विराजमान हुआ शत्रुओं को नष्ट करता है॥ २॥ हे इन्द्र! तू समुद्रों को जल से पुष्ट करने के समान याज्ञिक को अभीष्ट फल देकर पुष्ट करता है। गौओं को घासादि मिलने के समान तुम प्राप्त करते हो ॥३ (३)॥ प्यासा मृग जलाशय कीं ओर जाता है, उसी प्रकार हे इन्द्र! तुम मित्र के समान शीघ्र हमको प्राप्त होओ और सुरक्षित रक्खे इस सोम का पान करो॥ १॥ हे ऐश्वर्यशालिन्! सोम सिद्ध करने वाले को धन प्राप्त कराने के लिये वे सोम तुम्हें तृप्त करें। मित्र वरुण के जलों से संस्कारित सोम को तुम अपने बल से पीते हो अतः तुम अत्यन्त पराक्रमी हो॥ २ (४)॥ हे महाबले? तुम दीप्तियुक्त हुये, स्तोता के प्रशंसक हो तुम्हारे सिवाय कोई सुख देने वाला नही है, अतः तुम्हारे निमित्त स्तोत्रों का पाठ करता हूँ॥ १॥ हे इन्द्र! तुम्हारे गण और कँपाने वाले वायु हमारा नाश न करें। हे मानव-हितैषी इन्द्र! हम मन्त्र द्रष्टाओं के निमित्त सब ऐश्वर्य प्राप्त कराओ ॥२ (५)॥

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः।

दिवो अदर्शि दुहिता ।1

अश्वेव चित्रारुषी दाता गवामृतावरी।

सखा भूदश्विनोरुषाः ।2

उत यखास्यश्विनोरुत माता गवामसि ।
उतोषो वस्व ईशिषे ।३।६
एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ।१
या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ।२
वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ।२।७
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ।१
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ।२
युङ्क्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ।३।८
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ।१
एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्त्तनी ।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ।२
य वित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ।३।९ (१६–२)

प्राणियों की प्रेरक, फलदायक रात्रि के अन्त में अन्धकार का नाश करने में समर्थ इस सूर्य पुत्री उषा को सब देखते हैं ॥१॥ अश्व के समान अद्भुत, देदीप्वामान रश्मियों की रचयित्री यज्ञ को आरम्भ कराने वाली अश्विनीकुमारों के सख्य भाव को प्राप्त हुई उषा स्तुति के योग्य है ॥२-३ (६)॥ वह सर्वप्रिय उषा दिव्य लोक से प्राप्त हुई अन्धकार को दूर करती हैं। अश्विनी-कुमारो ! तुम्हारा महान् स्तोत्रों द्वारा सत्कार करता हूँ ॥१॥ समुद्रोत्पन्न अश्विनीकुमार अपनी इच्छा तथा कर्म द्वारा धनों के प्रदायक है ॥२॥ हे अश्विनीकुमारो शास्त्रों में विख्यात स्वर्ग में जब तुम्हारा घोड़ों से जुता रथ पहुँचता है, तब तुम्हारी स्तु-तियों का पाठ किया जाता हैं ॥३ (७)॥ हे हव्यान्न वाली उषे ! हमको अद्भुत ऐश्वर्य दो जिसे प्राप्त कर हम अपने सन्तानादि का पालन करने में समर्थ हो सकें ॥१॥ हे गो अश्व वाली उषे ? जैसे प्रात: बेला में धन प्राप्त करने के लिये तू कर्म की प्रेरणा करती हैं। वैसे ही रात्रि के अन्धेरे को भी मिटा ॥२॥ हे हव्यान्न-युक्त उषे ! अरुण अश्वों को रथ संतुक्त कर हमको सौभाग्य-शाली बनाओ ॥३ (८) ॥ हे अश्विनीकुमारो ! शत्रुनाशक तुम बहु-संख्यक गौएँ और स्वर्ण रथ को हमारे घर की ओर प्रेरित करो ॥१॥ इस यज्ञ में सोम-पान निमित्त उषाकाल में जागे हुये अश्व स्वर्ण रथ पर विराजमान अश्विनीकुमारो को आरोग्य सुख के निमित्त यहाँ लावें ॥२॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने दिव्य लोक से उस प्रसंसा योग्य तेज को प्राप्त किया। तुम हमको पुष्ट बनाने के लिये अन्न प्रदान करो ॥३ (९) ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः ।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं
स्तोतृभ्य आ भर ।१
अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य
आ भर ।२
सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः संसुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य
आ भर ।३।१०
महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते ।
अश्वसूनृते ।१
या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ।२
सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते
अश्वसूनृते ।३।११
प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषि स्तोमेभिर्भूषति प्रति माध्वी
मम श्रुतं हवम् ।।१

अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना।
दस्रा हिरण्यवर्त्तनी सुषुम्णा सिन्धवाहसा माध्वी
मम श्रुतं हवम् ।२
आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्त्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी
मम श्रुतं हवम् ।३।१२ (१६-३)

मैं उस सर्वव्यापक अग्नि का स्तवन करता हूँ, वह गौएँ प्राप्त कराने वाला है। उस अग्नि के घोड़े द्रुतगामी है। उस अग्नि को हविवान यजमान प्राप्त होते हैं। हे अग्ने! हम साधकों को अन्न प्रदान करो। १। यजमान को अन्न देने वाला यह अग्नि पूज्य एवं सर्वद्रष्टा है। वह प्रसन्न होकर सबको ऐश्वर्य प्रदान करने को गति करता है। हे अग्ने! इन स्तोताओं को अन्न देने वाले होओं। २। यह व्यापक अग्नि स्तुत्य है, यह विद्वानों द्वारा उत्तम प्रकार से प्रकट हुआ स्तुति करने वालों को अन्न प्रदान करे।।३ (१०)। हे उषे! तू आज यज्ञ में वहुसंख्यक धन देने वाली हो। हे सुन्दरता-प्रकट सत्य रूपिणी उषे! मुझ पर दया करो। १। हे आदित्य पुत्री उषे! तुम अंधकार को दूर करो। सत्य वाणी बाला, तू मुझ पर दयावान् हो। २। हे दिव्यलोक वाली उषे! हमारी दिवांधता को दूर कर अन्धकार को हटा कर मुझ पर दया कर।।३ (११)।। हे अश्विनीकुमारो! तुम्हारे अभीष्ट वर्षक, धनदायक प्रिय रथ को स्तोता स्तुतियों से शोभावान् बनाते हैं, अतः हे मधुर व्यवहार वाली मेरी स्तुतियों को श्रवण करो।। १।। अश्विनीकुमारो! यजमानों के निकट पधारो मैं अपने बैरियों के तिरस्कार में सफलता प्राप्त करूँ।

हे शत्रुओं के नाशक मधुर व्यवहारों के ज्ञाता मेरे आह्वान पर ध्यान दो। २। अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न-धन सम्पन्न यज्ञ के सेवनार्थ पधारो और मेरे आह्वान को सुनो ॥ ३ (१२) ॥

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषा-सम्। यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्र भानवः सस्रते नाकमच्छ ।१

अबोधि होता यजथाय देवानूर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात् ।

समिद्धस्य रुशदर्दर्शि पाजो महान्देवस्तमसो निरमोचि।२

यदीं गणस्य रशनामजीगः शुचिरङ्क्ते शुचिभिर्गोभिरग्निः ।

आद्दक्षिणा युज्यते वाजयन्त्युत्तानामूर्ध्वो अधयज्जुहूभिः ।३।१३

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।

यथा प्रसूता सवितुः सवायँवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ।१

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगू कृष्णा सदनान्यस्याः ।

समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ।२

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।

न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥३॥१४

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छा ।१
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा । २
उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्य्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना
ततान ।३।१५ (१६-४)

अध्वर्यु ओं की समिधाओं से चैतन्य हुआ अग्नि उषा काल में प्रज्वज्वलित ज्वालाओं सहित विशाल वृक्षों के समान आकाश-व्यापी होता है ।।१।। यह यज्ञ-साधक अग्नि देव यजन के लिये प्रदीप्त होता है। वह उषा कालमें यजमानों पर कृपा करने वाला उठता हैं । इसका प्रकाशित रूप प्रत्यक्ष होता है और यह ससार को अंधकार से निकालता है ।२। जब यह अग्नि प्रज्वलित होती है तब प्रकाशित किरणों से संसार को प्रकाशित करती है । जब घृत द्वारा हवि देने के लिये यज्ञ-पात्रों को प्राप्त होती है, तब वह अग्नि ऊँची उठकर उस घृत का पान करती है ।३(१३) । सभी ग्रह नक्षत्रादि ज्योतियो में उषा सबसे उत्तम है । इसका प्रकाश पूर्व में फैलकर सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला होता है । सूर्य द्वारा उत्पन्न रात्रि अपने अन्तिम प्रहर रूप उषा को जानती है । १ । उज्ज्वल उषा सूर्य रूप वत्स को अङ्ग में लिए प्रकट हुई । रात्रि ने अपने अन्तिम प्रहर की कल्पना की । रात्रि और उषा दोनों का सूर्य-बन्धु है । यह दोनों अमर हैं । प्रथम रात्रि फिर उषा इस प्रकार सूर्य की गत्यनुसार चलती हैं । रात्रि का अन्धकार उषा मिटाती है और उषा को रात्रि मिटा देती

है ।२। उषा और रात्रि दोनों का एक ही मार्ग है । सब जीवोंको जन्म देने वाली इन विपरीत रूप वालियों की मति में विभिन्नता नहीं हैं इसोलिए प्रतिस्पर्द्धा से दोनों मुक्त हैं । ३(१४) । उषा का मुख रूप अग्नि प्रज्वलित होता है तब स्तोताओं की दिव्य स्तुतियाँ बढ़ती हैं । हे अश्विनीकुमारो ! हमको दर्शन देते हुए इस यज्ञ में पधारो ।१। हे अश्विनीकुमारो ! संस्कृत धर्म को मत मिठा दो । धर्म यज्ञ को प्राप्त होने वाले तुम्हारी स्तुति की जाती है । तुम उषा काल में रक्षक अन्न युक्त आकर हविदाता को आनन्दित करते हो । २ । हे अश्विनीकुमारो ! रात्रि के अन्त में जब गौएँ घास खाकर दोहस्थान पर पहुँचती हैं, वह समय सन्धिकाल कहा जाता है । तुम उस समय के हर समय अपने रक्षा-साधनों सहित पधारो और सोम को पियो ।।३ (१५) ।।

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो
भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः
प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ।१

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा
अयुक्षत । अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा
रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ।२

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना
परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह

यजमानाय सुन्वते ।३।१६

अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्यूषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।

आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः

सविता जगत् पृथक् ।१

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना

क्षत्रमुक्षतम् ।

अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं

वयं धना शूरसाता भजेमहि ।२

अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो

जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।

त्रिबन्धुरो मघवा विश्वसौभगः

शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ।३।१७

प्र ते धारा असश्चतो दिवो न यन्ति वृष्टयः ।

अच्छ वाजं सहस्रिणम् ।१

अभि प्रयाणि काव्या विश्वा चक्षाणो अर्षति ।

हरिस्तुञ्जान आयुधा ।२

स मर्मृजान आयुभिरभो राजेव सुव्रतः ।

श्येनो न वंसु षीदति ।३

स नो विश्वा दिवो वसूतो पृथिव्या अधि ।

पुनान इन्दवा भर ।।३।।१८(१६–५)

उषाकाल के तेजस्वी देवता ने पूर्व के अर्द्धभाग में प्रकाश को उत्पन्न किया। योद्धाओं द्वारा शस्त्र-संस्कार करने के समान संसार का प्रकाश द्वारा संस्कार करने वाले वे हमारे रक्षक हों। १। प्रकाशयुक्त अरुण वर्ण की उषा उदय होती हैं, तब उसके देवता किरण रूप रथ पर चढ़े हुए सब जीवों को ज्ञानवान बनाते हैं। यह उषःकालीन देवता सूर्य सेबी होते हैं। २। उत्तम कर्म और श्रेष्ठ दान वाले यजमान के लिये अन्न देते हुये प्रेरणाप्रद उषःकालीन देवता अपने तेजों से प्राप्त होते हैं॥ ३ (१६)॥ वेदी में प्रज्वलित हुआ यह अग्नि रूप सूर्य प्रकट है। उषा अन्धेरे को मिटाती है। अश्विनीकुमारो ! सब कर्मों के प्रेरकदेव सब चीजों को कर्मों में प्रेरित करें। १। अश्विनीकुमारो ! तुम अभीष्ट दाता हमारे बलके पोषक हो। हमारी प्रजाओं को अन्न दो हम शत्रुओं के ऐश्वर्य को जीतें। २। अश्विनीकुमार रथ पर चढ़े यहाँ आवें। हमारे दुपाये और चौपाये आदि को सुख सुख देने वाले हों॥३(१७)॥ हे सोम ! तेरी धारें प्रचुर धन देने वाली हैं, जैसे आकाश से बरसने वाली बूँदें अन्न देने वाली होती हैं। १। पाप नाशक हरे रंग का सोम कर्मों को देखने वाला है। वह अपने बलों को दैत्यों पर प्रहार करता हुआ यज्ञ को प्राप्त होता है। २। वह उत्तम कर्मा सोम ऋत्विजों द्वारा शुद्ध हुआ राजा के समान उच्च और बाज के समान वेग से जलों को प्राप्त होता है। ३। हे सोम ! तू दिव्य और पार्थिव गुणों वाला हमको सब धनों का प्रदाता हो।॥४(१८)॥

॥ अष्टमः प्रपाठकः समाप्त ॥

नवमः प्रपाठकः

(प्रथमोऽर्धः)

ऋषि—नृमेधः, वामदेवः, प्रियमेध, दीर्घतया औचथ्यः वावदेवः, प्रस्कण्वः, काण्वः, बृहदुक्थो वामदेयः, बिन्दुः पूतदक्षो वा जमदग्निर्भार्गवः, सुकक्षः, वसिष्ठः, सुदाः, मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधाश्चाङ्गिरसः, नीपातिथिः काण्वः परुच्छेपो देवोदासिः। देवता—पवमानः, सोमः, इन्द्रः, अग्निः, मरुतः सूर्यः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, पङ्क्ति बार्हतः प्रगाथः, त्रिष्टुप्, शक्वरी अष्टिः।

प्रास्य धारा अक्षरन् वृष्णः सुतस्यौजसः।
देवाँ अनु प्रभूषतः।१
सप्तिं मृजन्ति वेधसो गृणन्त कारवो गिरा।
ज्योतिर्जज्ञानमुक्थ्यम्।२
सुषहा सोम तानि ते पुनानाय प्रभूवसो।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम्।३।१
एष ब्रह्मा य ऋत्विय इन्द्रो नाम श्रुतो गृणे।१
त्वामिच्छवनस्पते यन्ति गिरो न संयतः।२
वि स्रुतयो यथा पथः।३।२
आ त्वा रथं यथोतये।।१

तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते ।
आ पप्राथ महित्वना ।२
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः ।
हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ।३।३
आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो नार्वा
सूरो रुरुक्वाञ्छतात्मा ।१
अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि
शुशुचानो अस्थात् ।
होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ।२
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।
मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ।३।४
अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ।१
अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ।२
एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ्क् स्वर्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।३।५ (२०-१)

अभीष्टवर्षक, संस्कारित देवों में महान् सोम की धारों को परिश्रम से सिद्ध किया गया है । १ । यज्ञकर्म विधायक अध्वर्यु आदि स्तुतियों द्वारा वृद्धि-प्राप्त सोम को शुद्ध करते हैं । २ । हे

स्तुत्य सोम ! तेरा उत्तम तेज रक्षक है, उसे रस से पूर्ण कर ॥३ (१) ॥ जो इन्द्र नाम से प्रसिद्ध-यज्ञादि कर्मों में बड़ा हुआ है, उसका मैं स्तवन करता हूँ ॥ १ ॥ महाबली इन्द्र ! तुम्हारे लिए वेद मन्त्रों वाली स्तुतियाँ की जाती हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! राज मार्ग से अन्य मार्गों के निकलने के समान अनेक प्रकार के दान साधकों को तुमसे प्राप्त होते हैं ॥३(२) ॥ हे इन्द्र ! अपनी रक्षा के लिये उत्तम कर्मों वाले तुम रक्षक को परिक्रमा करते हैं ।१। हे महाबली अद्भुत कर्मा इन्द्र ! तुम्हारी महिमा संसार भर में व्यापक है । २ । हे महापुरुष ! तुम्हारे हाथ स्वर्ण युक्त वज्र को धारण करने वाले हैं । ३(३) । अग्नि ही वेदी को प्रकाशित करता है। वह गतिमान् मांतदर्शी है वही यज्ञशालाओंमें विभिन्न रूपों में बसता और वही सूर्य रूप से प्रकाशित होता है ॥१॥ दो अरणियों के मन्थन से यह अग्नि प्रकट हुआ सब लोकों को प्रकाशित करता है। वह परम पूजनीय यज्ञशाला में वास करता है ॥ ॥ देवताओं के आह्वान वाला अग्नि उत्तम कर्मों का यश के लिए धारक है हमको हवि देने वाला उत्ताम पुत्र प्राप्त करता है ।३(४)। हे अग्ने ! इन्द्रादि को बुलाने वाले तुम्हारे स्तोत्र से स्तोतागण तुम हविवाहक की वृद्धि करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम सेवनीय और वृद्धि को प्राप्त अभीष्ट फलों को सिद्ध करने वाले हमारे यज्ञ का नेतृत्व करते हो ॥२॥ हे अग्ने ! सूर्य के समान तेज वाला तू हमारे पूज्य इन्द्रादि देवों सहित पधारे ॥३ (५) ॥

अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥१
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।

सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ।२।६
विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ।१
शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः
सनादनीडः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत
दाता ।२
ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद् वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋते कर्ममुदजायन्त देवाः
।३।७
अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ।१
पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः ।
त्रिषधस्थस्य जावतः ।२
उतो न्वस्य जोषमा इन्द्रः सुतस्य गोमतः ।
प्रातर्होतेव मत्सति ।३।८
बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनिष्टम मह्ना देव महाँ असि ।१
बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु
ज्योतिरदाभ्यम् ।२।९(२०—२)

हे अमर, प्राणियों के ज्ञाता अग्ने तुम उषाकालीन देवता से यजमान को धन प्राप्त कराओ एवं इस यज्ञ में देवताओं को बुलाओ। १। हे अग्ने ! तुम सन्देश और हविवाहक यज्ञों के रथ रूप अश्विनीकुमारों और उषा के साथ अन्न प्राप्त कराओ ॥ २ (६) ॥ सब कार्यों को करने वाले, शत्रुओं को चीरने वाले युवक को भी इन्द्र की प्रेरणा से वृद्धावस्था खा जाती है। हे पुरुषो ! कालात्मा इन्द्र के पुरुषार्थ को देखो—वृद्धावस्था प्राप्त जो पुरुष आज मृत्यु को प्राप्त होता है, वह पुनर्जन्म द्वारा कल फिर उत्पन्न हो जाता है।१। अपने पराक्रम से सशक्त सुपर्ण पक्षी के समान पराक्रम और पुरातन अस्थिर इन्द्र जिसे कर्त्तव्य मानता है, वही कर्म करता है। वह शत्रुओं से जीता हुआ ऐश्वर्य स्तोताओं को प्रदान करता है। २। मरुद्गणों का साथी इन्द्र वर्षण जलों का धारक हुआ वर्षणशील है। वे मरुद्गण वर्षा-कर्म में उसके सहायक होते हैं ॥३(७) ॥ मरुद्गणों के लिये निचोड़ा हुआ सोमरस रखा है, इसे वे तेजस्वी अश्विनीकुमारों सहित पान करते हैं। १। सबको कर्मों में प्रेरित करने वाला मित्र, अर्यमा और दुःख-नाशक वरुण यह तीनों शोधित और स्तुति द्वारा अर्पित सोम का पान करते हैं। २। इन्द्र रस निचौड़े हुए तथा गो-घृत मिश्रित सोम को पीने की, होता द्वारा स्तुति की इच्छा करने के समान, प्रातःकाल की इच्छा करता है।।३ (८) ॥ हे सूर्य ! तुम दान देने वाले सबसे बड़े दानी हो। अत्यन्त तेजस्वी होने से महान् हो ! अत्यन्त प्रकाशित होने से सबसे श्रेष्ठ हो।१-२(६)।

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानाँ पते ।
उप नो हरिभिः सुतम् ।1

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः
उप नो हरिभिः सुतम् ।2

त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ।3।10

प्र वो महे महेवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।
विशः पूर्वीः प्र चर चर्षणिप्रा ।।1

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ।2

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ।3।11

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दधिषे रदावसो न पापत्वाय रंसिषम् ।1

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद् विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन्त आप्यं वस्यो अस्ति
पिता च न ।2।12

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम्
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ।।1

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् । सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ।२
भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् मारे अस्मन्मघवं ज्योक्कः ।३।१३ (२०–३)

हे सामेश्वर इन्द्र ! हमारे यहाँ असंख्य विभूतियों सहित आकर सोम पियो ।।१।। पापनाशक पराक्रमी इन्द्र राक्षस नाश के समय उग्र और विश्व रक्षा के लिये शांत, इस प्रकार दो रूपों वाला है वह हमारे शुद्ध सोम का पान करने को यहाँ आवे ।। २ ।। हे पापों को दूर करने वाले इन्द्र ! सोम के पीने की इच्छा वाले हो, अतः इस यज्ञ में आकर सोम-पान करो ।।३(१०)।। हे मनुष्यो ! असंख्य धन के लिये इन्द्र को सोम अर्पित करो। उत्तम स्तोत्रों का पाठ करो हे मनोरथों को पूर्ण करने वाले इन्द्र ! तुम इन हवि देने वालों का सामीप्य प्राप्त करो।१। अत्यन्यन्त व्यापक इन्द्र के लिए ऋत्विज उत्तम स्तुतियाँ और हव्यान्न देते हैं। उस इन्द्र के अद्भुत पराक्रम में देवता भी बाधक नहीं हो सकते।२।सबके राजा रूप अबाधित इन्द्र के प्रति की गयीं स्तुतियाँ शत्रुओं को भगाती हैं, अतः हे स्तोताओ ! अपने मनुष्यों को इन्द्र का स्तवन करने की प्रेरणा दो। ३ (११) ।। हे इन्द्र ! तुम्हारे समान ही मैं भी धनेश बनूँ। मैं स्तुति करने वाले को जो धन दूँ उससे वह धनिक बन जाय ।। १ ।। मैं तुम्हारे पूजन को धन देता हूँ। इन्द्र ! तुम्हारे समान हमारा और कौन है ? तुम्हारे सिवाय अन्य कोई प्रशंशित रक्षक हमारा नहीं ।। ३ (१२) ।। हे इन्द्र ! तुम सोम पीने की इच्छा वाले मेरे आह्वान

पर ध्यान दो। स्तोता की प्रार्थना सुनो। हमारी सेवाओं को ग्रहण करो।।हे शत्रुनाशक इन्द्र! तेरी स्तुतियों का मैं त्याग नहीं करता। तेरे यशस्वी स्तोत्रों को मैं नित्य करता हूँ ।। २ ।। हे इन्द्र! हमारे वहाँ बहुत से सोम निचौड़े गये है। स्तोता तुम्हें बुलाते हैं, अतः हमसे कभी दूर नर रहो ॥३(१३)॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहा।
अस्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां
ज्याका अधि धन्वसु ।१
तं सिन्धूं रवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यम्।
तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ।२
वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः।
अस्तासि शत्रवे वधं योन इंद्र जिघांसति।
या ते रातिर्ददिवसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका
अधि धन्वसु ।३।१४
रेवां इद्रेवत स्तोता स्यात् त्वावतो मघोनः।
प्रेदु हरिवः सुतस्य ।१
उक्थं च न शस्यमानं नागो रयिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानम् ।२
मा न इन्द पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः।

शिक्षा शचीवः शचीभिः ।३।१५

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ।१
अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो त्वां ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण वक्षतु ।
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमो घोषेण वक्षतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ।३।१६

पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय मधुमत्तमः ।१
ते सुतासो विपश्चितः शुक्रा वायुमसृक्षत ।२
असृग्रं देववीतये वाजयन्तो रथा
इव ।।३।।१७ (२०—४)

हे स्तोताओ इन्द्र से रथ के सम्मुख हुये शक्ति की पूजा करो। लोक-पालक, शत्रुनाशक इन्द्र हम स्तुति करने वालों को धन दे। दुष्टों के प्रत्यंचायुक्त धनुष टूट जाये। १। हे इन्द्र ! तुम मेघों की वर्षा करो। तुम शत्रु-विहीन हुये ग्रहण करने योग्य पदार्थों के पोषक हो। हम तुम्हारे लिए हवियाँ और स्तुतियाँ भेंट करते हैं। २। हमारे अन्नादि की वृद्धि होने न देने वाले दुष्ट-नाश को प्राप्त हों। हे इन्द्र ! जो हमारी हिंसा-कामना करता है, उसे तुम मारना चाहते हो। तुम हमको धन प्रदान करो ।। ३ (४) ।। हे पाप हरने वाले इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति करने वाला धन से पूर्ण हो, वह दरिद्र न रहे। तुम्हारा आराधक ऐश्वर्य प्राप्त करे ।। १ ।। हे इन्द्र ! तुम स्तुति न करने वाले के सामर्थ्य और स्तोताओ के स्तोत्रों के जानने वाले हो।

तुम गायत्री नामक साम को भी जानते हो हम उसी से तुम्हारा स्तवन कर रहे हैं। २। हे इन्द्र ! तुम हिंसकों और तिरस्कार करने वालों की दया पर हमको न रहने दो। अपने बल द्वारा इच्छित ऐश्वर्य हमको प्रदान करो।३ (१५)। हे इन्द्र ! यजमान की स्तुतियों को प्राप्त होओ। हम तुम्हारे दिव्य शासन में अत्यन्त सुखी रहते हैं। १। भेड़िये के डर से काँपती हुई भेड़ के समान पाषाणों की धार कूटे जाते हुए सोम को कँपाती हैं। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे दिव्य शासन में अत्यन्य सुखी रहते हैं। २। हे इन्द्र ! इस यज्ञ में कूटता हुआ पाषाण तुझे सोम प्राप्त करादे। जिस इन्द्र के दिव्य शासन में हम अत्यन्त सुखी रहते हैं, वह इन्द्र अपने लोक को पधारें॥ ३ (१६)॥ हे सोम ! तू अत्यन्त मधुर रस से परमानन्द का देने वाला हुआ इन्द्र को प्राप्त हो। १। वह बुद्धिवर्धक सोम स्वच्छ और निष्पन्न हुए वायु को प्रकट करते हैं। २। यजमानों के लिए अन्न की इच्छा से, सोम देवताओं के लिए ऋत्विजों द्वारा अर्पण किये जाते हैं। ॥३ (१७)॥

अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसोः
सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम्।
य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु शुक्रशोचिष आजुह्वानस्य सर्पिषः।१
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठ-
मंगिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः।
परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम्।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः॥२
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता

दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीडु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निष्पहमाणो यमते नायते ध वासहा नायते ॥३॥१८

परम दाता, निवास-कारक बलोत्पन्न, सर्व ज्ञाता, पूज्य यश का निर्वाहक, प्रदीप्त, उस अग्रगण्य अग्नि को यज्ञ सिद्ध करने वाला जानता हूँ ॥१॥ मेधावी इन्द्र ! हम यज्ञेच्छुक ऋत्विजों और मन्त्रों से युक्त हुये तुम्हारा आह्वान करते हैं। फिर यह प्रजायें अभीष्ट फल के लिए तुम्हें पूजें । २ । स्तुत्य अग्नि अत्यन्त दीप्ति कों प्राप्त हुआ हमारे द्रोहियों को मारता है। इसके योग से अचल पाषाण के भी खण्ड हो जाते हैं वह अग्नि शत्रुओं को समाप्त करता हुआ खेलता हैं, शत्रुओं के सामने से पलायन नहीं करता ॥३॥१८

(द्वितोयोऽर्ध)

ऋषि:—अग्नि:, पावक:, सोभरि: काण्व, वरुणो वंतहव्य, अवत्सार:, काश्यप:, गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ, त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिंघुद्वीपो वाम्बरीष:, उलो वातायन:, वेन: । देवता—अग्नि:, विश्वे-देवा:, इन्द्र, आप: वायु: वेन: । छन्द—पङ्क्ति: त्रिष्टुप्, काकुभ:,

अग्ने तव श्रवो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्याँ चधासि दाशुषे कवे ॥१
पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रौ भातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सन्दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३
इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि दर्शतं क्रतुम् ॥४
इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं
रयिम् ॥५
ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे
पुरो जनाः ।
श्रुतकर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं
मानुषा युगा । ६॥१ (२०-५)

हे अग्ने ! तुम्हारी हवियाँ प्रशंसित हैं । तुम्हारी दीप्ति सुशोभित है । तुम हविदाता को धन देने वाले हो । १ । हे अग्ने ! निर्मल तेज वाला तू माता के समान अरणियों द्वारा प्राप्त होता है । यजमानों का रक्षक तू आकाश पृथ्वी को सुसंगत करता है ॥२॥ हे अग्ने ! हमारे स्तुत्यादि कर्मो को ग्रहण करो, यज्ञादि कर्मों से सन्तुष्टि प्राप्त करो । यजमान तुम्हारे लिए उत्तम अन्न रूप हवियाँ देते हैं ॥३॥ हे अविनाशी अग्ने ! तू अपने तेज से ईश्वर हुआ हमारे धनों की वृद्धि करे । तू तेज से अत्यन्त दीप्त होने के कारण कर्म और फलों को सुसंगत करता हैं । ४ । हे यज्ञ संस्कार उत्तम ज्ञान, धन के स्वामिन् ! हम तुम्हारी अराधना करते हैं तुम हमको भोगने वाला धन दो ॥ ५ ॥ यज्ञाग्नि

प्रथम पूर्व दिशा में स्थापित की जाती है। हे अग्ने! यजमान दम्पति तुम्हारा देववाणी द्वारा स्तवन करते हैं॥ ६(१)॥

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तराति वाजकर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमाविथ ।१

तव द्रप्सो नीलवान् वाश ऋत्विय इंधानः सिष्णवा ददे।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ।२।२

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्नि जनयन्त मातरः।
तमित् समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ।१।३

अग्निरिन्द्राय पवते दिवि शुक्रो वि राजति।
महिषीव वि जायते ।१।४

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागर तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ।१।५

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकः ।१।६

नमः सखिभ्यः पूर्वसद्भ्यो नमः साकंनिषेभ्यः ।
युञ्जे वाचं शतपदीम् ।१

युञ्चे वाचं शतपदीं गाये सहस्रवर्तनि ।
गायत्रं त्रैष्टुभं जगत् ।२

गायत्र त्रैष्टुभं जगद् विश्वा रूपाणि सम्भृता ।
देवा ओकांसि चक्रिरे ।३।७

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निरिन्द्रो ज्योतिरिन्द्रः ।
सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः ।१

पुनरूर्जा नि वर्तस्व पुनरग्न इषायुषा ।
पुनर्नः पाह्यंहसः ।२

सह रय्या नि वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।३।८ (२०-६)

हे अग्ने ! तुम्हारे मित्र भाव को प्राप्त यजमान तुम्हारी रक्षाओं से बढ़ता है । १ । हे सोम-सिंचित अग्ने ! अध्वर्युओं द्वारा सोम तुम्हारे निमित्त प्राप्त किया जाता है । तू उषाकालों का मित्र है, उसी समय यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है । अँधेरे में तू अधिक प्रकाशित होता है । २ (२) । ऋतुओं द्वारा प्राप्त औषधियां उस अग्नि को धारण करती हैं, जो जलों से प्रकट करने वाली हैं ।।१ (३) ।। अग्रगण्य अग्नि इन्द्र को दी गई हवि

से अधिक प्रदीप्त होता और अन्तरिक्ष से प्रकाशित होता है। तृणादि से गौ दुग्धादि देती है,वैसे ही मन्त्र अग्नि का उत्पत्तिकर्त्ता है ॥१ (४)॥ सदा चैतन्य, ऋचाओं द्वारा इच्छित उस अग्नि को सोम के स्तोत्र प्राप्त होते हैं, उसी चैतन्य को सोम आत्म समर्पण करता है। तुम्हारे संख्य भाव से मैं सुन्दर स्थान प्राप्त करूँ ॥ १ (५) ॥ अग्नि जागरण शील है। ऋचाओं द्वारा इच्छित वह अग्नि जागृत हुआ स्तोत्र रूप सोम को प्राप्त करता है। वही सोम को ग्रहण करता है। मैं तुम्हारे संख्य भाव से उत्तम स्थान को प्राप्त करूँ ॥१ (६)॥ यज्ञारम्भ से भी पूर्व आने वाले देवों को मेरा प्रणाम, यज्ञारम्भ से यज्ञ में स्थित देवों को भी प्रणाम। मेरी अभीष्ट फलदायिनी ऋचायें स्तुति रूप से प्रस्तुत हैं ॥ १ ॥ असंख्य यशों वाले स्तोत्र को देवार्थ प्रयुक्त करता हूँ। गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती नामक छन्द अनेकों फलों के लिये गाता हूँ ॥ २ ॥ गायत्री, त्रिष्टुप् तथा जगती छन्द वाले ऋचासमूह गायकों द्वारा नियुक्ति अग्नि आदि देवों द्वारा अनेक स्वरूप वाले हैं ॥ ३ (७) ॥ अग्नि ज्योति है, ज्योति अग्नि है। इन्द्र ज्योति और ज्योति इन्द्र है, सूर्य में और ज्योति में भी विभिन्नता नहीं है ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमको बलयुक्त मिलो अन्न और वायु वाले होकर पुनः मिलो और पापों से बचाओ ॥ २ ॥ हे अग्ने ! ऐश्वर्यों से युक्त हुए मिलो। संसार के ऐश्वर्यों का उपयोग कराने वाली आनन्द धार से हमारा सिंचन करो ॥३ (८) ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।

स्तोता मे गोसखा स्यात् ॥१

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे ।

यदहं गोपतिः स्याम् ॥२

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते ।

गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३॥६

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥१

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥२

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षणाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥३॥१०

जात आ त्रातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे

प्र न आयूंषि तारिषत् ॥१

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।

स नो जीवातवे कृधि ।२

यददो वात ते गृहेऽमृतं निहितं गुहा ।

तस्य नो धेहि जीवसे ॥३॥११

अभि वाजी विश्वरूपो जनित्रं हिरण्ययं

बिभ्रदत्कं सुपर्णः ।

सूर्यस्य भानुमृतुथा वसानः वरि स्वयं मेधमृज्रो

जजान ।१

अप्सु रेतः शिश्रिये विश्वरूपं तेजः पृथिव्यामधि यत् संबभूव ।
अन्तरिक्षे स्वं महिमानं मिमानः कनिक्रन्ति वृष्णो अश्वस्य रेतः ॥२
अयं सहस्रा परि युक्ता वसानः सूर्यस्य भानुं यज्ञो दाधार ।
सहस्रदाः शतदा भूरिदावा धर्ता दिवो भुवनस्य विश्पतिः ।३।१२
नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ।१
ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्-
प्रत्यङ्‌चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वार्ण नाम जनत प्रियाणि ।२
द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन् गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥३॥१३ (२०-८)

हे इन्द्र ! धन के तुम एकमात्र ईश्वर हो । मैं भी यदि तुम्हारे समान ऐश्वर्य वाला होऊँ तो मेरा प्रशंसक गौओं वाला हो । आपकी स्तुति करने वाला भी गौओं से युक्त हो । १ । हे इन्द्र ! मैं यदि गौ का स्वामी होऊँ तो अपने स्तोता को गवादि धन से पूर्ण कर दूं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तेरी स्तुतियाँ गौ रूप होकर यजमान को बढ़ाने की इच्छा से इच्छित पदार्थों का उसके निमित्त दोहन करती हैं ।३ (१)॥ तुम जल रूप सुख के उत्पत्ति

कर्ता हो अतः अन्न प्राप्ति के लिए हमको बल दो और ज्ञान प्राप्त कराओं ।१। हे जलो ! तुम अपने रस रूप का हमको सेवन कराओ, जैसे मातायें पुत्रों को पय रूप रस पिलाती हैं। २। हे जलो ! तुम पाप को नाश करने की प्रेरणा देते हो। पवित्रता के लिए तुम्हें सिर पर डालते हैं। तुम हमको सन्तति क्रम के लिए प्रेरित करो ।३ (१०)। वायु हमारे रोगों को मिटावे और सुख देने वाला होकर प्रवाहित हो और हमको आयु देने वाले अन्नों की वृद्धि करे ।१। हे वायो ! पिता के समान उत्पत्तिकर्त्ता और रक्षक तुम हमारे हितैषी मित्र हो और बन्धु के समान प्रिय हो। तुम हमको जीवन-यज्ञ में समर्थ बनाओ ॥ २ ॥ हे वायो ! तुम्हारे स्थान में जो ऐश्वर्य स्थिति है वह ऐश्वर्य हमको प्रदान करो ॥३ (११) ॥ गरुण के तुल्य वेग वाला, बल प्रकाश से युक्त अग्नि स्वर्ण के समान दीप्ति युक्त यज्ञ के लिए स्वयं प्रकाशित होता है ।१। सारा भूत अन्न रूप तेज जलों का आश्रित है। वह अन्तरिक्ष में किरणों के समूह को विस्तृत कर सोम की हवि से आह्वान करता, शब्दवान् होता है। २। दिव्यलोक तथा सभी लोकों के सुखों का धारक, प्रजा-पालक याचकों को धन देने वाला अग्नि असंख्य किरणों को विस्तृत कर सूर्य के प्रकाश का धारक है। ३ (१२)। हे इन्द्र ! अन्तरिक्ष में उड़ते हुए, स्वर्ण पंख वाले वरुण-दूत, विद्युत रूप अग्नि के स्थान में प्रतिष्ठित, हृदय से तुम्हारी इच्छा करते हुए स्तोता जब अन्तरिक्ष की ओर मुख करते हैं तभी तुम्हें देखते हैं ।१। जलोंका धारक इन्द्रअन्तरिक्ष में रहता है। वह अपने अद्भुत आयुधों को धारण करता है। सूर्य अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाता है, उसके समान वह अपने जलों को सब ओर वर्षाता है। २। अन्तरिक्षमें जल की बूँदों से युक्त, सूर्य के समान तेजस्वी इन्द्र जप मेघ की ओर बढ़ता है

तब सूर्य अपने तेज से तृतीय लोक में प्रतिष्ठित हुआ जल वर्षाता है ॥३ (१३) ॥

(तृतीयोऽर्धः)

ऋषि—अप्रतिरथ ऐन्द्रः, वायुर्भारद्वाजः, शामो भारद्वाजः जय एन्द्रः, गोतमो राहूगणः । देवता—इन्द्रः, पृहस्पतिः, अप्वा, इन्द्रो मरुतो वा' संग्रामशिष, विश्वदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप् पङ्क्ति जगती ।
प्रगाथः जगती गायत्री ।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः
क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्
साकमिन्द्रः ॥१
सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ।२
स इषुहस्तैः स निषंगिभिर्वशी सं सृष्टा स युध इन्द्रो गणे २ ।
सं सृष्टजित् सोमपा बाहुशर्ध्यू ग्रन्धवा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥१
बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेना प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता ।
रथानाम् ॥१

बलविज्ञायः स्थविरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ
गोवित् ।।२

गोत्रभिदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो
अनु सं रभध्वम् ।।३।।२

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु।१
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुरः एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभजनतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ।२
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध
उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्
।।३।।३

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत् सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन् वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः
।।१

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु

अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ।२

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्येति न ओजसा स्पर्धमाना
ताँ गूहत तपसापव्रतेन यथैतेषामन्यो अन्यं न जानान्
॥३॥४

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्तो गृहाणांगान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सच-
न्ताम् ॥१

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ।२

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कं च नोच्छिषः ।३।५

कङ्काः सुपर्णा अनु यन्त्वेनान् गृध्राणामन्नमसावस्तु सेना ।
मैषांमोच्यघहारश्च नेन्द्र वयाँस्येनाननुसंयन्तु सर्वान् ।१

अमित्रसेनां मघवन्नस्माञ्छत्रूयतीमभि ।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ।।२

यत्र बाणाः संपतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्र नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म
इच्छतु ॥३॥६

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥१

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥२

इन्द्रस्य बाहू स्थविरौ युवानावनाधृष्यौ सुप्रतीकावसह्यौ ।
तौ युञ्जीत प्रथमौ योग आगते याभ्यां जितमसुराणां
सहो महत् ॥३॥७

मर्माणि ते वर्मणा च्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु
वस्ताम् ।

उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१

अन्धा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ॥२

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म
ममान्तरम् ॥३॥८

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा परावत आ जगन्था
परस्याः ।

सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून् ताढि मृधो

नदस्व ॥१

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाःस्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु

।३ ९(२५-५)

द्रुतकर्मा, व्यापक शत्रु को भयदाता, दुष्टों के नाशक, प्रमोद रहित इन्द्र असंख्य सेनाओं का विजेता है । १ । वीरों ! देदताओं के बंरियोंको रुलाने वाले, विजयी, अविचल, वर्षक उस इन्द्र की कृपा से विजय प्राप्त कर शत्रुओं को भगाओ ।। २ ।। वह इन्द्र सब वीरों को वशीभूत करता हूँ और युद्ध में समर्थ हैं, जींतता तथा सोम पीता है । उस के वाण विध्वंस में समथ हैं ।।३ (१)।। हे रक्षक इन्द्र ! राक्षसों को मारना हुआ शत्रु सेना का नाश कर, विजय प्राप्त कर । १ । हे इन्द्र ! सबके बलों का ज्ञाता-अन्नवान्, शत्रु-तिरस्कार, बलोउत्पन्न, स्तुत्य तू विजय रथ पर आरोहण कर । २ । हे साथियो ! पहाड़ों को भी तोड़ देने में समर्थ, स्तुत्य, संग्राम विजेता इस इन्द्र के नेतृत्व में युद्ध करो । वीरो ! जब यह इन्द्र शत्रुओं पर क्रोध करे तभी तुम भी उन पर क्रोध करो ।।३ (२) ।। मेघों के बल में प्रविष्ट होने वाला पराक्रमी अत्यन्त क्रोधी, अविचलित, अहिसित इन्द्र युद्धकाल में हमारी सेनाओं का रक्षक हो ।। १ ।। हमारी सहायक सेनाओं का इन्द्र नेतृत्व करे । बृहस्पति दक्षिण धज्ञ और सोम यह रक्षक

रूप से सबसे आगे रहें, मरुद्गण विजयिनी देव-सेनाओं से पूर्व प्रस्थान करें। २। मनोरथो को पूर्ण करने वाले इन्द्र, वरुण आदित्य और मरुद्गण की महती शक्ति हमारी अनुगत हो। उदार और विजयी देवगण का जय घोष गूँज उठे ॥ ३ (३) ॥ हे इन्द्र ! हमारे स्तोत्रों को प्रेरित करो। हमारे सैनिकों को हर्ष दो अश्वों को वेग दो, रथो से उत्साह वर्धक शब्द निकलें। १। शत्रु सेना से सामना होने पर इन्द्र रक्षा करे। बाणों से शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो। हमारे वीर जीतें। हे इन्द्र! युद्धों में हमारे रक्षक होओ। २। हे मरुद्गणो ! हमारे ऊपर आक्रमण करने वाली शत्रु सेना को अन्धकार से ढक दो यह परस्पर एक दूसरे को भी न देख या पहिचान सके ॥३ (४) ॥ हे पाप से अभिमानिनी हुई वृत्ति ! हमारे पास न आ। तू शत्रुओं के शरीरों से लिपट जा। उनके हृदयमें शोक और ईर्षा उत्पन्न कर। हमारे शत्रुओं को अन्धकार में डाल ।१। हे वीरो ! आक्रमण करो और विजयी होओ। इन्द्र तुमको आनन्दित करे। तुम्हारे बाहुओं में प्रचण्डता बढ़े। तुम किसी से तिरस्कृत न होओ। २। वेद मन्त्रों द्वारा तीक्ष्ण बाण ! तू दूरस्थ शत्रु को प्राप्त हुआ सबको निःशेष कर डाल ॥ ३ (५) ॥ माँस भक्षी पक्षी शत्रुओं का पीछा करें। गृध्र शत्रु सेना का भक्षण करें। शत्रुओं में से कोई शेष न रहे। हे इन्द्र ! अधिक पापी न हों, ऐसा शत्रु भी न बचे। १। हे धनेश, हे शत्रु-नाशक इन्द्र और अग्ने ! तुम दोनों हमारे शत्रुओं को भस्म करदो।२। जहाँ बड़ी शिखा वाले बाणों की वर्षा हो वहाँ देवगण हमारे रक्षक हों ॥ ३ (६) ॥ हे इन्द्र! राक्षसों को नष्ट करो। शत्रुओं को युद्ध में नष्ट करो। बाधकों का सिर तोड़ो। हमारी हानि करने वाले शत्रु को मार डालो। १। हे इन्द्र ! हमसे लड़ने वालों को मारो। अपनी सेनाओं के द्वारा हराये हुये शत्रुओं को मुँह लटकाये भागने दो। हमको क्षीण

करने वाले को गर्त में डालो ।२। राक्षसों के बल को जीतने वाले इन्द्र किसी से भी वश में न होने वाले हाथी की सूंड के समान अपने-अपने बाहुओं को युद्ध काल में प्रेरित करें ।।३ (७) ।। हे राजन् ! तेरे मर्म स्थानों को बवच से ककता हूँ, सोम तुझे अमृत से ढके । वरुण तुझे सुखी करे और सब देवता तुझे विजयानन्द दिलावें । १ । हे शत्रुओ ! तुम सिर कटे साँपों के समान अन्धे होओ । सभी श्रेष्ठ शत्रुओं को इन्द्र मार डालें ।। २ ।। जो हमारा बान्धव हुआ हमसे द्वेष करता और गुप्त रूप से हमारी हिंसा-कामना करता है, सब देवगण उसका नाश करें । मन्त्र ही कवच रूप है, वह मेरी रक्षा करे ।। (८)।। हे इन्द्र ! तू सिंह के समान भयावह है, तू दूर से भी आकर वज्रको तीक्ष्ण कर उससे शत्रुओं का नाश कर युद्ध की इच्छा वाले शत्रु को भी तिरस्कृत कर ।१। हे देवताओ ! आपकी कृपा से हम मङ्गलमय वचनों को सुने, कभी वधिर न हों । हमारे नेत्र कल्याण-दर्शन के लिए समर्थ हो हाथ-पाँव आदि सभी अंग पुष्ट हों और प्रजापति द्वारा निश्चित आयु को हम प्राप्त करें । २ । जिसका स्तोत्र महान् है, ऐसा वह अविनाशी इन्द्र हमारा मङ्गल करे । सकल विश्व के ज्ञाता का ज्ञाता पूषा हमारा स्थिर शुभ करने वाला हो । अहिंसित आयुध-युक्त गरुत्मान हमारी सदा रक्षा करे । श्रेष्ट देवों के देव महा-देव हमारे लिये स्थायी कल्याण करने वाले हों ।। ३ (९) ।।

❋ सामवेद समाप्तम् ❋

विश्व ओंकार परिवार की स्थापना

•••○O○•••

ॐ परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ व स्वाभाविक नाम है। इसे मन्त्र शिरोमणि, मन्त्र सम्राट, मन्त्र राज, बीजमन्त्र और मंत्रों का सेतु आदि उपाधियों से विभूषित किया जाता है। इसे श्रेष्ठतम, महानतम और पवित्रतम मन्त्र की संज्ञा भी दी जाती है। सारे विश्व में इसकी तुलना का कोई मन्त्र नहीं है। यह सभी मन्त्रों को अपनी शक्ति से भावित करता है। सभी मन्त्रों की शक्ति ओंकार की ही शक्ति है। यह शक्ति और सिद्धिदाता है। भौतिक व आर्थिक उत्थान के लिये कोई भी दूसरी श्रेष्ठ व सरल साधना नहीं है।

सभी ऋषि मुनि ॐ की शक्ति और साधना से ही अपना आत्मिक उत्थान करते रहे हैं। परन्तु आज आश्चर्य है कि ॐ का अन्य मन्त्रों की तरह व्यापक प्रचार नहीं है। इस कमी को अनुभव करते हुये विश्व ओंकार परिवार की स्थापना की गई है। आप भी अपने यहाँ इसका एक प्रचार केन्द्र स्थापित करें। शाखा स्थापना का सारा साहित्य निःशुल्क रूप से प्रधान कार्यालय, बरेली से मंगवा लें। आपको केवल इतना करना है कि स्वयं ओंकारोपासना आरम्भ करके ४ अन्य मित्रों व सम्बन्धियों को प्रेरित करें और सभी संकल्प पत्र व शाखा स्थापना का प्रार्थना पत्र प्रधान कार्यालय को भिजवा दें। इस वर्ष २७००० साधकों द्वारा ९०० करोड़ मंत्रों के जप का महापुरश्चरण पूर्ण किया जाना है। आशा है कि ओंकार को जन-जन का मन्त्र बनाने के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महायज्ञ में आप सम्मिलित होकर महान पुण्य के भागी बनेंगे।

ओंकार रहस्य, ओंकार दैनिक विधि, ओंकार चालीसा, ओंकार कीर्तन और ओंकार भजनावली नामक १५ पैसे मूल्य वाली सस्ती पुस्तिकाओं को अधिक से अधिक संख्या में वितरित करें।

विनीत :

चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००३ (उ० प्र०)

एक मौन व्यक्तित्व का मौन समर्पण

•••○O○•••

डॉ० चमन लाल गौतम एक व्यक्ति का ही नहीं वरन् ऐसे विशाल धार्मिक संस्थान का नाम है जो सतत् २४ वर्षों से ऋषि प्रणीत आर्ष साहित्य के शोध, प्रकाशन और व्यापक साहित्य प्रचार का कार्य देश-विदेश में करते रहे हैं। यह उनकी तप साधना का ही परिणाम है कि किसी भी आर्थिक सहयोग के बिना वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, पुराण व मन्त्र-तन्त्र आदि साधनात्मक साहित्य की २०० से अधिक पुस्तकों को प्रकाशित करके घर-घर में पहुंचाने की पवित्रतम साधना कर रहे हैं। मन्त्र-तन्त्र, योग, वेदान्त व अन्य धार्मिक विषयों पर १५० खोजपूर्ण ग्रन्थों का लेखन, सम्पादन एक ऐसा अविस्मरणीय व असाधारण कार्य है जिस पर उनके अथक श्रम, गम्भीर अध्ययन, तप, प्रतिभा और मौलिक सूझ बूझ की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। ध्यान और त्राटक पर उनके वैज्ञानिक प्रयोग प्राचीन ऋषियों की तप साधना की याद दिलाते हैं। इन प्रयोगों और अनुभूतियों पर रचा साहित्य स्वयं में एक आश्चर्य है। स्वस्थ साहित्य की रचना और प्रचार का उनकी जीवन योजना का यह पहला चरण पूरा हुआ।

पिछले २४ वर्षों से लगातार चल रही आध्यात्मिक साधना के महापुरश्चरण का दूसरा चरण भी समाप्त हो रहा है। तीसरे चरण-आध्यात्मिक साधनाओं और अनुभूतियों के विश्वव्यापी विस्तार का शुभारम्भ विश्व ओंकार परिवार की स्थापना के साथ बसन्त पञ्चमी की परम पवित्र बेला के साथ हो गया है। अतः उनका शेष जीवन तीसरे चरण की सफलता-विश्व ओंकार परिवार की शाखाओं के व्यापक विस्तार के माध्यम से करोड़ों व्यक्तियों को ओंकार साधना में प्रविष्ट करके उच्च आध्यात्मिक भूमिका में प्रशस्त करना, ओंकार अथवा उच्च आध्यात्मिक साहित्य की रचना व प्रसार को समर्पित है।

स्वामी सत्य भक्त